विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित पत्रिका
UGC Approved Journal - UGC Care Review
ISSN NUMBER : 2455-9717
RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929

Dhingra Family Foundation USA

शिवना प्रकाशन

वर्ष : 6, अंक : 24
जनवरी-मार्च 2022
मूल्य 50 रुपये

शिवना साहित्यिकी

शोध, समीक्षा तथा आलोचना की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

स्वागत
नव वर्ष
2022

नया वर्ष / अनिल जनविजय

नया वर्ष
संगीत की बहती नदी हो
गेहूँ की बाली दूध से भरी हो
अमरूद की टहनी फूलों से लदी हो
खेलते हुए बच्चों की किलकारी हो नया वर्ष

नया वर्ष
सुबह का उगता सूरज हो
हर्षोल्लास में चहकता पाखी
नन्हें बच्चों की पाठशाला हो
निराला-नागार्जुन की कविता

नया वर्ष
चकनाचूर होता हिमखण्ड हो
धरती पर जीवन अनन्त हो
रक्तस्नात भीषण दिनों के बाद
हर कोंपल, हर कली पर छाया वसन्त हो

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नई पुस्तकें

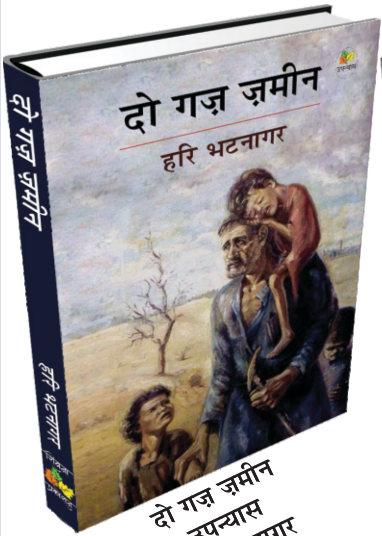

दो गज़ ज़मीन
उपन्यास
हरि भटनागर

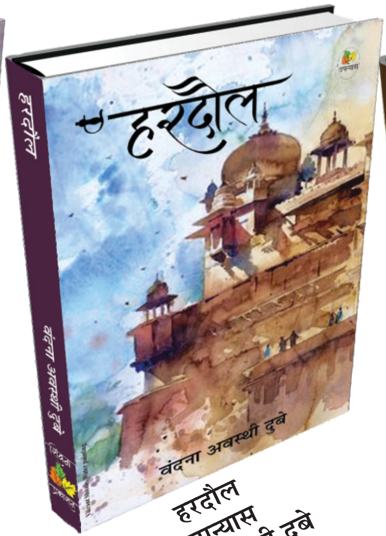

हरदौल
उपन्यास
वंदना अवस्थी दुबे

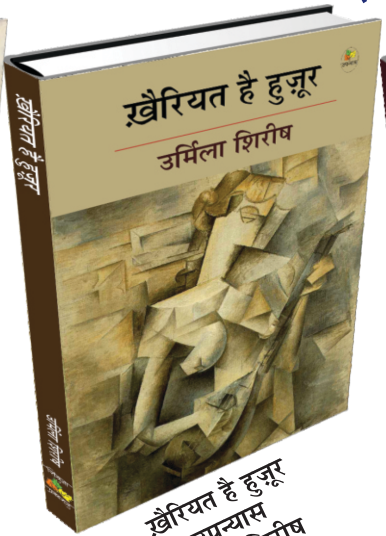

ख़ैरियत है हुज़ूर
उपन्यास
उर्मिला शिरीष

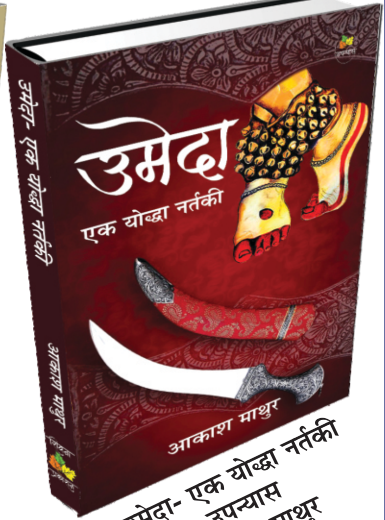

उमेदा- एक योद्धा नर्तकी
उपन्यास
आकाश माथुर

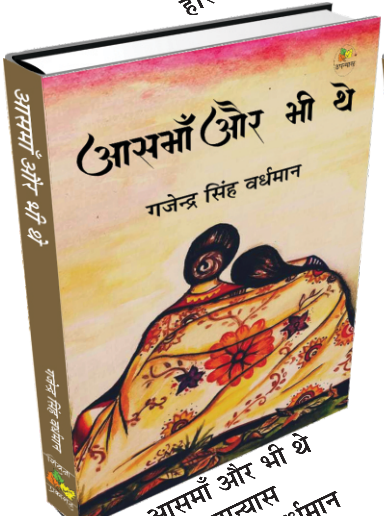

आसमाँ और भी थे
उपन्यास
गजेन्द्र सिंह वर्धमान

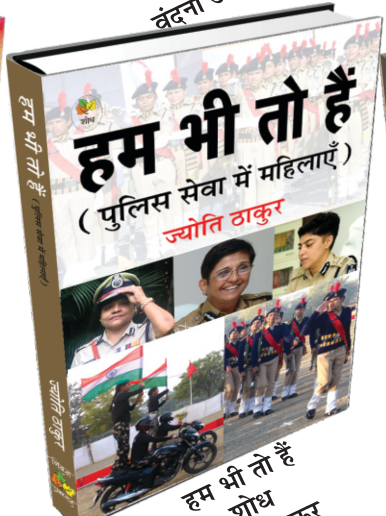

हम भी तो हैं
शोध
ज्योति ठाकुर

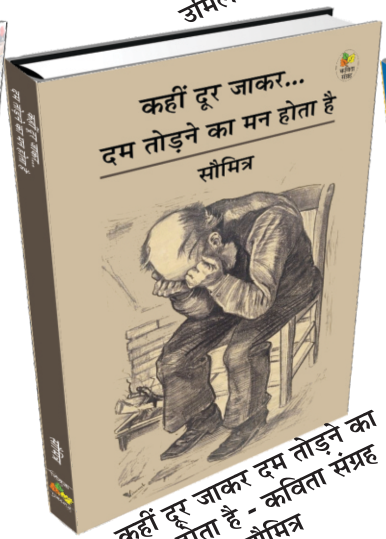

कहीं दूर जाकर दम तोड़ने का
मन होता है - कविता संग्रह
सौमित्र

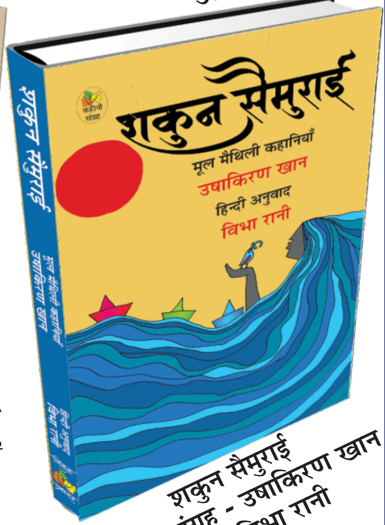

शकुन सैमुराई
कहानी संग्रह - उषाकिरण खान
अनु - विभा रानी

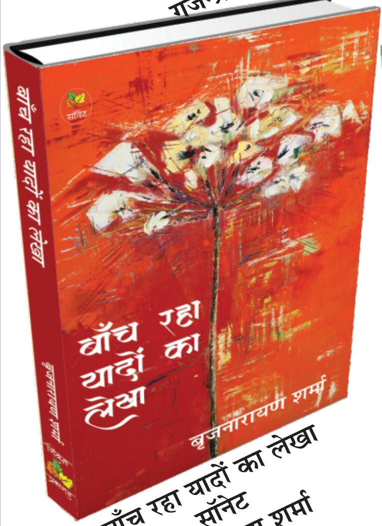

बाँच रहा यादों का लेखा
सॉनेट
बृजनारायण शर्मा

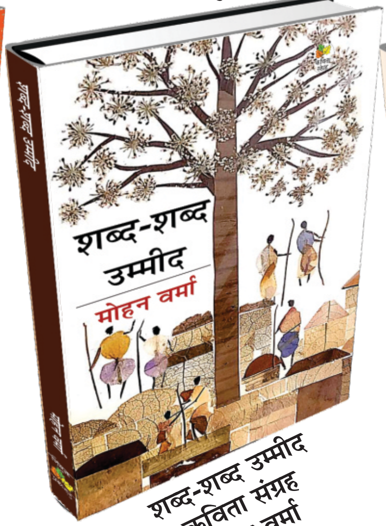

शब्द-शब्द उम्मीद
कविता संग्रह
मोहन वर्मा

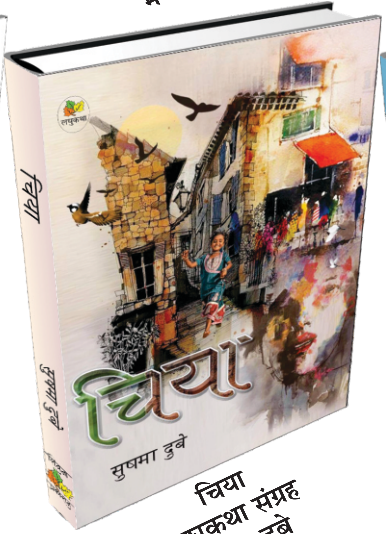

चिया
लघुकथा संग्रह
सुषमा दुबे

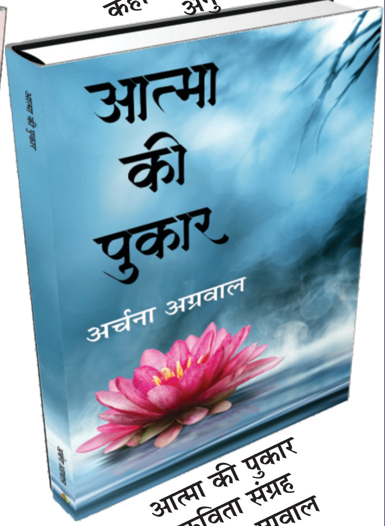

आत्मा की पुकार
कविता संग्रह
अर्चना अग्रवाल

शिवना प्रकाशन

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in

amazon
http://www.amazon.in

flipkart.com
http://www.flipkart.com

Mobile - +91-9806162184, +91-6265665580
WhatsApp +91-8819806162
twitter https://twitter.com/shivnac
facebook https://www.facebook.com/shivna.prakashan
YouTube https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations
Email- shivna.prakashan@gmail.com

संरक्षक एवं
सलाहकार संपादक
सुधा ओम ढींगरा
प्रबंध संपादक
नीरज गोस्वामी
संपादक
पंकज सुबीर
कार्यकारी संपादक
शहरयार
सह संपादक
शैलेन्द्र शरण
पारुल सिंह, आकाश माथुर
डिज़ायनिंग
सनी गोस्वामी, सुनील पेरवाल, शिवम गोस्वामी

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 2-7
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : +91-7562405545
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल- shivnasahityiki@gmail.com

ऑनलाइन 'शिवना साहित्यिकी'
http://www.vibhom.com/shivnasahityiki.html
फेसबुक पर 'शिवना साहित्यिकी'
https://www.facebook.com/shivnasahityiki

एक प्रति : 50 रुपये, (विदेशों हेतु 5 डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
3000 रुपये (पाँच वर्ष), 6000 रुपये (दस वर्ष)
11000 रुपये (आजीवन सदस्यता)
बैंक खाते का विवरण-
Name: Shivna Sahityiki
Bank Name: Bank Of Baroda,
Branch: Sehore (M.P.)
Account Number: 30010200000313
IFSC Code: BARB0SEHORE

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर माह में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर (मध्यप्रदेश) रहेगा।

शिवना प्रकाशन

शिवना साहित्यिकी

शोध, समीक्षा तथा आलोचना की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका
वर्ष : 6, अंक : 24, त्रैमासिक : जनवरी-मार्च 2022
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित पत्रिका
(UGC Approved Journal - UGC Care Review)
RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929
ISSN : 2455-9717

आवरण चित्र
इरफ़ान ख़ान

आवरण कविता
अनिल जनविजय

इस अंक में

आवरण कविता / अनिल जनविजय
आवरण चित्र / इरफ़ान ख़ान
संपादकीय / शहरयार / 3
व्यंग्य चित्र / काजल कुमार / 4
अंतर्राष्ट्रीय कथा सम्मान 5
तेजेंद्र शर्मा, रणेंद्र, उमेश पंत
लक्ष्मी शर्मा, इरशाद ख़ान सिकंदर
मोतीलाल आलमचंद्र को सम्मान
संस्मरण आलेख
निदा फ़ाज़ली: ख़यालों की ऊँचाई का सौन्दर्य
विजय बहादुर सिंह / 6
उपेक्षा, अपमान और बेक़द्री में अस्त सुर-गणपत गाथा
पंकज पराशर / 9
पुस्तकालय से
इन दिनों जो पढ़ा गया
पुकारती हैं स्मृतियाँ / आनंद पचौरी
अन्दाज़-ए-बयाँ उर्फ़ रवि कथा / ममता कालिया
तिल भर जगह नहीं / चित्रा मुद्गल
कोई ख़ुशबू उदास करती है / नीलिमा शर्मा
सुधा ओम ढींगरा / 16
पुस्तक समीक्षा
रज्जो मिस्त्री
डॉ. जसविन्दर कौर बिन्द्रा / प्रज्ञा / 19
संकल्प सुख
डॉ. दीप्ति / डॉ. मधु संधू / 22
वसंत का उजाड़
सूर्यकांत नागर / प्रकाश कांत / 25
कुहासा छँट गया
डॉ. आशा सिंह सिकरवार / ममता त्यागी / 27
मेरी चुनिंदा कहानियाँ
दीपक गिरकर / डॉ. अशोक गुजराती / 29
समय का अकेला चेहरा
प्रदीप कुमार ठाकुर / नरेंद्र पुंडरीक / 31
मन का हरसिंगार
गोविंद सेन / कुँअर उदयसिंह अनुज / 33
पगडंडियों का रिश्ता
अश्विनीकुमार दुबे / विजय कुमार दुबे / 35
एक बूँद बरसात
डॉ. सुशील कृष्ण गोरे / डॉ. रमाकांत शर्मा / 37
घर वापसी
रमेश शर्मा / मनोज कुमार शिव / 39
सिलवटें
नीरज नीर / अशोक प्रियदर्शी / 41
खिड़कियों से झाँकती आँखें
अशोक प्रियदर्शी / सुधा ओम ढींगरा / 43
गांधी दौलत देश की
ब्रजेश कानूनगो / ओम वर्मा / 48
पाषाणपुष्प का किस्सा
डॉ. स्नेहलता पाठक / ब्रजेश कानूनगो / 61
जड़ पकड़ते हुए
तरसेम गुजराल / राकेश प्रेम / 62
आसमाँ और भी थे
शैलेन्द्र शरण / गजेन्द्र सिंह वर्धमान / 63
जयप्रकाश चौकसे, पर्दे के सामने
ब्रजेश राजपूत / रितु पांडेय / 64
हमेशा देर कर देता हूँ मैं
प्रज्ञा / पंकज सुबीर / 65
हमेशा देर कर देता हूँ मैं
प्रमोद त्रिवेदी / पंकज सुबीर / 66
टूटते रिश्ते-दरकते घर
दीपक गिरकर / तरुण पिथोड़े / 67
अनसोशल नेटवर्क
ब्रजेश राजपूत / दिलीप मंडल, गीता यादव / 68
हरदौल
अशआर अली / वंदना अवस्थी दुबे / 69
सूरजमुखी सा खिलता है जो
तरसेम गुजराल / राकेश प्रेम /70
केंद्र में पुस्तक
उमेदा - एक योद्धा नर्तकी
गीताश्री, दीपक गिरकर
आकाश माथुर / 45
दृश्य से अदृश्य का सफ़र
प्रेम जनमेजय, तरसेम गुजराल
डॉ. सीमा शर्मा, दीपक गिरकर
परिचर्चा
सुधा ओम ढींगरा / 49
कोई ख़ुशबू उदास करती है
डॉ.फतेह सिंह भाटी,
अवधेश प्रीत, वंदना बाजपेयी
नीलिमा शर्मा / 57
शोध आलेख
कुंवर नारायण का कथा-संसार
प्रो. प्रज्ञा / 71
हिन्दी साहित्य, स्त्री और आत्मकथा
डॉ. सुनीता कुमारी / 77
सुधा ओम ढींगरा की कहानियों में असामान्य मनोविज्ञान का चित्रण
रेनू यादव / 79

संपादकीय

उसे विचार नहीं व्यापार पसंद है

शहरयार

शिवना प्रकाशन, पी. सी. लैब,

सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट

बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र.

466001,

मोबाइल- 9806162184

ईमेल- shaharyarcj@gmail.com

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास को जब गठित किया गया था, तब इसके मूल में यही बात थी कि इसके माध्यम से पुस्तक संस्कृति का प्रचार प्रसार किया जाएगा। किसी ने तब सोचा भी नहीं था कि यह संस्था एक दिन व्यापार करने का माध्यम बन जाएगी। किसी भी देश के लिए, समाज के लिए, सबसे ख़राब समय वह होता है, जब कलाओं में व्यापार का प्रवेश हो जाता है। पुस्तक संस्कृति को बढ़ाने के लिए गठन किया गया राष्ट्रीय पुस्तक न्यास जिसे एनबीटी के नाम से भी जाना जाता है, वह किसी व्यपारी की तरह काम करने में लगा हुआ है। पिछले दिनों न्यास द्वारा नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले की घोषणा की गई। यह पुस्तक मेला देश भर के पाठकों, लेखकों तथा प्रकाशकों के लिए बहुत मायने रखता है। यह एक बड़ा समागम होता है। इस बार कोरोना के कारण बहुत नुकसान उठा चुके प्रकाशकों के लिए यह एक अवसर था कि कम से कम कुछ नुकसान तो पूरा किया जा सके। क्योंकि मेले में पाठक बहुत उदारमन होकर पुस्तकें ख़रीदते हैं। पुस्तक मेले की घोषणा के कारण प्रकाशकों के चेहरे खिल गए थे। मगर जब पुस्तक मेले में स्टॉल बुक करने का समय आया तो प्रकाशक राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की हठधर्मिता को देख कर हैरान रह गए। कहाँ तो यह होना था कि स्टॉल के लिए दरें घटा दी जानी थीं, मगर उसके स्थान पर यह हुआ कि दरें बढ़ा दी गईं। इतनी कि यदि आप एक से अधिक स्टॉल लेना चाहो तो आपके बूते के बाहर की बात हो जाए। असल में किया यह था इस बार कि हर बार जो सुविधा दी जाती थी कि आप एक से अधिक स्टॉल अलग-अलग नामों से लेकर उनको एक साथ जोड़ सकते हैं। यह सुविधा इस बार हटा ली गई। पहला स्टॉल बुक करने के बाद जो दूसरा स्टॉल बुक करने जा रहे थे, उनको एकदम से दुगनी कीमत अदा करनी पड़ रही थी। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास जो थोक में किताबें छापता है। किसकी छापता है, यह किसी को पता नहीं है। हाँ यह बात तय है कि केंद्र में जिस भी दल की सरकार होती है, उस विचारधारा के लोगों की किताबें न्यास द्वारा प्रकाशित की जाती हैं। इसी चक्कर में होता यह है कि ऐसी-ऐसी किताबें छापी जाती हैं, जिनसे पाठकों को कोई लेना-देना नहीं होता है। मगर न्यास को सोचना चाहिए कि उसके गठन का मूल उद्देश्य क्या था, उसे किन कारणों से गठित किया गया था। पुस्तक संस्कृति को बचाया जाना आज बहुत ज़रूरी हो गया है। पुस्तकें नहीं रहेंगी तो विचार कहाँ से आएँगे ? विचारों से ही एक जागृत समाज बनता है। विचारों को बचाए रखने के लिए ही तब न्यास का गठन किया गया होगा, लेकिन किसको पता था कि विचार से बात सीधे व्यापार तक आ जाएगी। विश्व पुस्तक मेला तो ख़ैर कोरोना के कारण स्थगित कर दिया गया है, लेकिन यह अपने पीछे बहुत से प्रश्न छोड़ गया है। प्रश्न यह कि जब पिछले दो साल से कोरोना के कारण पुस्तकों की दुनिया बड़े संकट में घिरी हुई, तब क्या न्यास का दायित्व नहीं है कि वह आगे बढ़ कर पुस्तक संस्कृति को बचाने की पहल करे। और इस पहल में सबसे बड़ा काम तो यही किया जा सकता था कि पुस्तक मेले जैसे आयोजनों में प्रकाशकों को कम से कम कीमत पर स्टॉल उपलब्ध करवाए जाएँ। मगर उसके लिए दृष्टि चाहिए होती है, और दृष्टि के लिए एक बार फिर से विचारों की आवश्यकता पड़ती है। और विचार तो न्यास के पास हैं ही नहीं। कोरोना एक बार फिर से तीसरी लहर के रूप में सामने आ गया है, एक बार फिर से सब कुछ बंद होने की स्थिति निर्मित हो रही है। बीच का कुछ समय जो भी प्रकाशकों को मिला उसमें उन्होंने अपनी गाड़ी को पटरी पर लाने के लिए प्रयास किए, संघर्ष किया। शायद यही वह समय था जिसके लिए राष्ट्रीय पुस्तक न्यास जैसे संगठन की परिकल्पना की गई होगी, जब किताबों पर संकट आएगा, तब यह न्यास आगे बढ़ कर सहायक होगा। किसे पता था कि जब मदद की आवश्यकता होगी तब यह न्यास व्यापार करने में जुट जाएगा। क्योंकि उसे विचार नहीं व्यापार पसंद है अब...। **आपका ही**

शहरयार

व्यंग्य चित्र-

काजल कुमार

kajalkumar@comic.com

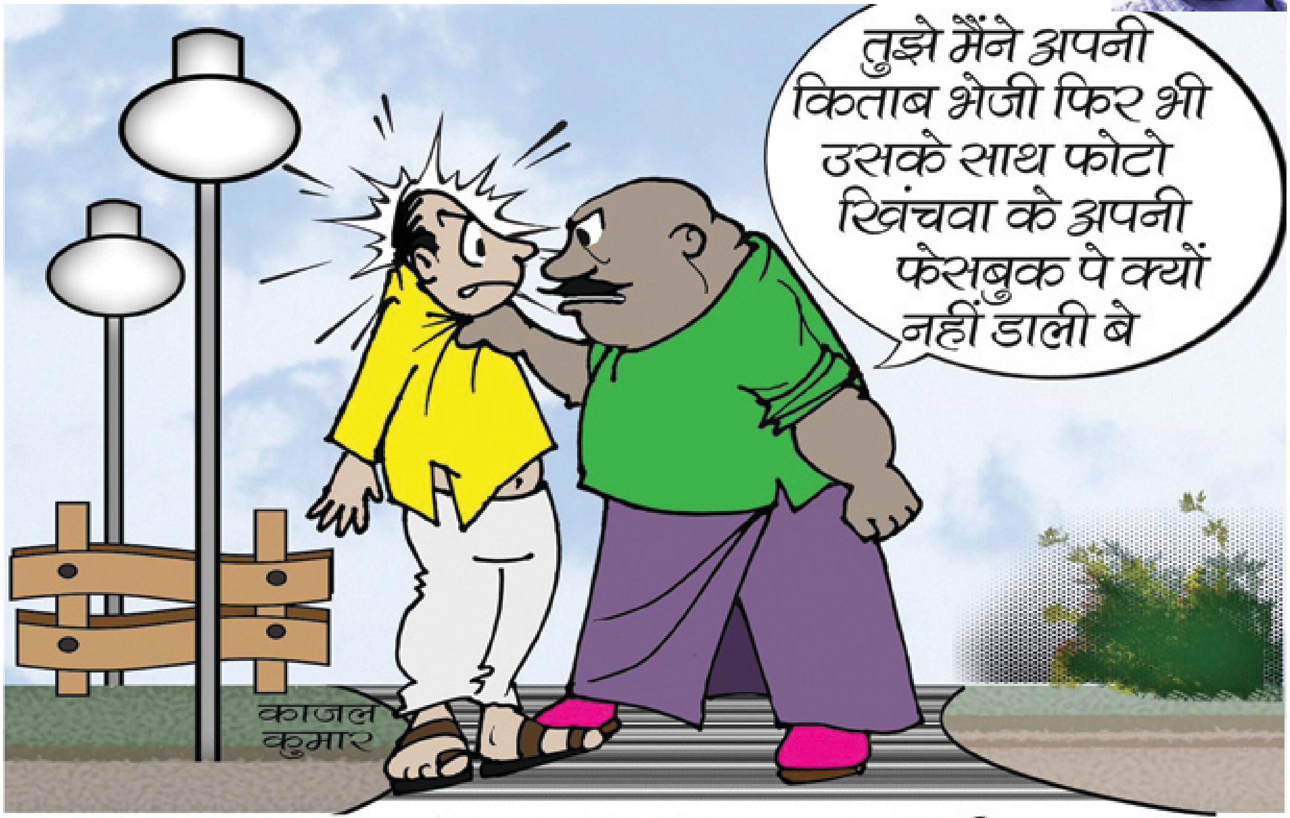

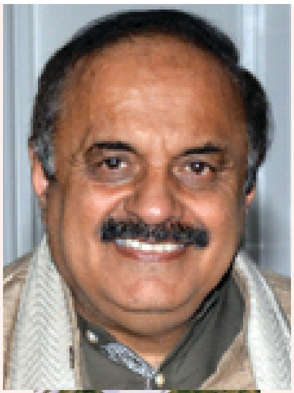

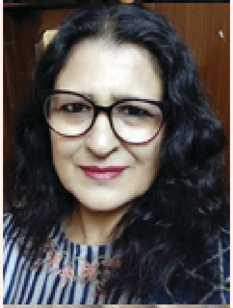

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन, अमेरिका द्वारा अंतर्राष्ट्रीय कथा सम्मान तथा शिवना प्रकाशन द्वारा अंतर्राष्ट्रीय कथा-कविता सम्मान घोषित

तेजेंद्र शर्मा, रणेंद्र, उमेश पंत, लक्ष्मी शर्मा, इरशाद ख़ान सिकंदर तथा मोतीलाल आलमचंद्र को सम्मान

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका ने अपने प्रतिष्ठित अंतर्राष्ट्रीय कथा सम्मान तथा शिवना प्रकाशन ने अपने कथा-कविता सम्मान घोषित कर दिए हैं। ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन सम्मानों की चयन समिति के संयोजक पंकज सुबीर ने बताया कि 'ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन लाइफ़ टाइम एचीवमेंट सम्मान' हिन्दी के वरिष्ठ साहित्यकार इंग्लैंड में रहने वाले श्री तेजेन्द्र शर्मा को प्रदान किए जाने का निर्णय लिया गया है, सम्मान के तहत इक्यावन हज़ार रुपये सम्मान राशि तथा सम्मान पत्र प्रदान किया जाएगा। वहीं 'ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अंतर्राष्ट्रीय कथा सम्मान' उपन्यास विधा में वरिष्ठ साहित्यकार श्री रणेंद्र को राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित उनके उपन्यास 'गूँगी रुलाई का कोरस' हेतु तथा कथेतर विधा में श्री उमेश पंत को सार्थक प्रकाशन से प्रकाशित उनके यात्रा संस्मरण 'दूर, दुर्गम, दुरुस्त' हेतु प्रदान किए जाएँगे, दोनों सम्मानित रचनाकारों को इकतीस हज़ार रुपये की सम्मान राशि तथा सम्मान पत्र प्रदान किया जाएगा।

शिवना प्रकाशन के सम्मानों की चयन समिति के संयोजक श्री नीरज गोस्वामी ने बताया कि 'अंतर्राष्ट्रीय शिवना कथा सम्मान' हिन्दी की चर्चित लेखिका लक्ष्मी शर्मा को शिवना प्रकाशन से प्रकाशित उनके उपन्यास 'स्वर्ग का अंतिम उतार' के लिए, 'अंतर्राष्ट्रीय शिवना कविता सम्मान' महत्त्वपूर्ण शायर इरशाद ख़ान सिकंदर को राजपाल एण्ड संस से प्रकाशित उनके ग़ज़ल संग्रह 'आँसुओं का तर्जुमा' के लिए प्रदान किया जाएगा दोनों सम्मानित रचनाकारों को इकतीस हज़ार रुपये की सम्मान राशि तथा सम्मान पत्र प्रदान किया जाएगा। 'शिवना अंतर्राष्ट्रीय कृति सम्मान' शिवना प्रकाशन से प्रकाशित पुस्तक 'साँची दानं' के लिए श्री मोतीलाल आलमचन्द्र को प्रदान किया जाएगा, सम्मान के तहत ग्यारह हज़ार रुपये सम्मान राशि तथा सम्मान पत्र प्रदान किया जाएगा।

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका तथा शिवना प्रकाशन द्वारा हर वर्ष साहित्य सम्मान प्रदान किए जाते हैं। ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका का यह पाँचवा सम्मान है। हिन्दी की वरिष्ठ कथाकार, कवयित्री, संपादक डॉ. सुधा ओम ढींगरा तथा उनके पति डॉ. ओम ढींगरा द्वारा स्थापित इस फ़ाउण्डेशन के यह सम्मान इससे पूर्व उषा प्रियम्वदा, चित्रा मुद्गल, ममता कालिया, उषाकिरण खान, महेश कटारे, डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी, सुदर्शन प्रियदर्शिनी, डॉ. कमल किशोर गोयनका, मुकेश वर्मा, मनीषा कुलश्रेष्ठ, अनिल प्रभा कुमार तथा प्रो. हरिशंकर आदेश को प्रदान किया जा चुका है। जबकि शिवना सम्मान का यह दूसरा वर्ष है, इससे पूर्व गीताश्री, वसंत सकरगाए, प्रज्ञा, रश्मि भारद्वाज, गरिमा संजय दुबे तथा ज्योति जैन को प्रदान किया जा चुका है।

आकाश माथुर, मीडिया प्रभारी

संस्मरण आलेख

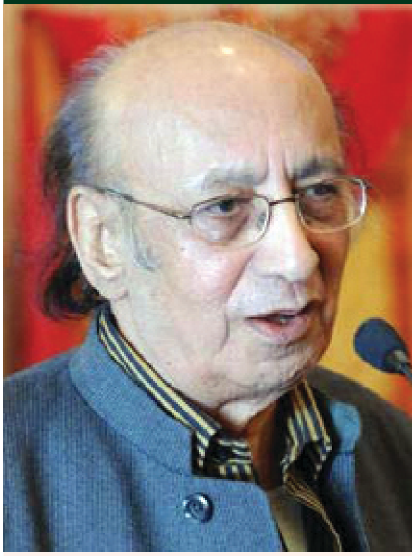

निदा फ़ाज़ली: ख़यालों की ऊँचाई का सौन्दर्य

विजय बहादुर सिंह

विजय बहादुर सिंह
29, निराला नगर, दुष्यंत कुमार मार्ग
भोपाल, 462003 मप्र
मोबाइल- 9425030392

आज नहीं तो कल शायर निदा फ़ाज़ली को लेकर यह बहस ज़रूर उठेगी कि वे शायर थे या कवि। यों तो दोनों शब्दों का अवाम में एक ही मायने होता है, किन्तु जानकार लोग उर्दू वाले को शायर और हिन्दी वाले को कवि कहा करते हैं। शायर नामधारी ज़्यादातर मदद फ़ारसी की विरासतों से लेता है जबकि कवि संस्कृत अपभ्रंश, हिन्दी, और उसकी बोलियों से। एक ओर बँटवारा जो साफ दिखता है वह कुछ और काव्यरूपों को लेकर होता है। उर्दू का मुख्य काव्यरूप ग़ज़ल है। अन्यों में रुबाई क़तअ़, कसीदा, मर्सिया, नज़्म आदि। हिन्दी तो संस्कृत और अप्रभ्रंश से लेकर बोलियों तक से लय और छंद उठाती हुई चलती है। अब तो वह सॉनेट भी ले चुकी है, जो अँग्रेज़ी से आया है। ग़ज़ल को तो वह हिन्दी ग़ज़ल का नाम दे ही चुकी है। यह उदारता और व्यापकता उर्दू में पता नहीं क्यों नहीं है।

काव्य के इन रूपों के आधार पर बँटवारा हो चुकने पर भी सवाल फिर भी बना ही रहता है कि दिल्ली, फ़ैज़ाबाद (अवध), लखनऊ, भोपाल(मालवा) को शायरी और वहाँ की हिन्दू-मुस्लिम बिरादरी के मन को हम कैसे अलग-अलग बाँटेंगे! इसी तरह हिन्दी कविता को ? तब भी एक सवाल तो यह जो रोज़ दिखता है, करना ही पड़ेगा कि कवि-सम्मेलन के मंचों पर शायर भी बराबरी से पढ़ते और सराहे जाते हैं, जबकि मुशायरे में अब तक मेरे देखने में तो यह नहीं आया कभी। आगे कभी हो, तो हो।

इसका कारण क्या वह समाज है जो धार्मिकविशिष्टता की तरह अपनी शायरी को भी अलग करके रखना चाहता है या फिर अलगाव की अपनी उस मानसिकता के चलते जो सामाजिक तो

कम, राजनीतिक अधिक है। माना कि दोनों के ख़ास खान-पान का तौर तरीक़ा कुछेक मायनों में अपनी ख़ासियतें लिए हुए हैं, किन्तु व्यापक अवाम और रोज़मर्रा के उठने-बैठने जीने-रहने की अपनी सर्व साधारण सामान्यताएँ तो समान है। अपनी समझ-से निदा फ़ाज़ली जैसे लोग इन्हीं सर्वसाधारण सामान्यताओं की उपज हुआ करते हैं।

ऐसा भी नहीं कि निदा ऐसे पहले शख़्स हों। उनसे पहले अमीर खुसरो और कबीर हो चुके हैं, नज़ीर और इकबाल भी। ये वे हिन्दुस्तानी विरासतें हैं जिनसे इस देश की राष्ट्रीयता पहचानी जाती है।

इनकी कविता दोनों क़ौमों और समाजों को संबोधित है और दोनों ही समाज इन्हें अपनाने में कोई गुरेज़ भी नहीं करते। यह भी तथ्य है कि खुसरो इस्लाम की ओर झुके हुए हैं, तो कबीर जाति से जुलाहा होकर भी हिन्दुत्ववादी दृष्टिकोण की ओर। हमारे अपने ज़माने के गाँधी भी दोनों समाजों को महत्त्वपूर्ण मानते हुए समान आदर और प्रेम देते चलते हैं। दोनों को इस देश की दाईं-बाईं आँख मानने के अपने उदात्त ख़यालों के चलते वे मारे भी जाते हैं। उदात्तता शायद अब अंधहिन्दुत्व को बर्दाश्त नहीं।

निदा जैसे शायरों की आधारभूत ज़मीनों की तलाश करते हुए झक मार कर हमें इसी नतीजे पर पहुँचना होगा कि वे दोनों ही परम्पराओं के उत्तराधिकार का दावा अपनी रचनाओं में पेश करते हैं। हमारे अपने ज़माने, जिसमें सामूहिक मनोभावों और पहचानों की चिन्दी-चिन्दी बिखेरी जा रही है, वहाँ इस प्रकार की अघोषित ज़िद्दी कोशिशें निश्चय ही किसी ज़हर-मोहरे से कम नहीं हैं।

जानने वाले जानते हैं निदा का परिवार विभाजन के बाद सीमा उस पार चला गया, फिर भी वे नहीं गए। पर यहाँ वे हिन्दुस्तानी मुसलमान या मुसलमान और हिन्दू बनकर कभी नहीं रहे। हिन्दू और मुसलमान या और कुछ बनाने का काम दायरों में बँधे समाज किया करते हैं, सो भी अल्लाह और ईश्वर के नाम पर, निदा ने अपने भीतर, समाज और देशों के बीच भी उस शख़्स को खोजना और उसकी बाक़ायदा हिफाज़त करना शुरू किया जो भले ही हिन्दु-मुसलमान न हो, पर इन्सान ज़रूर हो।

यह भी निदा की कोई अपनी पहली कोशिश नहीं कही जा सकती। इस्लाम के आने से हज़ारों साल पहले महाभारत और रामायण आदि काव्यों से लेकर मीर-ग़ालिब हाली आदि के अलावा समूचे साहित्य में यह कोशिश जारी रही चली आई है। इसलिए शायरी या कविता की यह फितरत हज़ारों हज़ार साल पुरानी है जिसका पुर्ननवीकरण (रिन्यूअल) हम निदा में बहुत गहरी तकलीफ़ और बेचैनी के लहज़े में देखते हैं। यही तकलीफ और बेचैनी हम भीष्म साहनी के 'तमस' उपन्यास में महसूस कर सकते हैं। अन्य लेखकों में भी, प्रेमचंद, राही मासूम रज़ा, मंटो आदि में भी।

साहित्य की यह वह इंसानी पक्षधरता है जिसे कोई चाहे तो आध्यात्मिक भी कह सकता है।

निदा लेकिन इतना ही नहीं करते। वे अपने समय के ऐसे तमाम हमलों और साजिशों के प्रति हमें बाख़बर और सचेत भी करते हैं जो आधुनिक सभ्यता और विकास के नाम पर सभ्यता और मानवता के लिए ख़तरनाक संकट भी है। ज़रा उनके इस शेर पर गौर फरमाएँ-

पहले हर चीज़ थी अपनी मगर अब लगता है
अपने ही घर में, किसी दूसरे घर के हम हैं

इस शेर को पढ़ते ही 1915 में लौटे अफ्रीकी गाँधी का मुंबई के कारोबारियों के बीच कहा वह वाक्य याद आ गया कि लगता है हम जैसे अपने नहीं, किसी पराए देश और समाज के बीच आ गए हैं। किसी भी बड़े पारम्परिक समाज के लिए इससे बड़ी चिन्ताजनक बात और क्या हो सकती है ? चौहत्तर-पचहत्तर में दुष्यन्त ने अपनी एक ग़ज़ल में इसी तरह का दर्द बयान किया था।

मेले में भटके होते तो कोई घर पहुँचा जाता
हम घर में भटके हैं, कैसे ठौर-ठिकाने आएँगे।

यहाँ जो एक बात ख़ास ध्यान में आती है कि गाँधी अकेले नहीं, नेहरू और अन्य, साथ ही दुष्यन्त और निदा फ़ाज़ली भी उस एक खो-से गए देश की तलाश की बेचैनी से भरे हुए थे। जिसके मिल जाने पर ही, स्वाधीनता का सौन्दर्य समझ में आता है। ग़ुलाम चेतना भला स्वराज और स्वाधीनता के मायने क्या समझे।

कुछ मित्रों को इधर यह समझ में आ चुका है कि कविता की अपनी एक सुनिश्चित राजनीति होती है। जिसे वे किसी न किसी सत्ता-राजनीति और विचारधारा से जोड़कर देखते हैं। कुछ जाने-माने चतुर कवि और लेखक इसका लाभ भी ले लेते हैं पर वे जीवन भर यह समझ पाने में नाकामयाब रहते हैं कि एक राजनीति वाल्मीकि और वेदव्यास की भी रही आई है। अगर दो ही शब्दों में समझना हो तो लोकमर्यादा के मार्फ़त लोकमंगल और धर्म के द्वारा अधर्म या लोकमंगल विरोधी राजनीति का विनाश फिर धर्म-स्थापना। कवि या लेखक की राजनीति का अगर कोई मतलब है तो यही है। आज हम चाहें तो कहें संविधान सम्मत जीवन मर्यादा, अब ज़रा निदा की शायरी को राजनीति का यह चेहरा देखिए-

जब तलक साँस है, भूख है, प्यास है ये ही इतिहास है,
रखके काँधे पे हल, खेत की ओर चल, जो हुआ सो हुआ
जो मरा क्यों मरा जो जला क्यों जला, जो लुटा क्यों लुटा
मुद्दतों से हैं गुम, इन सवालों के हल, जो हुआ सो हुआ

***

मुट्ठी-भर लोगों के हाथों में लाखों की तक़दीरें हैं
अलग-अलग हैं धरम इलाक़े एक सी सबकी ज़ंजीरें हैं

***

जब भी कोई तख़्त सजा है, मेरा-तेरा ख़ून बहा है
दरबारों की शानो-शौक़त, मैदानों की शमशीरें हैं

***

अच्छी नहीं ये ख़ामुशी शिकवा करो गिला करो
चूँ भी न कर सके तो फिर घर में ख़ुदा-ख़ुदा करो

मेरी अपनी दृष्टि में कवि या शायर की राजनीति का अर्थ है कैसे भी अन्याय का विरोध और न्याय की माँग मुझे लगता है मनुष्य होने की यही बेसिक शर्त और पहचान भी है। मुझे बेहद भोले और निरीह लगते हैं जिनका यह बोध ख़त्म हो जाता है।

फिर धर्म चेतना और धर्म के नाम पर किए जाने वाले कर्मकाँड में बहुत बड़ा फर्क होता है। कर्मकांड वह ड्राइंगरूम है जहाँ हम तमाम तरह के कथित धार्मिक लिबास पहन कर बैठते हैं। जबकि धर्म तो वह है जिसकी माँग और अपेक्षा समूचे लोक और समाज की रहती है। रावण यों तो बड़ा कर्मकांडी था फिर भी मारा गया, तो क्यों ? यह बात सोच पाने वाले भी न जाने क्यों बहुत कम बचे रह गए हैं। शायरी मानव चेतना की सबसे गहरी धर्मभावना अगर है तो इसी अर्थ में। वह अपने भीतर एक ऐसा मानवाचार सँजोए रखती है जो केवल मनुष्य और मनुष्य को नहीं, चर-अचर तीनों लोकों से रिश्ता रखना सिखाती है। फूल काँटा, धूप-अँधेरा, पतझर-बसन्त, चींटी से लेकर हाथी तक की आवाजाही वहाँ है और वह भी बेरोक-टोक।

कोई लेखक, कवि या शायर अगर बड़ा है तो इसी बिना पर कि उसकी संवेदना में इस विशाल लोक की समाई कितनी और कहाँ तक है। उसके दिल की दुनिया कितनी बड़ी है।

निदा के यहाँ कोशिशें तो ये ही हैं- सितारों से लेकर ज़मीन तक की। यहाँ अगर रेत है तो दरिया भी, जंगल-पहाड़ है तो बाग़-बगीचे भी, जीवन की हलचल है तो मौत का सन्नाटा भी, ज़िंदगी के ये अलग-अलग रूप और मकाम हमें बराबर बेहोश किए रहते हैं कि संसार को देखना-समझना हो तो ठीक से देखना। किसी चश्मे या फार्मूले के अधीन होकर तो बिल्कुल नहीं। तब भी नींद के साथ सपने देखना भी कभी मत छोड़ना। सपना जीवन का सबसे ख़ूबसूरत फूल है। उसकी ओर बढ़कर ही तुम अपने ज़िंदा होने का सबूत दे सकते हो।

निदा की शायरी का मूलभूत सपना इस रोती हुई दुनिया को पहले तो इसकी हक़ीक़तों से परिचित कराना है, दूसरे हार न मानते हुए निरंतर चलते चले जाना है। जीवन-योग अगर कुछ है, तो यही है। चौबीसों घंटे का कर्मयोग, निरर्थकताओं को दर किनार करते हुए सार्थक ख़ूबसूरतियों में डूबते रहना- घर से मस्जिद है बहुत दूर चलो यूँ कर लें, किसी रोते हुए बच्चे को हँसाया जाए।

एक शायर या कवि, शायर के रूप में निदा की पहली पहचान यही है कि वे उर्दू-हिन्दी की चली आती रवायतों की जड़ घेरेबंदियों को तोड़ते हैं या अपनी रचनाशीलता के सन्दर्भ में बेमानी साबित करते चलते हैं। वे मानते हैं कि शायरी तो नदी की उस धार की तरह है, जो तमाम बस्तियों के बीच से गुज़र कर भी किसी ख़ास जाति या धर्म की सीमा में बँधकर सिमट नहीं जाती बल्कि हर उस आँसू और मुस्कान की ज़ुबान बन जाती है जिसे आदमीयत की ज़ुबान कहते हैं-

ये दिल कुटिया है सन्तों की यहाँ राजा भिखारी क्या
वो हर दीदार में ज़रदार है गोटा किनारी क्या
किसी घर के किसी बुझते हुए चूल्हे में ढूँढ़ उसको
जो चोटी और दाढ़ी में रहे वो दीनदारी क्या

निदा को पढ़ते हुए हमें हर पल सावधान रहना है कि उनकी कविता खाली हिन्दुस्तानी की कविता है, न कि उर्दू या हिन्दी की। उन्होंने दोनों ही परम्पराओं की थाती को सँभालते हुए दोनों की सीमाओं का अतिक्रमण भी किया है। यह अतिक्रमण यद्यपि बहुत ख़ामोशी के लहजे में है पर इसके ज़ाहिर होने की सूरतों को पहचानना कठिन नहीं।

ख़ास बात यह कि निदा अपनी शायरी की प्रेरणा उस अवाम और अवामी जीवन से लेते हैं, जिसने सदियों की उस जीवन-दृष्टि, लोक-भाषा और उसके व्यवहार को अपना बना रखा है, जिसे हिन्दुस्तानियत या भारतीयता कहते हैं। उसकी सोच की यह समृद्धि ही निदा की कविता की समृद्धि भी है।

यह कहने में क्यों झिझक होनी चाहिए कि निदा की शायरी का सौन्दर्य विचारों की उच्चता, शैली की सादगी और कल्पना की ताज़गी है। उनकी भाषा में लोकसाध्य सर्वग्राहयता और मार्मिकता है। वे शायर के रूप में ऐसे सन्त या फ़क़ीर हैं जिनके लिए भाषाओं की दोनों ही बस्तियाँ अपनी बस्तियाँ हैं और दोनों के अनुभव और ख़याल अपने अनुभव और ख़याल।

एक शायर के रूप में निदा की पहली ख़ासियत तो यही है कि उनकी ग़ज़ल उन चली आती रवायतों से मुक्त है जो उर्दू शायरी की पहचान मानी जाती है। वहाँ न तो चले आते चिर परिचित प्रतीक हैं, न घिसे पिटे कथन। इस अर्थ में वे समकालीन जीवन और समाज के आधुनिक शायर हैं। एक लोकताँत्रिक समय और सोच के शायर। यह उस नए आदमी के शायर जो बँधे-बँधाए पुराने दायरों को तोड़कर बाहर आ चुका है और जीवन के नए सपनों के लिए नई राहें बना रहा है। जो अब किसी एक भाषा और भूगोल की क़ैद-खाने में रहकर ठहर जाने को कतई तैयार नहीं है। तब भी 'स्वं' या 'सेल्फ' को खोकर नहीं। बल्कि उसे पल-पल आत्मसजग किए रह कर।

अकारण नहीं, निदा के ख़याल किसी एक कौम या मज़हब के ख़याल नहीं हैं। न ही वे अपने पाठकों को किसी एक इकलौते ख़याल में बाँधे रखना चाहते हैं। इस तरह के जबरन के बंधन उन्हें मंज़ूर नहीं। इसको हम तब ज़्यादा समझ पाते हैं, जब हमारी भेंट उनके इस शेर से होती है-

बच्चों के छोटे हाथों को चाँद-सितारे छूने दो
चार किताबें पढ़कर ये भी हम जैसे हो जाएँगे।

वे ऐसा कैसे सोच और कह पाते हैं, इसका जवाब तभी मिल सकता है जब हम व्यवस्था की मारक चतुराइयों से वाकिफ़ हों। इससे भी कि इकाई और दहाई तो हम हैं पर व्यक्तित्व क्यों नहीं ? संख्या को रोशनी में तब्दील करने की चुनौती ही हमारे अस्तित्व की चुनौती है। निदा के यहाँ आदमीयत के इसी 'क़द' की तलाश है।

निदा को पढ़ते हुए हम इन अहसासों से अगर गुज़रते हैं तो सचमुच निदा के पाठक हो पाते हैं। भाषा, समाज, समय और चेतना के इन चौपालों पर हमारी चहलकदमी तभी संभव बन पाएगी।

000

संस्मरण आलेख

उपेक्षा, अपमान और बेक़द्री में अस्त सुर-गणपत गाथा

(हारमोनियम और ठुमरी के बेताज बादशाह भैया गणपत राव की दास्तान-ए-ज़िंदगी और मौसिकी)

पंकज पराशर

पंकज पराशर
हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ 202002 उप्र
मोबाइल- 9634282886
ईमेल- pkjppster@gmail.com

क्या अज़ीब इत्तफ़ाक है कि किसी फ़कीर तबीयत के आला दर्ज़े के शायर, कलाकार और मासूम गायक की ज़िंदगी के किसी के एक पहलू के साथ अग़र दुनिया भर की शोहरत जुड़ती है, तो दूसरे पहलू के साथ बेपनाह बदनामी भी जुड़ती चली जाती है! मिर्ज़ा असदुल्ला खाँ 'ग़ालिब' ने अपने बारे में ख़ुद लिखा है, 'होगा कोई ऐसा भी कि 'ग़ालिब' को न जाने/ शाइर तो वो अच्छा है प' बदनाम बहुत है।' ग़ालिब जितने लोकप्रिय शायर थे, अपनी आदतों और अपनी फितरत की वज़ह से उतने ही बदनाम भी रहे। तकरीबन यही स्थिति रियासत ग्वालियर के भैया राव साहब गणपत की भी थी। ग्वालियर में शायद ही कोई ऐसा आदमी हो, जो भैया राव साहब गणपत को न जानता हो, लेकिन वे भी कलावंत तो अच्छे थे, पर बदनाम बहुत रहे। ग़ालिब ने शराब, जुआ और मुसलमान महज़ 'आधा' (कर्नल ब्राऊन के सामने पेशी होने पर मिर्ज़ा ग़ालिब ने यही कहा था कि 'आधा मुसलमान' हूँ, क्योंकि शराब पीता हूँ, सूअर नहीं खाता।) होने के कारण बेशतर बदनामियाँ झेलीं, लेकिन भैया राव साहब गणपत को नशा था, तो सिर्फ संगीत का। दीवानगी थी तो सिर्फ ठुमरी लिखने और ठुमरी गाने की। बजाने की बात करें, तो हारमोनियम पर बारीक से बारीक सुर निकालने की सलाहियत बहुत मेहनत से उन्होंने हासिल की थी। हिंदू वे आधे नहीं, पूरे के पूरे थे, पर इंसान थे फ़कीर तबीयत के। सन् १८७० से १८८० के बीच जब सत्रह-अठारह रूपये में एक तोला सोना मिला करता था, तब गणपत राव ने गाना-बजाना सीखने के लिए तकरीबन सत्रह लाख रूपये फूँक दिये। हारमोनियम जैसे साज को अपनी वादन कला से आसमान की बलंदियों पर पहुँचा दिया। हारमोनियम में टैंपर्ड-स्केल होता है, स्वर एकदम कायम, बेसुरे होने का कोई ख़तरा नहीं। इसलिए 'षड़ज-चालन' का काम जिस तेज़ी और आसानी से हारमोनियम में मुमकिन है, वह तार वाले किसी वाद्य में मुमकिन नहीं। हारमोनियम के किसी भी परदे को 'सा' मान कर बजाने का जो अभ्यास हारमोनियम बजाने वाले करते थे, वह अभ्यास तंत्रकारों को नहीं होता है। न ऐसा कभी हो सकता है। क्योंकि किसी भी परदे को 'सा' मानने पर अगला स्वर कोमल ऋषभ है, जो तार वाले साज में मुमकिन नहीं।

सितार या बीन में जितने भी तार जुड़े होते हैं, वे 'सा' के परदे को 'सा' मानने पर ही अच्छे सुर में बजते हैं।

अपने ज़माने की मशहूर तवाइफ़ गौहर जान की आवाज़ में राग सोहिनी में रिकार्डेड एक ठुमरी है, 'मायका पिया बिन कछु न सोहावै' जिसके अंत में गौहर कहती हैं, 'माय नेम इज गौहर जान', ये ठुमरी भैया राव साहब गणपत।' इस ठुमरी के रचयिता भैया राव साहब गणपत थे, जो 'सुघर पिया' और 'माधो पिया' के नाम से ठुमरी की रचना किया करते थे। गायकों, तवाइफ़ों और संगीत रसिकों के बीच वे 'भैयाजी' के नाम से जाने जाते थे। गौहर जान के गाये इस ठुमरी के अंत में 'सुघर पिया' तख़ल्लुस इसी वजह से आता है। मशहूर तवाइफ़ गौहर जान की एक रिकार्डिंग सुनते हुए जब मैंने सुना कि गौहर ने गाने के अंत में हारमोनियम वादक के रूप में भैया गणपत राव का नाम लिया, तो मैं यह जानने के लिए बहुत उत्सुक हो गया कि भैया गणपत राव आख़िर थे कौन? ...और जब उनके बारे में जानना शुरू किया, तो बेहद त्रासद और तकलीफ़देह दास्तान से मेरा साबका पड़ा। जिस ग्वालियर नरेश जियाजी राव सिंधिया के वे पुत्र थे, उस ग्वालियर में उनका कभी सम्मान नहीं हुआ, लेकिन हारमोनियम और ठुमरी को जिस ऊँचाई पर भैया गणपत राव ने पहुँचाया, उसकी दूसरी मिसाल नहीं मिलती है। दतिया, रामपुर और कलकत्ता के लोग कहते हैं कि हारमोनियम बनाया भले फ्रांसिसियों ने, लेकिन उसे बजाया भैया गणपत राव ने। ऐसे अप्रतिम कलाकार भैया गणपत राव को को ख़याल गायकी और दादरा की शुरुआती तालीम अपनी माँ चंद्रभागा बाई से मिली और बाद की तालीम उस्ताद बंदे अली ख़ाँ (ग्वालियर तथा इंदौर राजदरबार के गायक और बीनकार), किराना घराना के उस्ताद सादिक अली ख़ाँ तथा रामपुर-सहसवाँन घराने के संस्थापक उस्ताद इनायत हुसैन ख़ाँ से मिली।

आज के लोकप्रिय वाद्ययंत्र हारमोनियम का इतिहास बेहद दिलचस्प है। हारमोनियम का आविष्कार भले यूरोप में हुआ, लेकिन इसका जितना सुंदर और बेहतरीन उपयोग भारतीय कलाकारों ने किया, उतना तो यूरोप के कलाकार भी नहीं कर पाये। सन् १८७५ में कलकत्ता के एक वाद्ययंत्र बनाने वाले ने हारमोनियम के यूरोपियन पैटर्न में थोड़ा बदलाव किया। हारमोनियम बजाने के लिए पैर से चलाये जाने वाले पैडल की जगह एक हाथ से चलाने वाले धौंकनी (भाथी) को जोड़ा। इसका सबसे बड़ा फायदा हुआ कि इस बदलाव के बाद अब हारमोनियम का आकार पहले से आधा हो गया और अब उसे संगीत समारोहों में आराम से नीचे बैठकर बजाया जा सकता था। अब हारमोनियम को कहीं लेकर जाना आसान गया। इस बदलाव के बाद हिंदुस्तान में हारमोनियम तेजी से लोकप्रिय हुआ और बड़े पैमाने पर इसका उत्पादन शुरू हो गया। सन् १९१५ तक भारत हारमोनियम के सबसे बड़े निर्माता देश में शुमार हो गया। उन दिनों हारमोनियम को भारत में 'बाजा' या 'पेटी' कहा जाता था, हालाँकि आज भी देश के अनेक भागों में इसे 'बाजा' ही कहा जाता है। जिस दौर में सारंगी के बिना संगीत की कल्पना तक नहीं की जा सकती थी, उस दौर में अपनी स्वीकृति के लिए हारमोनियम को बहुत संघर्ष के दौर से गुज़रना पड़ा। बहुत दिनों तक शास्त्रीय संगीत के मंचों पर एक वाद्यतंत्र के रूप में हारमोनियम प्रतिबंधित रहा। इसकी उपेक्षा का आलम ये था कि सन् १९४० से लेकर १९७१ तक वाद्ययंत्र के रूप में हारमोनियम पर 'आकाशवाणी' में प्रतिबंध लगा रहा। क्योंकि कहा गया कि सारंगी की तरह 'श्रुति' (माइक्रोटोन) और 'मींड' बजाना हारमोनियम पर संभव नहीं, इसके बावजूद एक 'बाजा' के रूप में हारमोनियम हिंदुस्तान में बना रहा। शास्त्रीय संगीत के मंचों पर जिस वाद्य को हाल तक अपनी स्वीकृति के लिए संघर्ष करना पड़ा, उस वाद्य हारमोनियम को उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में ही अपना कर ग्वालियर के भैया गणपत राव ने जिस ऊँचाई पर पहुँचाया, उसके कारण भी आज यह मानने में संकोच होता है कि यह एक विदेशी वाद्ययंत्र है!

ग्वालियर नरेश के सुपुत्र भैया राव साहब गणपत ठुमरी के रचनाकार तो थे ही, ठुमरी गायकी में 'बोल का बनाव' और 'बोल काटना'-जैसी कला उन्हीं की देन है। हारमोनियम पर ठुमरी और दादरा उनके-जैसा बजाने वाला शायद ही अब तक कोई दूसरा हुआ हो। उनके हारमोनियम वादन में सुरों का लगाव, लय का रखाव और मुरकियाँ जितनी कलात्मकता और सफाई से सुनाई देती थी, वह अद्भुत अनुभव होता था! 'बोल का बनाव' वे जिस तरह करते थे, उसे सुनकर श्रोता चकित रह जाते थे। अपने हारमोनियम पर वे 'षड्ज-चालन' करते थे यानी गायन के दौरान सभी स्वरों को 'सा' मानकर इस तरह बजाते कि राग में कहीं भी भिन्नता नहीं सुनाई पड़ती। 'षड्ज-चालन' जितनी द्रुत लय में हारमोनियम में संभव है, उतना किसी और साज में नहीं। रागों में भैया राव साहब गणपत ऐसे-ऐसे रास्ते निकालते थे कि महफिल में बैठे हुए तमाम लोग उनका मुँह ही देखते रह जाते! उनके पहले ठुमरी गायन में जो चीज़ें प्रचलित नहीं थी यानी जिस लयकारी की कल्पना भी लोगों ने नहीं की थी, उसे सुनकर चकित होना तो स्वाभाविक ही था! उनकी ठुमरी गायन की शैली यह थी कि अपने कार्यक्रम के दौरान पहले कोई बंदिश या ठुमरी गाते, उसके बाद उसका विस्तार हारमोनियम पर करते। आजकल जिस तरह तंत्री वाद्यों को दाएँ हाथ से बजाया जाता है, उसी प्रकार भैया गणपत अपने दाएँ हाथ से भाथी देकर बाएँ हाथ से हारमोनियम बजाते थे। उन्होंने ख़ुद के बजाने के लिए एक नए ढंग का हारमोनियम स्वयं बनाया था और उस हारमोनियम का नाम रखा था 'संवादिनी'। इस 'संवादिनी' के साथ ठुमरी गाने के लिए वे विभिन्न रियासतों में गए और जहाँ भी गए, वहाँ इस नए वाद्य के प्रयोग से लोगों को अपना मुरीद बनाते चले गए। अनेक सूत्र से पता चला कि भैया गणपत राव का 'संवादिनी' हारमोनियम दतिया के निकटवर्ती एक गाँव के एक भार्गव ब्राह्मण महाशय के घर में सुरक्षित रखा हुआ था। सरकार या ग्वालियर के उनके वंशज चाहते तो उनकी चीज़ों और यादों को

सहेजने के लिए आज भी एक संग्रहालय बना सकते हैं।

उनकी वादन कला के बारे में उस युग के अनेक संगीत रसिकों ने लिखा है कि वे गतकारी कभी नहीं करते थे। सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री प्रो। डी।पी। मुखर्जी ने एक संस्मरण में लिखा है, 'हमारे कॉलेज के दिनों में कलकत्ता के हैरिसन रोड पर एक मकान की तीसरी मंज़िल पर ठुमरी सीखने के लिए एक नए स्कूल की स्थापना की गई। वहाँ भैया गणपत राव अपने शिष्य मौजुद्दीन खाँ को लेकर आये और उनका कार्यक्रम रखा गया। कार्यक्रम आरंभ हुआ, जिसमें भैया साहब ने हारमोनियम पर मौजुद्दीन खाँ की संगत की तो उस समय के श्रेष्ठ ध्रुपद और ख़याल गायक मंत्रमुग्ध होकर देखते ही रह गए! मेरी नज़र में हिंदुस्तान ने ऐसा कोई ठुमरी गायक पैदा नहीं किया। मैंने गौहर जान, मलका जान, श्यामलाल खत्री और गिरिजा बाबू जैसे अनेक लोगों की आँखों में साधारण भैरवी के ठुमरी गायन में आँसू उमड़ते देखे।' कमाल की बात यह है कि ये लोग उस ठुमरी गायन पर मुग्ध थे, जिसे विष्णु नारायण भातखंडे 'क्षुद्र गायन' मानते थे। भैया गणपत राव के समय में ठुमरी को हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत में उच्च श्रेणी का गायन नहीं माना जाता था। उच्च श्रेणी का गायन था ध्रुवपद या ध्रुपद और ख़याल गायकी। भैया गणपत राव की यह दिली तमन्ना थी कि ठुमरी को भी ध्रुपद और ख़याल गायकी की तरह उच्च श्रेणी का गायन माना जाए। इसलिए भैया साहब का ठुमरी के क्षेत्र में यह योगदान बेहद अहम है कि उन्होंने ठुमरी को उच्च गायन पद्धति में स्थापित किया और सारंगी के दबदबे की जगह हारमोनियम-जैसे निषिद्ध वाद्य को स्वीकार्य बनाया। उनकी दूसरी बड़ी देन है, ठुमरी गायन में हारमोनियम का प्रवेश और उसे सम्मानजनक स्थान दिलाना। राज दरबारों और महफिलों में ठुमरी गायन के दौरान आम तौर पर सारंगी का प्रयोग होता था। हारमोनियम का प्रयोग उन दिनों भजन-कीर्तन और नाटक मंडलियों में प्रयोग होता था। भैया राव साहब गणपत के प्रयोग से पहले ध्रुपद और ख़याल ही नहीं, ठुमरी में भी हारमोनियम का प्रयोग निषिद्ध था। तर्क यह दिया जाता कि हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत में पश्चिमी देशों में बना हुआ हारमोनियम भला उपयुक्त वाद्ययंत्र कैसे हो सकता है? लेकिन हारमोनियम की पूरी क्षमता के दोहन और गुणवत्ता के वास्तविक प्रदर्शन ने इस वाद्ययंत्र को ठुमरी के लिए सर्व-स्वीकार्य बना दिया। ठुमरी के जिन भावों को एक नर्तक अपने हाव-भाव से प्रदर्शित करता है, भैया गणपत राव उसी चीज़ को अपने गले से गाकर निकालने का प्रयास करते। ठुमरी को हाव-भाव की अपेक्षा गले से अदा करना सूक्ष्म और अमूर्त होने के कारण अधिक कठिन है। इसलिए ठुमरी के बोलों को स्वर-सन्निवेश के माध्यम से अभिव्यक्त करने को उच्च कोटि की कला माना जाता है। इस आदर्श के कारण ही भैया गणपत राव के हारमोनियम वादन में श्रोताओं को गले से गायी जाने वाली ठुमरी के समान ऐसी अनुभूति होती थी कि लोग कहते कि भैया साहब के हारमोनियम में ठुमरी बजती नहीं, बोलती है।

इतना पढ़ने के बाद लग रहा होगा कि मैं बार-बार उनके नाम से पहले 'भैया' उपसर्ग क्यों लगा रहा हूँ? तो साहब, इस 'भैया' की कहानी बहुत दर्दनाक और दुःखभरी है। असल में राजाओं के परिवार में जो पुत्र राजा की विवाहिता रानी के अलावा किसी दूसरी स्त्री के गर्भ से पैदा होता था, उसे बुंदेलखंडी में 'भ्याद वाला' कहा जाता था, लेकिन ग्वालियर रियासत में ऐसे पुत्र को 'भैया' या 'भैया साहब' कहने का प्रचलन था। उस दौर में राजाओं के यहाँ 'बाइयाँ' और 'खवासिनें' होती थीं, जिनकी नियुक्ति वैसे तो राजा-रानी की सेवा के लिए होती थी, क्योंकि जब राजा-रानी के 'महल' होते यानी वे हमबिस्तर होते, तो ये 'बाइयाँ' या 'खवासिनें' राजा-रानी की सेवा-टहल के अलावा तलवार लेकर रक्षिका की भूमिका भी अदा करतीं। उस ज़माने में राजा चौबीसो घंटे तो रानी के साथ रह नहीं सकता था, इसलिए उसे सामान्य रूप से रानी से अलग अपने महल में रहना पड़ता था। ऐसे मौके पर उसका संबंध किसी 'बाई' या 'खवासिन' से हो जाता। इन्हीं से जब कोई पुत्र उत्पन्न होता, तो उस पुत्र को 'भैया' कहा जाता था। गणपत राव ग्वालियर नरेश की किसी ब्याहता रानी से नहीं, एक दरबारी गायिका चंद्रभागा 'बाई' की कोख से पैदा हुए थे। इसलिए जीवन भर उनके नाम 'भैया' उपसर्ग जुड़ा रहा। उस दौर में 'बाइयों' और 'खवासिनों' से पैदा होने वाले बच्चों को उन तमाम सामाजिक, आर्थिक लाभों से वंचित रहना पड़ता, जो ब्याहता रानी से पैदा होने वाले बच्चे को सहज ही प्राप्त था। भैया राव साहब गणपत की दास्तान-ए-ज़िंदगी इस बात की तस्दीक करती है कि झूठी इज़्जत के लिए उस दौर के सामंत क्या औरत, क्या मर्द किसी को नहीं बख़्शते थे। वे किसी को भी उसके असली हक़ से महरूम और दर-दर भटकने को मज़बूर कर सकते थे।

रियासत ग्वालियर के महाराज जियाजी राव सिंधिया (१९ जनवरी, १८३४ -२० जून, १८८६) के दरबार की मशहूर गायिका और नर्तकी थी चंद्रभागा बाई। वह देखने में अप्रतिम सुंदरी थी और उसकी आवाज़ बहुत मधुर थी। चंद्रभागा बाई को आला दर्जे का प्रशिक्षण दिलवाने के लिए जियाजी राव ने उच्च कोटि के गायकों को नियुक्त किया था। चंद्रभागा बाई का असली नाम कुछ और था, क्योंकि वह जन्म और धार्मिक विश्वासों से मुसलमान थी। चंद्रभागा-जैसा हिंदू नाम उन्होंने ख़ुद अभिनेत्री मीना कुमारी और अभिनेता दिलीप कुमार की तरह रख लिया था या किसी ने रख दिया था-इसके बारे में जानकारी नहीं मिलती। जियाजी राव और चंद्रभागा के अंतरंग रिश्तों से दो पुत्र पैदा हुए- बलवंत राव और गणपत राव। कहते हैं कि इन दोनों की पैदाइश ने दरबारी गायिका चंद्रभागा और जियाजी राव के रिश्ते को कुछ और मधुर, कुछ और सुरीला बनाया था, लेकिन जब चंद्रभागा बाई ने जियाजी राव की ब्याहता रानियों मसलन महारानी चिमनाराजे, लक्ष्मीबाई राजे, बाबूयीबाई राजे और साक्या राजे से पैदा हुए बच्चों को मिलने वाली सुविधाओं और अधिकारों की माँग अपने पुत्रों भैया बलवंत राव और भैया गणपत राव के लिए की, तो जियाजी राव का नज़रिया बदल

गया। चंद्रभागा और उनके पुत्रों के लिए सावन-भादों की तरह उमड़ने वाला प्रेम काफ़ूर हो गया! इस माँग से पहले जिस प्रेम को जियाजी राव सागर से भी गहरा होने का दावा चंद्रभागा बाई से कर रहे थे, वह पल भर में उथली नदी हो गया। चंद्रभागा बाई की माँग उन्हें नाज़ायज लगी। जिस बेटे के वे जैविक पिता थे, उस बेटे के साथ एक नाज़ायज औलाद की तरह पेश आने में उन्हें कोई दिक़्क़त महसूस नहीं हुई। क्योंकि उस दौर के किसी भी रियासत के राजा, नवाब आदि अपने कुल-ख़ानदान की परंपरा, अपनी हवस और अपनी सत्ता के आगे बाकी चीज़ों को तरज़ीह देने लायक समझता ही नहीं था। प्रेम, वात्सल्य जैसी भावनाएँ ब्याहता रानी से पैदा हुए बच्चे के लिए तो थीं, किसी और औरत से पैदा हुए बच्चे के लिए नहीं। इसलिए महारानी चिमनाराजे, लक्ष्मीबाई राजे, बाबूयीबाई राजे और साक्या राजे से पैदा हुए बच्चों को जैसी सुविधाएँ मिली हुई थी, उनमें से कोई भी अधिकार और सुविधा चंद्रभागा बाई से पैदा हुए अपने ही जैविक पुत्रों को वे नहीं दे सके, जिसके वे हक़दार थे।

महाराज जियाजी राव सिंधिया के दरबार में गायक-गायिकाओं और नर्तकियों की कमी नहीं थी, बावजूद इसके चंद्रभागा बाई से पैदा हुए वीणा वादक भैया बलवंत राव और हारमोनियम वादक भैया गणपत राव को वे क्यों कोई सम्मानजनक स्थान नहीं दे सके? क्या इसलिए कि उनके ये दोनों पुत्र उनकी ब्याहता रानी से पैदा न होकर एक नर्तकी की कोख से पैदा हुए थे? या इन दोनों पुत्रों को राज दरबार में स्थान देने से उनकी शान में कमी आती थी? सन् १८५८ में जब पेशवा नाना धोंडू पंत, राव साहब और झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई ने ग्वालियर पर आक्रमण करने से पहले जियाजी राव से मदद माँगी थी, तो जियाजी राव ने झाँसी की रानी की मदद करने से इनकार कर दिया था। क्या इन कृत्यों से जियाजी राव की शान में बट्टा नहीं लगता? लेकिन क्रूर सच यही है कि जियाजी राव ने हमेशा भैया गणपत राव का तिरस्कार किया। इसलिए वे पिता का प्यार पाने के लिए सदैव तरसते ही रहे। उन्हें अपने पिता का यह तिरस्कारपूर्ण रवैया हमेशा सालता रहा। जबकि उनके बड़े भाई बलवंत राव हमेशा धार्मिकता की चादर ओढ़े रहते और राज दरबार की किसी गतिविधि से कोई मतलब नहीं रखते थे। पिता जियाजी राव सहित उनके ख़ानदान के सभी लोगों की जन्म कुंडली बनी हुई थी, जिस वज़ह से राजा और उनके बच्चों के जन्म की वास्तविक तारीख़ जानने में कोई समस्या नहीं होती। लेकिन चंद्रभागा बाई से पैदा हुए दोनों पुत्रों की जन्म कुंडली नहीं बनी है। नतीज़ा यह हुआ कि 'भैया' गणपत राव के पिता जियाजी राव सिंधिया के जन्म और मृत्यु की तारीख़ को लेकर तो कोई उलझन नहीं है, लेकिन चंद्रभागा बाई से पैदा हुए पुत्रों के जन्म की तारीख़ को लेकर अनेक तरह की तिथियों का उल्लेख मिलता है। कोई कहता है कि भैया गणपत राव सन् १८५२ में पैदा हुए, तो कोई कहता है कि वे १८५६ में पैदा हुए, तो कुछ लोग अंदाज़ लगाते हैं कि वे सन् १८६० में पैदा हुए। इसी तरह उनकी मृत्यु को लेकर अधिकतर लोग सन् १९१९ पर एक मत हैं, तो विकीपीडिया सहित अनेक शोध-प्रबंधों में उनके देहावसान का साल सन् १९२० बताया जाता है। उनके निधन के स्थान को लेकर भी अनेक तरह की बातें की जाती हैं। कुछ लोग कहते हैं कि उनका निधन धौलपुर में हुआ था, तो ज़्यादातर लोग उनके निधन की जगह दतिया बताते हैं।

उपेक्षा, अपमान और बेक़द्री की यह रवायत बदक़िस्मती से हिंदुस्तान में सदियों से चली आ रही थी। सन् १५६१ में जब मुग़ल बादशाह जलालुद्दीन मोहम्मद अकबर के अभिभावक और उनके पिता नसीरुद्दीन मुहम्मद हुमायूँ के सर्वाधिक विश्वस्त सिपहसालार और सहयोगी रहे बैरम खाँ की गुजरात के पाटण में अफ़ग़ान सरदार मुबारक खाँ ने धोखे से हत्या कर दी, तो रहीम और उनकी माँ सलीमा सुल्ताना बेगम असहाय हो गई। सलीमा सुल्ताना बेगम मेवाती राजपूत जमाल खाँ की सुंदर एवं गुणवती कन्या थी, जिसके साथ हुमायूँ के कहने पर ही बैरम खाँ ने शादी की थी। दिलचस्प यह है कि जब सलीमा सुल्ताना बेगम से बैरम खाँ ने शादी की थी, उस वक़्त बैरम खाँ की उम्र साठ साल थी। इन्हीं दोनों के पुत्र थे हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि अब्दुर्रहीम ख़ानेख़ाना। चूँकि मुग़लिया ख़ानदान पर बैरम खाँ के बहुत सारे एहसान थे और इसके साथ ही बैरम खाँ अकबर के पिता हुमायूँ के साढ़ू भी थे, इसलिए १५६१ में बैरम खाँ की हत्या के बाद बादशाह अकबर, रहीम का लालन-पालन शाही ख़ानदान के बच्चों की तरह करना चाहते थे। पर मसला यह था कि बैरम खाँ की विधवा सलीमा सुल्ताना बेगम शाही ख़ानदान की बहू, बेटी या किसी की बीवी नहीं थी। इसलिए बादशाह अकबर चाह कर भी रहीम को वह सुख-सुविधाएँ नहीं दे सकते थे, जो शाही ख़ानदान के शहजादे और शहजादियों को स्वाभाविक रूप से प्राप्त था। इसलिए इस मसले को दूर करने के लिए उस वक़्त उन्नीस साल के बादशाह अकबर ने अपने से महज तीन साल बड़ी सलीमा सुल्ताना बेगम से उसी साल सन् १५६१ में निक़ाह पढ़वा लिया, जिस साल बैरम खाँ का क़त्ल हुआ। सलीमा सुल्ताना बेगम से निक़ाह के बाद चूँकि अब सुल्ताना बेगम बाक़ायदा शाही ख़ानदान की मलिका हो गई थी, इसलिए उनके पुत्र रहीम को मुग़लिया शाही ख़ानदान की रवायत के मुताबिक 'मिर्ज़ा खाँ' की उपाधि दी जा सकी। इसके बाद रहीम की परवरिश भी बाक़ी मुग़ल शहज़ादों की तरह होने लगी। अग़र बैरम खाँ की बेवा सलीमा सुल्ताना बेगम से बादशाह अकबर या शाही ख़ानदान का कोई शहज़ादा निक़ाह न करता, तो बादशाह चाह कर भी सलीमा सुल्ताना बेगम और उनके बेटे रहीम को शाही ख़ानदान की औरतों और बच्चों को मिलने वाली सुविधाएँ नहीं दे सकते थे। क्योंकि यही रवायत थी और बादशाह अकबर इस रवायत को तोड़ नहीं सकते थे। क्या पता यही रवायत ग्वालियर रियासत में भी रही हो कि ब्याहता रानियों से पैदा हुए बच्चों को ही राजकुमार और राजकुमारियों-जैसी सुख-सुविधा दी जाती हो। बहरहाल, मामला जो भी रहा हो, लेकिन इस रवायत के कारण ग्वालियर नरेश जियाजी राव सिंधिया और चंद्रभागा बाई के

बेटे भैया गणपत राव को राजकुमार का होने का गौरव तो दूर, राज दरबार के संगीतकार के रूप में भी उचित स्थान नहीं मिला। जियाजी राव के ख़ानदान की इस रवायत के कारण ज़िंदगी भर यह उपेक्षा अकेले भैया गणपत राव को ही नहीं झेलनी पड़ी। उनके बड़े भाई भैया बलवंत राव को भी वैसी ही उपेक्षा और अपमान से जीवन भर जूझना पड़ा।

२० जून, १८८६ को जब जियाजी राव सिंधिया की मृत्यु हुई, तो उनके उत्तराधिकारी माधोराव महज दस साल के थे, इसलिए गणपत राव को राज्य का संरक्षण प्राप्त होने का कोई सवाल ही पैदा नहीं होता था। जब गणपत राव बहुत छोटे थे, तभी माँ चंद्रभागा बाई की मृत्यु हो गई थी। इसलिए भैया बलवंत राव के अलावा दुनिया में उनका ऐसा कोई सगा नहीं था, जिससे वे अपने सुख-दु:ख को साझा कर सकें। जबकि इधर बलवंत राव को गणपत राव का इधर-उधर गाना-बजाना बिल्कुल पसंद नहीं था। इसलिए वे भी गणपत राव से नाखुश रहते और उन्हें अपमानित करते थे। बलवंत राव ने मातृहीन अनुज की शादी तक नहीं करवाई, न सम्मानपूर्वक जीवन जीने में कोई सहयोग किया। नतीज़तन गणपत राव ग्वालियर में बेहद उदास, निराश और उपेक्षित होते चले गए। सन् १८९४ में जब माधोराव को राज्य का अधिकार मिला, तो अपने से उम्र में बहुत छोटे अनुज को खुश करने के लिए गणपत राव ने उनके नाम से पदों और ठुमरियों की रचना की, लेकिन उनकी ठुमरियों से न पिता जियाजी राव कभी खुश रहे, न उनके बाद गद्दी सँभालने वाले अनुज माधोराव। एक दिलचस्प बात यह बताते चलें कि उस समय के ठुमरी के फ़नकार अपने उपनाम में 'पिया' लगाते थे और उस परंपरा में लखनऊ के नवाब वाजिद अली शाह 'अख़्तर पिया', चौलक्खी वाले वज़ीर मिर्ज़ा फ़र्रूख़ाबादी 'कदर पिया' से लेकर महाराज विंदादीन 'सनद पिया' तक सभी बेहद नामवर हुए! नवाब वाज़िद अली शाह ख़ुद उच्च कोटि के ठुमरी लेखक व कथक नर्तक थे। ब्रिटिश द्वारा लखनऊ से कोलकता निकाला किये जाने के कारण नवाब ने ठुमरी लेखन अपनी बेगम कदर पिया व अख्तर पिया के नाम लिखना शुरू किया। कदर पिया की बंदिश ठुमरी ने ध्रुपद व ख़याल गायकी को ठिकाने लगा दिया था। लल्लन पिया, सारस पिया, नज़र पिया, सनद पिया, छोटे शहरों से वाज़िद अली शाह (अख्तर पिया) के दरबारी ठुमरी लेखक होने के नाते तखल्लुस 'पिया'लगाते थे।

महाराज माधोराव के उपेक्षा भरे व्यवहार के पीछे ग्वालियर रियासत में रहने वाले तत्कालीन महाराष्ट्रियन संगीतकारों का भी हाथ था। दरअसल महाराष्ट्रियन संगीतकार नहीं चाहते थे कि ध्रुपद और ख़याल गायन के मुकाबले में ठुमरी-दादरा कभी आगे आए। जबकि भैया गणपत राव ने ठुमरी और दादरे को नया जीवन प्रदान किया था। इसलिए महाराष्ट्रियन संगीतकार हमेशा भैया गणपत राव के विरुद्ध महाराज माधोराव के कान भरते रहते। तंग आकर अंतत: गणपत राव ने हमेशा के लिए ग्वालियर छोड़ दिया और महाराज भवानी सिंह जूदेव के यहाँ दतिया चले गए। दतिया में महाराज भवानी सिंह जूदेव ने उन्हें हाथों-हाथ लिया और उनके लिए रहने के लिए 'आदे के बाग़' यानी आज के गुलाब बाग़ में एक सुंदर-सी कोठी बनवा दी। इसमें रह कर वे संगीत-साधना करते और अपने शागिर्दों को संगीत सिखाते। राग तिलक कामोद की ठुमरी, 'कंकर मार जगा गयो रे बम्हना के छोरा।' भैया जी की एक प्रिय ठुमरी थी। इस ठुमरी को गाते हुए गणपत राव जब 'बम्हना के छोरा।' कहते, तो शब्दों की अदायगी और बोल का बनाव बेमिसाल होता था। इसके अलावा वे पूरब अंग की ठुमरी और दादरा भी गाते। हारमोनियम पर उनके-जैसा ठुमरी और दादरा तो शायद ही कोई बजाता था। अपनी कला-साधना से 'ठुमरी' और 'हारमोनियम' वादन को भैया गणपत राव उर्फ 'सुघर पिया' ने जिस ऊँचाई पर पहुँचाया, उसकी दूसरी मिसाल ढूँढ़ना मुश्किल है। बावज़ूद इसके ग्वालियर में भैया जी सदा उपेक्षित रहे, जबकि दतिया नरेश ने उन्हें सिर-आँखों पर बिठाया।

दुर्भाग्य ने गणपत राव का दतिया में भी साथ नहीं छोड़ा। वे जैसे ही थोड़े व्यवस्थित हुए कि ०४ अगस्त, १९०७ को दतिया नरेश भवानी सिंह जूदेव गुज़र गए। उनके गुज़र जाने के बाद गणपत राव एक बार फिर आश्रयहीन होकर भटकने लगे। ग्वालियर नरेश माधोराव ने जब यह सुना कि उनके अग्रज गणपत राव बेसहारा होकर भटक रहे हैं, तो उनके लिए ग्वालियर में ही रहने की व्यवस्था करके बुलवा लिया। लेकिन राज परिवार के कुछ लोगों के अलावा महाराष्ट्रियन संगीतज्ञों ने एक बार फिर से भैया साहब का विरोध करना शुरू कर दिया। तब माधो महाराज ने एक अलग तरह का रास्ता निकाला। गणपत राव के रहने के लिए ग्वालियर से दूर कलकत्ता में एक कोठी बनवा दी, ताकि उनके रहने-सहने के लिए एक अच्छा ठिकाना हो और वे ग्वालियर से दूर भी रहें। कलकत्ता की उस कोठी में वे कुछ सालों तक रहे भी, लेकिन कुछ ही सालों के बाद रियासत रामपुर के नवाब हामिद अली ख़ाँ के बुलावे पर वे रामपुर चले गए। रामपुर में गणपत राव कई वर्ष तक रहे। नवाब हामिद अली ख़ाँ उनकी बहुत इज्जत करते थे और सगे भाई-जैसा मानते थे। रामपुर के छम्मन साहब की शरीके-हयात अख़्तर जान भैया राव साहब गणपत की शागिर्दा थीं और वे भी बिल्कुल उन्हीं के जैसा कमाल का हारमोनियम बजाती थीं। ख़ैर, कलकत्ता में ग्वालियर नरेश माधोराव द्वारा अपने अग्रज भैया गणपत राव के लिए बनवायी गई वह कोठी ६०-७० साल के बाद तब चर्चा में आई, जब कलकत्ता नगर निगम ने उस कोठी को तोड़ने की योजना बनायी। यह बात किसी तरह राजमाता विजयाराजे सिंधिया, जो आज के राजेनेता ज्योतिरादित्य सिंधिया की दादी थीं, को जब पता लगी, तो वे फौरन ग्वालियर से कलकत्ता के लिए रवाना हो गईं। वहाँ जाकर उन्होंने अपने प्रभाव का इस्तेमाल करके अपने ससुर महाराज माधोराव द्वारा बनवायी गई कोठी को तोड़े जाने से बचाया। कलकत्ता में उन्होंने घोषित किया कि यह कोठी हमारे चचिया ससुर भैया गणपत राव के नाम है और उनकी स्मृति को सुरक्षित रखने के लिए इस कोठी को ऐसा ही रहने दिया जाए। उस कोठी

में पहले से रहते चले आ रहे किरायेदारों को पहले की तरह ही रहने दिया जाए। विजयाराजे सिंधिया की इस बात के लिए तारीफ़ की जानी चाहिए कि आख़िरकार उन्होंने भैया गणपत राव को अपना चचिया ससुर तो माना और उनकी यादों को बनाए रखने के लिए कलकत्ता की कोठी को बचाने की व्यवस्था की। वरना सचाई तो यह है कि उनके पति के पूर्वजों ने भैया गणपत राव का सदैव तिरस्कार ही किया और ग्वालियर में उन्हें इतना अपमानित किया गया कि वे वहाँ से जीवन भर पलायन ही करते रहे। उनके पिता ग्वालियर नरेश जियाजी राव सिंधिया ने इसके लिए सख़्त ताक़ीद की थी कि गणपत राव को उनके ख़ानदान से जोड़ कर न देखा जाए। इसलिए सिंधिया राजवंश में उनकी गणना नहीं की गई। क्योंकि जियाजी राव सिंधिया को लगता था कि वे आख़िरकार थे तो एक वेश्यापुत्र ही और उनकी संगत हमेशा वेश्याओं, तवाइफ़ों से रहती थी, इसलिए वे उनसे नाराज़ रहते थे। इस वज़ह से आलम ये रहा कि उनकी रोजी-रोटी का कोई ज़रिया नहीं था और वे ग्वालियर से निर्वासित थे। ऐसी घोर विषम परिस्थिति में भी वे एक तपोनिष्ठ संगीत साधक बने रहे, यह क्या कम बड़ी बात है!

कलकत्ता पहुँच कर भैया गणपत राव ने संगीत रसिकों का दिल लूट लिया था। लखनऊ के निर्वासित नवाब वाज़िद अली शाह के मटिया-बुर्ज स्थित दरबार में गायिका रह चुकी बड़ी मलका जान और उनकी इकलौती बेटी गौहर जान ने जब भैया गणपत राव का ठुमरी गायन और बिल्कुल अलग अंदाज़ में हारमोनियम वादन को सुना, तो रात भर रोती रही कि काश! वे भी ऐसा गा पातीं! गौहर जान, भैया गणपत राव और उनके शागिर्द मौजुद्दीन खाँ के गायन से बेहद मुतास्सिर हुई। कलकत्ता में रहने वाली तवाइफ़ों के बीच भैया गणपत राव की चर्चा होने लगी और वे जल्दी ही वहाँ मशहूर हो गए। कलकत्ता में उन्होंने एक ऐसा ठुमरी स्कूल खड़ा कर दिया, जहाँ बड़े-बड़े रईस और संगीतकार गायन की तालीम के लिए आने लगे। उनके हारमोनियम वादन ने गायक की द्रुत लय की तानों की संगत करने में सारंगी को भी पीछे छोड़ दिया। इसके बाद हारमोनियम ने मंच पर सारंगी की टक्कर में अपनी प्रतिष्ठा बना ली और कलकत्ता के गायकों ने बाकायदा हारमोनियम को अपनाना शुरू कर दिया। भैया गणपत राव के गायन-वादन की शैली का कलकत्ता वालों पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि अब वहाँ 'बोल बनाव' के बग़ैर गायी जाने वाली ठुमरी अधूरी समझी जाने लगी। जब ठुमरी को स्वतंत्र रूप से प्रतिष्ठा मिल गई, तो कथक के साथ जो उसका चोली-दामन का साथ चला आ रहा था, वह छूट गया। ग्रामोफ़ोन कंपनी के आ जाने से ठुमरी गायन के रिकॉर्ड तैयार होने लगे और हिंदुस्तान के बाज़ारों में बिकने के लिए सुलभ हो गए। दुर्भाग्य से भैया गणपत राव के ठुमरी गायन और हारमोनियम वादन का कोई रिकॉर्ड नहीं बन पाया, जिस वज़ह से उनके गायन-वादन का कोई नमूना आज किसी संगीत रसिक के पास नहीं है। इस संदर्भ में लगे हाथों दतिया से संबंधित एक और दास्ताँ आपको सुनाते चलें। सन् १९११ में जब हिंदुस्तान की राजधानी कलकत्ता से हटाकर दिल्ली कर दी गई, तो भैया गणपत राव दिल्ली गए और वहाँ दतिया नरेश महाराज गोविंद सिंह जूदेव (सत्ता काल सन् १९०७ से १९५१) से उनकी भेंट हो गई। महाराज गोविंद सिंह जूदेव अपने पिता भवानी सिंह जूदेव के प्रिय कलावंत रह चुके भैया गणपत राव से मिलकर बहुत खुश हुए और उन्हें आदर से दतिया ले आए। भैया साहब के दतिया आते ही दुर्भाग्य ने एक बार फिर खेल दिखाया। ब्रिटिश सरकार ने दतिया नरेश को सत्ता से हटाकर काले पानी की सज़ा देते हुए उन्हें अंडमान-निकोबार भेज दिया, जहाँ से वे दक्षिण अफ़्रीका चले गए। दो-ढाई वर्षों के बाद ब्रिटिश हुकूमत ने दतिया रियासत की सत्ता उन्हें फिर से सौंप दी, लेकिन इन सब घटनाक्रमों के बीच भैया गणपत राव दतिया छोड़कर चले गए। जब वे दोबारा दतिया लौटे, तो इस बीच परिवर्तन यह हुआ था कि महाराज भवानी सिंह जूदेव के निधन के बाद दतिया के बाद बहुत सारे संगीतज्ञ वहाँ से जा चुके थे और रह गए थे कुछ बूढ़े-पुराने गायक-वादक। इस मंज़र को देखकर भावुक भैया गणपत राव को बड़ा झटका लगा और वे विचलित हो गए।

भैया राव साहब गणपत जब पाँच साल के थे, तो सन् १८५७ में अँगरेज़ों के विरुद्ध आज़ादी की पहली लड़ाई नाकामयाब रही थी और एक-एक करके देसी रियासतें ब्रिटिश शासन के कब्जे में आती जा रही थीं। गाने-बजाने वाले लोगों से राजाश्रय छिनता जा रहा था और बड़े-बड़े कलावंत तक दर-दर भटकने लगे थे। अँगरेज़ों को भारतीय कला और संगीत से न कोई लगाव था, न इसके रहने या मिट जाने से उन्हें कोई फ़र्क पड़ता था। ऐसे मुश्किल वक़्त में हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत, ख़ास तौर पर ठुमरी को तवाइफ़ों ने जिंदा रखने में बड़ा योगदान दिया। अवध के जाने-माने संगीतज्ञ उस्ताद सादिक अली खाँ साहब को पूरे हिंदुस्तान में ठुमरी को लोकप्रिय बनाने का श्रेय दिया जाता है। इन्हीं सादिक अली खाँ के ख़ास शागिर्द थे भैया राव साहब गणपत, जो हारमोनियम बजाने की कला में बहुत आगे गए। उस्ताद सादिक अली खाँ की ठुमरियों पर दीवाने होकर उन्होंने लखनऊ की ठुमरी को अपनाया था। ठुमरी की विकास-यात्रा में नए-नए प्रयोग हुए तो कुछ भ्रांतियाँ और रूढ़ियाँ भी टूटीं। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में ब्रिटिश अधिकारियों की देखा-देखी शेक्सपीयर के नाटकों के मंचन और ओपेरा आदि के लिए बने रंगमंच पर ठुमरियों और कथक नृत्य की प्रस्तुतियाँ होने लगी थीं। ठुमरी दरबार की ऊँची दीवार से बाहर तो निकल आई, लेकिन जन-सामान्य से उसकी दूरी अभी भी बनी हुई थी, लेकिन रईसों और बड़े लोगों के यहाँ ऐसे आयोजन होते रहते थे।

बात १९०९ की है, बनारस के प्रसिद्ध रईस और संगीत-प्रेमी मुंशी माधवलाल की विशाल कोठी में संगीत की महफ़िल का आयोजन हुआ था। जिसमें उस दौर की तमाम मशहूर गायिकाएँ राजेश्वरी बाई (सिद्धेश्वरी देवी की मौसी), हुस्ना बाई, मथुरा के शीर्षस्थ गायक चंदन चौबे, ग्वालियर से भैया राव साहब गणपत, कलकत्ता के श्यामलाल खत्री और

प्रसिद्ध सारंगी-नवाज छन्नू खाँ बुलाए गए थे। भैया गणपत राव उस महफिल का संचालन कर रहे थे। बनारस के एक अन्य रईस सेठ धुमीमल उस महफ़िल में एक भोले-भाले किशोर को लेकर आए थे। चंदन चौबे के ध्रुवपद गायन के बाद राजेश्वरी और हुस्ना बाई के ठुमरी गायन की तैयारी चल रही थी। उसी मध्यांतर में सेठ धुमीमल ने पाँच मिनट के लिए उस भोले-भाले किशोर को सुन लेने का आग्रह किया। भैया गणपत राव की सहमति मिलने पर उस किशोर ने जब पूरे आत्मविश्वास के साथ राग 'ललित' का आलाप किया, तो पूरी महफ़िल दंग रह गई। पंद्रह साल का वह किशोर मौज़ुद्दीन खाँ थे, जिन्होंने उस महफ़िल में बड़े-बड़े उस्तादों और संगीत के पारखियों के बीच 'ललित' का ऐसा जादू चलाया कि उसके प्रवाह में सब खो गए! बंदिश के बाद जब तानों की बारी आई, तो हारमोनियम पर साथ दे रहे श्यामलाल खत्री की ऊँगलियाँ मौज़ुद्दीन खाँ की फर्राटेदार तानों से बार-बार उलझने लगीं। इस पर भैया गणपत राव ने हारमोनियम अपनी ओर खींच लिया और लगे उनके साथ संगत करने। दोनों में जबरदस्त होड़ लग गई। पूरी महफ़िल वाह-वाह करने लगी। जिस किशोर मौज़ुद्दीन खाँ को बतौर 'फिलर' पाँच मिनट के लिए मंच दिया गया था, उसने कद्रदानों की उस महफ़िल को डेढ़ घण्टे से भी अधिक समय तक बाँधे रखा। इसी महफ़िल में मौज़ुद्दीन खाँ, भैया गणपत राव के गंडाबद्ध शिष्य बने।

मौज़ुद्दीन खाँ का जन्म पंजाब के नालागढ़ रियासत में हुआ था। उन्हें मौसिकी की शुरुआती तालीम अपने वालिद उस्ताद गुलाम हुसैन, चचा रहमत खाँ और वालिदा जैबुन्निसा से मिली। जब उनके वालदैन का इंतकाल हो गया, तो उन्होंने पटियाला घराने के आलिया-फत्तू से ख़याल गायकी की तालीम हासिल की। मौज़ुद्दीन खाँ की गायकी में बोल-बनाव की प्रधानता थी और वे गीत के बोलों को स्वरों की मदद से ही ज़ाहिर करने के हामी थे। ठुमरी में बनारसी पुट, लोकधुनों को शास्त्रीय शुद्धता के साथ समेटने की वज़ह से ही मौज़ुद्दीन खाँ को बनारसी ठुमरी का जन्मदाता कहा जाता है। मौज़ुद्दीन खाँ के बारे में बनारस में एक क़िस्सा प्रचलित है। कहते हैं कि बरसात का मौसम था और बनारस की मशहूर गायिका राजेश्वरी देवी के घर में गाने की महफिल सजी थी। इस महफिल में ठुमरी के बेताज बादशाह मौज़ुद्दीन खाँ गा रहे थे, 'राजा केबड़िया खोलो, रस की बूँदे पड़े।' बाहर जोरों की बारिश हो रही थी और सुनने वालों का जमघट लगा हुआ था। आँगन में घुटनों तक पानी भर गया और लोग पानी में खड़े होकर सुन रहे थे। ठुमरी गायकी में अंतरा कहने की नौबत ही नहीं आई, सिर्फ़ स्थायी में पूरी रात गुज़र गई। बनारस की बड़ी मोती बाई ठुमरी में मौज़ुद्दीन खाँ की शागिर्दा थी तथा बड़ी मोती बाई को भैया गणपत राव की परंपरा का प्रतीक माना जाना चाहिए।

बीसवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में रईसों और जमींदारों की कोठियों में संगीत की ऐसी महफ़िलें सजती रहती थी। ऐसी महफ़िलों में बड़े दरबारी संगीतकार और तवाइफ़ों की सहभागिता रहती थी। संगीत देवालयों से राज-दरबार और फिर वहाँ से निकल कर धनिकों की महफ़िलों तक पहुँच गया था। ठुमरी ने ऐसी महफ़िलों के जरिए ना केवल अपने अस्तित्व को बचाए रखा, बल्कि इस शैली में नित नए प्रयोग भी चल रहे थे। जिस तरह भैया गणपत राव अपने उस्ताद सादिक अली खाँ की ठुमरी का पाठांतर करते थे, उसी तरह मौज़ुद्दीन खाँ अपने गुरु भैया गणपत राव की ठुमरी की अपने ढंग से व्याख्या करते थे। महज तैंतीस साल की उम्र में गुज़र जाने वाले मौज़ुद्दीन खाँ ने ठुमरी शैली को इतना समृद्ध कर दिया कि आज के ठुमरी गायक भी सम्मान के साथ उनकी गायन शैली को स्वीकार करते हैं। ठुमरी के इस स्वरूप को 'बंदिश' अथवा 'बोल-बाँट' की ठुमरी का नाम दिया गया। सच कहा जाए तो ऐसी ही छोटी-छोटी महफ़िलों के कारण ही तमाम प्रतिबंधों के बावजूद भारतीय संगीत की अस्तित्व-रक्षा हो सकी।

000

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : शिवना साहित्यिकी

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : ज़ुबैर शेख़।

पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।

पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।

पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम : पंकज कुमार पुरोहित। पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 20 मार्च 2021

हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित

(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

पुस्तकालय से

इन दिनों जो पढ़ा गया

सुधा ओम ढींगरा

पुकारती हैं स्मृतियाँ
आनंद पचौरी
अन्दाज़-ए-बयाँ उर्फ़ रवि कथा
ममता कालिया
तिल भर जगह नहीं
चित्रा मुद्गल
कोई ख़ुशबू उदास करती है
नीलिमा शर्मा

सुधा ओम ढींगरा
101, गाईमन कोर्ट, मोर्रिस्विल
नॉर्थ कैरोलाइना-27560, यू.एस. ए.
मोबाइल- +1-919-801-0672
ईमेल- sudhadrishti@gmail.com

पुकारती हैं स्मृतियाँ

प्रकृति सृष्टि का महाकाव्य है और हम सब उसके छंद। छंदबद्ध लय और समय के ताल के साथ प्रकृति का समन्वय एक रहस्यमय और सुखद आह्लाद भरे संगीत की रचना करता है। यदि आंतरिक दृष्टि से देखें तो प्रकृति के हर स्वरूप के साथ हमारा एक तादात्म्य बनता दिखेगा, यही कविता की सार्वभौमिकता और निरंतरता है। मैं अपने चारों ओर इस काव्य का गान सुनता हूँ और उसे आपको भी सुनने के लिए आमंत्रण दे रहा हूँ। निवेदन में लिखी आनंद पचौरी की इन पंक्तियों ने मुझे काव्य संग्रह पढ़ने के लिए उत्सुक किया।

पहली कविता 'कविता की आहट' ने ही बाँध लिया- सहज ही / रख लेता हूँ कभी-कभी सिरहाने / कागज़ और कलम / चेतना ग्रहण कर लेती है / उसके आगमन की पूर्व सूचना / अंदर कहीं बजने लगती हैं घंटियाँ / दूर मंदिर से आती किसी प्रार्थना सी।

कविता की अनुभूति की बेहतरीन अभिव्यक्ति है ये पंक्तियाँ।

प्रकृति से गहन लगाव की संवेदनशील अभिव्यक्ति देखें- सृष्टि, / सत्ता है बूँद की / फिर भी बूँद-बूँद को तरस रहा है आदमी / सूखे हलक और मृतप्राय: आत्माओं को / चाहिए बस एक बूँद / जो लौटा दे जीवन की सार्थकता / आदमी के आदमी होने में।

'कविता साँस है' में संगीत सुनाई देता है। कवि ने कविता को जीवन मानते हुए ख़ूबसूरती पिरोई है- साँसों का चलना / कविता का स्पंदन है / गुनगुनाती हवा गाती रहती है / स्वयं में, कविता / प्रकृति लरजती है लयबद्ध ताल में / अपनी धुन में, मौसम के साथ / हर अस्तित्व के प्राण में / क्षण-क्षण में कण-कण में / अनंत ऊर्जा से व्याप्त / रहती है कविता।

प्रेम की सुंदर अभिव्यक्ति विस्तार की इन पंक्तियों में देखें- मैं, दीप हो जाऊँ / टिमटिमाता अपने अँधेरों में / तुम उदित हो मेरे अँधेरों के पार / प्रात: की गुलाबी धूप सी, / मैं, / तुम में समाहित होकर / हो जाऊँ अनंत।

देश के हालात-परिस्थितियों को देखते हुए आनंद जी की क़लम नेताओं के लिए तीखे तेवरों में कहती है - क्या तुम्हें दिखाई नहीं देती / विश्वास भरे हाथों की छाप / बड़ी आशा से जो लगाई जाती है / तुम्हारी पीठ पर / कभी अपने को देखने का साहस जुटा सको तो देखना / सिसकियों और आँसुओं की बाढ़ / एक बार में ही बहा ले जाएगी / तुम्हारा खोखला अभिजात्य व्यक्तित्व।

आनंद जी ने हर विषय पर लिखा है। प्रकृति, आध्यात्मिक चिंतन, प्रेम यहाँ तक कि लोक गायक पर भी। कवि की संवेदना हर वर्ग के साथ बेहद संजीदगी के साथ उभरी है- समय के प्रबल प्रवाह में / वह समेटता है बिखरे टुकड़े, /धूमिल अध्यायों के / रच देता है अपने संगीत से / एक तिलस्मी संसार / इतिहास को पुनर्जीवित करने की, / हठीली कोशिशों में।

खेल और किसान, न्यूयॉर्क, शरणार्थी शिविर में बच्चे का जन्म, प्रगति पर देश, आदमी और कपड़े, सीरिया का दर्द इत्यादि ऐसी कविताएँ हैं, जो देश की समस्याओं के साथ -साथ वैश्विक अनुभूतियों की भी अभिव्यक्ति है।

कविताएँ कवि के वे एहसास होते हैं जो पाठक महसूस करता है, या यूँ कहा जाए कि पाठक तक पहुँचते हैं। आनंद जी ने अगर बेटे की बात की है, तो नौकर, कुत्ता और पुराने ताले पर भी लिखा है।

कविता का विषय कोई भी हो, कवि की संवेदना और भावों की अभिव्यक्ति का स्तर कैसा है, कितनी गहराई से वे पाठक के हृदय को छूती हैं, किसी भी काव्य-संग्रह में यही महत्त्वपूर्ण होता है। आनंद पचौरी के काव्य संग्रह 'पुकारती हैं स्मृतियाँ' की एक-एक कविता भीतर तक प्रभाव डालती हैं। कुछ कविताएँ याद रहने वाली कविताएँ हैं। एक पठनीय संग्रह के लिए शिवना प्रकाशन और आनंद पचौरी को बधाई!

000

अन्दाज़-ए-बयाँ उर्फ़ रवि कथा

रवीन्द्र कालिया जी का ज़िक्र घर में ख़ूब होता था। परिवार के कई सदस्य उनके मित्र थे। रवीन्द्र कालिया जी को मैं उनकी कहानियों से जानती थी। अमेरिका में जब उनकी किताब 'ग़ालिब छुटी शराब' पढ़ी, तो उनके गद्य से इतनी प्रभावित हुई कि 'ग़लिब छुटी किताब' की पाँच कापियाँ आर्डर की और एक कॉपी सत्यपाल आनंद जी को भेजी, जिनका ज़िक्र इस किताब में है और बाकी अपने दोस्तों को पढ़ने के लिए उपहार में दीं। ममता कालिया जी की सहज भाषा और शैली की प्रशंसिका हूँ।ममता जी की कहानियाँ वाली सभी पत्रिकाएँ मंगवाई जाती थीं। रवि कथा जब हाथ में आई तो कवर पेज पर ही फैज़ की पंक्तियाँ- हर क़दम हमने आशिक़ी की है... पढ़कर किताब पढ़ने की जिज्ञासा जाग उठी। ममता जी के शब्दों में-रवि की छवि आँखों में लिए मैंने न जाने कितनी किताबें पढ़ डालीं, कितने कागज़ काले कर डाले। हर रात की सुबह बड़ी मुश्किल से उगी। हर वक़्त, हर घड़ी यही लगा रहता है- 'मेरे ख़यालों की रहगुज़र से / वो देखिए वो गुज़र रहे हैं।'

अकेलेपन के दर्द से भीगे पृष्ठ पढ़कर सोचने लगी, शायद यह पूरी किताब न पढ़ सकूँ.... रवि कथा जब पढ़नी शुरू की तो पढ़ती चली गई। ममता कालिया जी की लेखनी ने तो मेरे जैसे कितनों को प्रत्साहित किया। रवि कथा इतने रोचक तरीके से लिखी गई है, अपने साथ बहा ले जाती है। प्रेम से ओत-प्रोत।

'ग़ालिब छुट्टी शराब' के लेखक रविन्द्र कालिया मेरे ही शहर जालंधर से थे और रवि कथा पढ़ते हुए मैं जालंधर के उन्हीं बाज़ारों-गलियों में घूमी जहाँ मैं पली और बड़ी हुई।

रवि कथा में ममता जी के संस्मरण पढ़ते हुए कहीं प्रेमी के बिछुड़ जाने पर प्रेमिका का दर्द, पीड़ा और अकेलेपन का एहसास होता है। कहीं अपनी शर्तों पर जीता हुआ प्रेमी नज़र आता है। कहीं प्रेम में आकंठ डूबी प्रेमिका मध्यवर्गीय गृहणी की तरह सास को खुश करती हुई, प्रेमी जो अब पति है, के इर्द-गिर्द घूमती, बच्चों और गृहस्थी का गणित संवारती दिखती है।

प्रेम जब आत्मा की गहराइयों तक उतर जाता है तभी प्रेमी की हर अदा, हर रूप का ज़िक्र यूँ होता है-

जितनी बार रवि का ध्यान आता है उनकी ख़ूबसूरती के साथ उनकी ख़ुशमिज़ाजी भी चली जाती है। एक ऐसा इंसान जिसके पास दोस्तों के लिए, घर के लिए, वक़्त ही वक़्त था। कोई हमारे यहाँ आता तो मेहमान से ज़्यादा मेज़बान मुदित हो जाता।

रवि की हाज़िर जवाबी और सेंस ऑफ़ ह्यूमर के कारण उनसे आकृष्ट होने वाली लड़कियों और महिलाओं की तादाद भी कम न थी। इनमें वे छात्राएँ तो थीं ही जिन्होंने उनकी कहानियाँ पढ़ रखी थीं, वे भी थीं जिन्हें इनके लिखने से ताल्लुक़ कम और बतरस से ज़्यादा था।

वे अपनी कत्थई आँखों समेत सफ़ेद दाँतों से जब हँसते, लगता सूरज और चाँद एक साथ निकल रहे हैं।

पीली रज़ाई पर प्रियतम रवि की ज़िद और अंत में प्रियतमा ममता का समर्पण मेरी आँखों में नमी ले आया, जब वे लिखती हैं-मैंने बिस्तर पर पुराने खेस रखे और मुँह-हाथ धोकर नए सिरे से प्रियतम का मुकाबला करने को तैयार हो गई।

ममता जी ने बातों -बातों में उस समय के साहित्य के प्रतिक्रियावादी दौर का ज़िक्र भी कर दिया- साहित्य का वह प्रतिगामी दौर था जो तरह-तरह के साहित्य-रूपों में सामने आ रहा था। धड़ाधड़ शादियाँ टूट रही थीं। प्रेम प्रसंग पिट रहे थे और दाम्पत्य दरक रहे थे। दिल्ली में ये दौर भी अपने सांघातिक रूप में था तो अन्य शहरों में कमोबेश। ये कविता में अकविता का दौर था जब श्रीकांत वर्मा जैसे कवि ने कहा था, क्या मैं पड़ा रहूँ अपनी पत्नी की जीभ और जाँघ के चालू भूगोल में?' कहानी में यह अकहानी का दौर था। नाटक की जगह अब्सर्ड नाटक का बोलबाला था।

युवा पीढ़ी पर इन परिवर्तनों के घातक प्रभाव पड़ रहे थे। उस दौर में न जाने कितने जोड़े बिछड़े और कितने घर उजड़े। इसी से कहते हैं 'शादी करना आसान है घर बसाना मुश्किल।'

टूटन के उस दौर में ममता जी ने प्रेम के झूले झूलते हुए, गृहस्थी की चुनौतियों का सामना करते हुए, अपने घर को संवारा, सजाया और सहेजा।

हर अध्याय से पहले ग़ालिब और फैज़ की शायरी ने और भी रोमांच भर दिया है...

एक जगह ममता जी लिखती हैं-आमतौर पर प्रेम कहानियों में प्रेमी और प्रेमिका दोनों मर जाते हैं और कहानी ख़त्म हो जाती है। हीर-राँझा, लैला-मजनूँ, सोहनी-महिवाल की जोड़ियों में एक के बग़ैर दूसरे की कल्पना भी असंभव है। हमारा प्रेम इतना सघन था कि मैं सोचा करती हम भी ऐसी जोड़ी साबित होंगे।

रवि कथा में प्रेम के तार प्रेम की ग्लू से ही गुंथे हैं। ममता जी ने कुशलता से यादों का पिटारा खोला है, जिसने ममता जी और रवि जी के कई रूपों से परिचय हुआ। रोचक उपन्यास-सा आनंद देती पठनीय पुस्तक।

000

तिल भर जगह नहीं

पत्रकारिता के दिनों में मुझे कई बार दिल्ली जाना पड़ता। अक्सर एक ही दिन का काम होता था। जब कभी मुझे दो दिन का समय मिलता तो मैं सारिका के ऑफ़िस ज़रूर जाती। एक दिन मुझे वहाँ एक लंबा-तगड़ा व्यक्ति मिला। उसके व्यक्तित्व से प्रभावित हुई। अभिवादन में मेरे हाथ जुड़ गए। स्नेह से मेरे अभिवादन का उत्तर देकर वह व्यक्ति वहाँ से चला गया। बाद में मुझे पता चला है कि वे अवधनारायण मुद्गल थे। बहुत अफ़सोस हुआ कि उनसे बात नहीं कर पाई। फिर उस दफ़्तर में कभी नहीं जा पाई; क्योंकि कुछ दिनों बाद मेरी शादी हो गई और मैं अमेरिका आ गई। सन् १९८२ की बात है।

गत दिनों चित्रा मुद्गल जी द्वारा कवि-कथाकार-संपादक अवधनारायण मुद्गल जी पर लिखित 'तिल भर जगह नहीं' पुस्तक मिली। पुस्तक देखते ही दिल ख़ुश हो गया। अवधनारायण जी के बारे में जानने की जिज्ञासा जगी।

पुस्तक 'तिल भर जगह नहीं' अवध

नारायण मुद्गल जी पर एक तरह का शोध-ग्रंथ है, जिससे आगामी पीढ़ी भी उनके बारे में बहुत अच्छी तरह जान जाएगी। चित्रा जी ने बहुत मेहनत से इस पुस्तक को तैयार किया है।

अवध जी का परिचय, लेखक अवध नारायण मुद्गल, अवध नारायण मुद्गल: व्यक्तित्व, एक सामाजिक का रूप, सम्पादक अवधनारायण मुद्गल, कवि का रूप, व्यक्तित्व का कृतित्व पर प्रभाव, एक रूपांतरकार का रूप, कुशल साक्षात्कारकर्ता, अवधनारायण मुद्गल: ग़ैर-पारम्परिक ऐतिहासिक दृष्टि, विविध सन्दर्भ, उपसंहार, परिशिष्ट, सन्दर्भ-सूची, फ़ोटो एलबम।

क्रमवार इन्हें पढ़ते हुए एक विद्यार्थी की तरह अवध जी को समझा और जाना जा सकता है।

पुस्तक के एक हिस्से लेखक अवध नारायण मुद्गल में चित्रा जी ने अवध जी की पहली कहानी और उसके बाद की कहानियों का विश्लेषण बहुत बख़ूबी से किया है। चित्रा जी स्वयं एक वरिष्ठ, प्रतिष्ठित कहानीकार और उपन्यासकार हैं। मेरे जैसे बहुत से लेखकों ने उनसे लिखने की प्रेरणा ली है। साहित्यकार और सम्पादक पति और साथी के बारे में उनका लिखा पढ़ते हुए विभोर हो गई।

बड़ी कुशलता से वे अवध जी के साथ खड़ी होती हैं-अधिकांश कहानीकार महानगर बोध से बँधे चले आ रहे थे। नई कहानी और अकहानी के मध्य एक संघर्ष चल रहा था। कवि- कथाकार अवध भी सरलता से इस व्याकरण में बह सकते थे। किंतु उनमें एक क़स्बाई सोच भी मौजूद थी।

यह पुस्तक पढ़कर मैंने अवधनारायण जी को अनेक रूपों में जाना। अवधनारायण मुद्गल जी ने न केवल स्वयं लघुकथाएँ लिखीं, वे इस विधा के आलोचना पक्ष से भी जुड़े। 'सारिका' के सम्पादक के रूप में उन्होंने लघुकथाओं को पुनर्जीवन प्रदान किया।

एक कवि के रूप में जब उनके बारे में पढ़ा तो कई कविताएँ मन को छू गईं।

मैं / नागों की भीड़ में / यक्ष के सारे मन्त्र भूल गया हूँ / तिल भर जगह नहीं / जहाँ मैं अपना हवन कुण्ड स्थापित कर लूँ।

उनकी कही ग़ज़ल देखिए- कस्बें हों या शहर या कि दूर के देहात / हर जाँ जनाब जाते हैं मालिक के वास्ते

व्यक्तित्व का कृतित्व पर प्रभाव के अंतर्गत चित्रा जी लिखती हैं- अवध इस बात से भी बहुत हताश रहते थे कि उनके समय का साहित्य समाज बेहद संकीर्ण सोच वाला होता जा रहा है। वह ऐसे कोष्ठकों में है, जिससे बाहर आने का उसका मन ही नहीं। वह न दूसरों में शामिल होना चाहता है न अपने में दूसरों को शामिल करना चाहता है। ऐसे में वह यह नहीं समझ पा रहे कि क्या करें?

यह पुस्तक पढ़कर उस समय के साहित्य जगत् की भी जानकारी मिलती है।

अवधनारायण मुद्गल जी एक अच्छे पिता थे, जो अपनी पुत्री के जाने के बाद भी उससे कभी अलग नहीं हुए। एक संपादक के रूप में उन्होंने 'सारिका' के यादगार विशेषांक दिए।

चित्रा जी के ही शब्दों में मैं अपनी बात समाप्त करती हूँ- ''उनका स्वभाव ऐसा था कि जिज्ञासु उनमें हरदम मौजूद रहता था। वह सिर्फ़ अपनी न कहते, दूसरे की भी भरपूर सुनते। विट तो उनके अंदर कूट- कूट कर भरा हुआ था। जिस क्षण को जीते, शिद्दत से जीते। उन्हें आत्मप्रशंसा के भाव में लिप्त शायद ही लोगों ने कभी देखा हो। वह आत्मालोचना भी बड़े सहज भाव से करते और अपराध-बोध या आत्मस्वीकार भी। सीधे दिखते, सरल लगते, किन्तु आत्माभिमान उसमें कूट-कूट कर भरा था। जहाँ उन्हें लगता है कि उनके सम्मान की रक्षा तरीक़े से न हो सकेगी, वहाँ वे बने रहना उचित न समझते। उनकी ख़ामोशी ऐसी होती कि बहुत कुछ कह जाती। उनकी ख़ामोशी अभी भी बहुत कुछ कहती रहती है, सुनती रहती हूँ मैं ।'' यह पुस्तक शोधार्थियों के बहुत काम आएगी।

000

कोई ख़ुशबू उदास करती है

कोई पुस्तक हाथ में आती है और उसे पढ़ना भी शुरू कर देते हैं तभी गृहस्थी की ज़िम्मेदारियाँ और व्यावसायिक प्रतिबद्धताएँ क़तार बाँध कर चली आती हैं। किताब के कुछ पन्ने ही पढ़ें होते हैं, जिन्होंने अपने साथ बाँध लिया होता हैं। नीलिमा शर्मा के कहानी संग्रह 'कोई ख़ुशबू उदास करती है' के साथ भी यही हुआ। पर ज़रूरी और महत्त्वपूर्ण कार्यों को करते हुए ही मैंने समय निकाल-निकाल कर इस संग्रह की कहानियाँ पढ़ी।

कहानियाँ वही होती है जो जीवन और समाज के यथार्थ को सहज और सशक्त रूप से अभिव्यक्त कर सकें। समकालीन कहानियाँ समाज के आम जीवन के यथार्थ के अति नज़दीक पहुँचती जा रही है। यही वजह है कि आज कल की कहानियाँ जो लिखी जा रही हैं वे समाज के ज्वलंत मुद्दों को जीवन में गूँथ कर अभिव्यक्त करती हुई दिखाई पड़ती हैं।

वर्तमान का आईना में मनीषा कुलश्रेष्ठ आगे लिखती है नीलिमा शर्मा का कहानी संग्रह 'कोई ख़ुशबू उदास करती है' जीवन से निकली सूक्ष्म और स्थूल मानवीय संवेदनाओं का जीवंत दस्तावेज़ है, जहाँ जीवन और उसके नियमित परिवर्तन परिलक्षित होते हैं। चाहे वे रिश्ते, परिस्थितियों, भावों और समय के परिवर्तन ही क्यों न हों। मनीषा जी की इन्हीं पंक्तियों ने 'कोई ख़ुशबू उदास करती है' कहानी संग्रह पढ़ने के लिए उकसाया।

'कोई ख़ुशबू उदास करती है' कहानी संग्रह की कहानियों की चर्चा करने से पहले मैं यह ज़रूर कहना चाहूँगी कि इसे पढ़ते हुए मैं पंजाब के माहौल में चली गई। पंजाब के लोक गीतों ने कुछ कहानियों के शिल्प को जहाँ सुंदर बनाया, वहीं पंजाबी भाषा के तड़के ने उन्हें और ख़ूबसूरती दी।

सभी कहानियाँ रोज़मर्रा के जीवन से प्रभावित है। लेखिका वर्णात्मक शैली में अपनी बात कहती हैं। कहानियों के कथ्य और कहन में मौलिकता तथा नयापन है। यहाँ कहानियों पर चर्चा नहीं करूँगी, चाहूँगी कि पाठक पढ़ें। नीलिमा शर्मा का कहानी संग्रह 'कोई ख़ुशबू उदास करती है' एक पठनीय संग्रह है और शिवना प्रकाशन से आया है और अमेज़ॉन पर उपलब्ध है।

000

पुस्तक समीक्षा

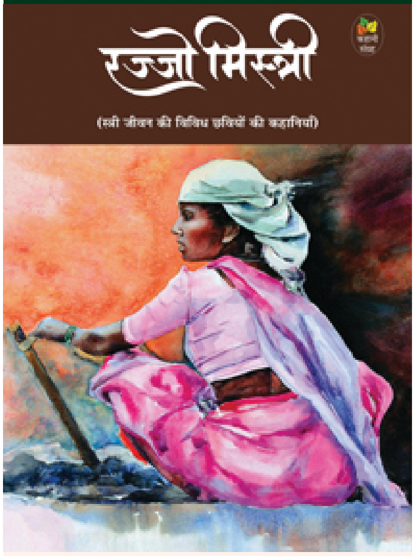

(कहानी संग्रह)

रज्जो मिस्त्री

समीक्षक : डॉ. जसविन्दर कौर बिन्द्रा

लेखक : प्रज्ञा

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

डॉ. जसविन्दर कौर बिन्द्रा
आर-142, प्रथम तल, ग्रेटर कैलाश-1
नई दिल्ली-48
मोबाइल– 9868182835

साहित्य की अनेक विधाओं में रचना करने वाली लेखिका प्रज्ञा की नवीन रचना उसका कहानी संग्रह ''रज्जो मिस्त्री'' है। जिसमें शीर्षक के साथ ही अंकित है, स्त्री जीवन की विविध छवियों की कहानियाँ। वैसे तो 'रज्जो मिस्त्री' शीर्षक से अंदाज़ा होता है कि कहानी के केन्द्र में स्त्री है, परन्तु इसके अलावा अन्य सभी कहानियों के केन्द्र में भी स्त्री है, इसका उल्लेख पुस्तक कवर से हो जाता है। जब शीर्षक से ही पुस्तक के भीतरी पन्नों का अनुमान होने लगे तो यह बात कई बार पक्ष में जाती है और कई बार विपक्ष में भी। पाठक सोचता है, सभी कहानियों के कथानक क्या एक से ही होंगे ? एक ही बात कहाँ बार-बार पढ़ी जाएगी। दूसरी ओर उल्लेखित जानकारी से इस बात की उत्सुकता भी हो सकती है कि 'अच्छा, सभी कहानियाँ स्त्री जीवन से ही संबंधित.... फिर तो देखना-पढ़ना चाहिए कि लेखिका क्या कहना चाह रही है। इस पुस्तक की लेखिका हिन्दी जगत् की जानी-पहचानी और अनेक सम्मानों से सम्मानित है, तो अवश्य कुछ नया ही लाई होगी, अपने नए संग्रह में।' ऐसी संभावना भी रहेगी, जिसमें उत्सुकता के साथ कौतुहल भी रहेगा। मेरे लिए इस संग्रह का अध्ययन इसी कौतुहल और जिज्ञासा की प्रतिक्रिया से जुड़ा हुआ रहा।

सारी सृष्टि की धुरी कही जाने वाली स्त्री का जीवन इतना विचित्रताओं से भरपूर, उतार-चढ़ावों से भरा, निर्भरता और आत्मनिर्भरता के बीच झूलने वाला रहा है कि कहीं वह स्वयं कमा कर भी मनचाहा खर्च करने में असमर्थ है और कहीं बिना-बेबात शोकेस में सजी गुड़िया सी, लाखों के वारे-न्यारे करने में भी सक्षम है। ग्लैमर, फिल्मों, वेबसीरीज़ में प्रदर्शित होती स्त्रियाँ हमारे आसपास के जीवन से कहीं दूर की प्रतीत होती हैं। सिगरेट, शराब और अन्य नशों में ढली, अपने जिस्म को प्रमुख मोहरा बना कर, अपनी सुन्दरता को उपलब्धि मानने वाली स्त्रियाँ बेशक हमारे ही समाज का हिस्सा हैं, परन्तु उनका प्रतिशत दो-तीन से अधिक का नहीं हो सकता। हम उन्हें मनोरंजन के नाम पर भले स्वीकार करें परन्तु उन्हें अपना रोल मॉडल बनाने में अक्सर झिझकते हैं। घर-गृहस्थी में पगी, बच्चों-पति के संग भागते हुए भी वह उनके साथ-साथ अपनी दुनिया में भी रंग भरती जाती है। वास्तव में घर, समाज, संस्कृति की नींव में ऐसी स्त्रियाँ ही खड़ी नज़र आती हैं। भले आज के 'निजी जीवन' 'मेरा पसर्नल मामला' अपनाने वाले एक स्त्री वर्ग की आमद भी सिर उठाने लगी है, लेकिन फिर भी सारे स्त्री जीवन को इस अवधारणा को अपनाने में सालों-साल लग जाएँगे। उसके बाद स्त्री का जीवन कैसा होगा, उसके अपने जीवन में घर-गृहस्थी, बच्चों व अपनों की क्या अहमियत रहेगी, इसके बारे में अभी से माथा-पच्ची करने की आवश्यकता अभी दूर-दूर तक कम ही है, फिर क्यों न उन स्त्रियों से मिला जाए, जो केवल अपने लिए नहीं जीती। संघर्षों से पटा उनका जीवन भले उलझनों से भरा ही है परन्तु कहीं न कहीं सार्थक भी है। इस बात की तसल्ली तो है, सिर्फ खा-पीकर ही इस जीवन को नहीं गँवाया, बल्कि अपने हाथ-पाँव का पूरा उपयोग कर, दिमाग़-मन से निर्णय लेते, स्थितियों अनुसार भावनाओं-विकारों में डूबते-उतरते, किसी के दुख-सुख में काम आते हुए एक ही ज़िंदगी में जीवन के सारे राग-रंग देख-भोग कर, अपने अंतिम पड़ाव पर पहुँचने पर कई बार अत्यन्त दुखों से मुक्ति का एहसास होगा तो कई बार अपनी हिस्से की सार्थकता का कि जिस कार्य के लिए परमात्मा ने उन्हें चुना, अपने साहस और आत्मबल से उसे उम्मीद-नाउम्मीदी से बदल कर, इस जहाँ से जाते हुए कुछ पा लेने, कुछ दे देने का सुखमय एहसास क्या कम है....?

प्रज्ञा के इस संग्रह में शामिल स्त्री छवियाँ ऐसी ही है, जो हमें अपने आसपास के जीवन में रोज़ाना देखने को मिलती। यह बात अलग है कि कभी हम उनकी ओर कम ध्यान देते, कभी जानबूझ कर टाल कर निकल जाते हैं लेकिन हम उन सभी को कहीं न कहीं जानते-पहचानते अवश्य हैं। इन सभी कहानियाँ की स्त्रियाँ मध्यम शहरी और क़स्बाई जीवन से अधिक संबंधित है। स्कूल-कालेज में पढ़ती हुई, नौकरी या कोई अन्य काम करती हुई, पारिवारिक स्तर पर बंधी,

नियमों-बंधनों में घुटी हर प्रकार की स्त्रियों व लड़कियों से हमारा परिचित इन कहानियों के माध्यम से होता है।

'मौसमों की करवट' में हिन्दी काव्य की व्याख्या पंजाबी भाषा द्वारा बताने वाली संजू का सारी क्लास ने मज़ाक अवश्य बनाया परन्तु अपनी मासूमियत और मुस्कराहट के कारण वह जल्दी ही सारी क्लास की चहेती बन गई। उसका मज़ाक बनाने वाली रश्मि, सीमा, रेनू और आशा उसकी सखियाँ बन गईं, इतनी अभिन्न कि, बारहवीं के बाद ही उसकी शादी की बात सुन कर न केवल भड़क उठीं बल्कि उस पर अपना हक समझते हुए उसके पिता को यह समझाने घर पहुँच गई कि वह इतनी जल्दी उसकी शादी न करें। परन्तु एक मध्यम वर्ग के परिवार के लिए बड़ी बेटी का रिश्ता जल्दी मिलना और उसे निपटाना भारतीय समाज के लिए आश्चर्य की बात नहीं। 'शादी के बाद अपनी पढ़ाई पूरी कर लेना....' यह झाँसा अक्सर ही परिवारवालों और ससुरालवालों की ओर से लड़की को दिया जाता है परन्तु विवाह के बाद पारिवारिक ज़िम्मेवारियों का बोझ इतना बढ़ जाता है कि विवाह के बाद बहुत कम लड़कियाँ या स्त्रियाँ अपनी पढ़ाई को पूरा कर पाती हैं। अक्सर यह जुमला दिल बहलाने का झुनझुना ही साबित होता है। छोटी उम्र में ही घर गृहस्थी और बच्चों में उलझती गई संजू की फार्मेसी की पढ़ाई धरी की धरी रह गई। जब आमदनी का सही प्रबंध न होने के कारण, नशे और अवसाद से घिरे उसके पति ने आत्महत्या कर ली तो ससुरालवालों ने जायदाद से कोई हिस्सा न देने के कारण उसी पर ही पति की मौत का दोष मढ़ दिया। यह तो रश्मि, सीमा और उसके भाई बंटी ने आकर संजू और उसके पिता को संबल दिया। संजू पर कोई आरोप साबित न हो पाया, बरी हो कर आने पर जब ससुर ने उसे उसके बच्चों को देने से इंकार किया तो संजू शेरनी सी बिफर उठी। पिता और अपने अभिन्न मित्रों की सहायता से संजू ने हिम्मत दिखाई और अब वह कहीं छोटी सी नौकरी करके अपना और बच्चों का पालन कर रही थी। हमारे यहाँ अक्सर बेटी की शादी की ज़िम्मेवारी से पीछा छुड़ाने के लिए माँ-बाप लड़कियों की शादी बहुत छोटी उम्र में कर देते हैं। लेकिन अपने बच्चों के हक पर कोई भी औरत दूसरों को आसानी से डाका नहीं मारने देती, तब वह भोली-मासूम के दायरे से निकल सामने वाले से सीधे भिड़ जाती है, भले वह परिवार हो या समाज।

उलझी यादों के रेशम की माया इसलिए आहत और स्वयं को कसूरवार मानती है कि माँ के चले जाने के बाद वह और उसके दूसरे भाई-बहन अपनी ही दुनिया में ऐसे खो गए कि अकेले रह गए, पिता की देखभाल सही से नहीं कर पाएँ। जिस मकान ने उन्हें अपने नए घर का एहसास और सुरक्षा प्रदान की थी, अब वह धीरे-धीरे सँभाल न होने के कारण खंडहर में तब्दील होने लगा था। जबकि उसकी हर दरो-दीवार के साथ पूरे घर परिवार की कोई न कोई याद जुड़ी हुई थी। एक दिन पिता चुपचाप से उस भरे-पूरे घर को यूँ ही खुला छोड़ कर कहीं चले गए और फिर कभी न लौटे। माया, बहन और भाई वरुण ने उन्हें कितने ही स्थानों, हस्पतालों व थानों में ढूँढ़ा मगर बरसों बाद गुमशुदा इश्तहार के आधार पर एक सूचना मिली कि वह बुज़ुर्ग फटेहाल और बीमार वृद्धाश्रम में पहुँचे। वह कभी बोले ही नहीं, जिस कारण परिवारवालों को ख़बर नहीं की जा सकी। अब उन्हें गुज़रे भी एक वर्ष हो गया था। दोनों भाई-बहन मायूस और निराश से लौट आए, बस इस संतोष से कि उन्हें पिता की नियति मालूम हो गई। अपना घरबार सँभालने वाली, उम्रदराज हो जाने पर भी कोई स्त्री अपने मायके के जुड़ाव और लगाव को भुला नहीं पाती। वह उस खंडहर होते घर को भी सहेजने की कोशिश करती है, और दूसरी ओर पति को समझ में नहीं आता कि माया क्यों बिना माँ-बाप के भी, इस टूटे हुए घर में किसे ढूँढ़ने के लिए पहुँच जाती है और कई घंटे अकेले ही यहाँ बिता जाती है। ऐसी कोमल भावनाएँ और स्नेह के धागों में बंधे रिश्तों को स्त्रियों के अलावा और कोई आसानी से नहीं जान सकता।

कुछ कहानियाँ कालेज में पढ़ने वाली अल्हड़ उम्र की लड़कियों से संबंधित हैं, जिन्हें अनेक बार कालेज की शिक्षा पूर्ण करने में अनेक पापड़ बेलने पड़ते हैं, फिर भी ज़रूरी नहीं कि शिक्षा पूरी हो सके। इसमें 'परवाज़' और 'पाप, तर्क और प्रायश्चित' का नाम लिया जा सकता है। इन दोनों कहानियों में परिवार की भूमिका संदिग्ध रहने पर कालेज के प्राध्यापकों द्वारा विद्यार्थियों के जीवन को संवारने में समुचित योगदान का उल्लेख किया गया है। जहाँ 'परवाज़' के पिता सौतले और माँ द्वारा उनकी सख्ती की बात कह कर लड़की को घर से कॉलेज भेजने तक की सहमति तो मिली परन्तु अन्य किसी कैंप या घूमने की अनुमति बहुत मुश्किल से मिल पाई। जबकि सच्चाई सामने आने पर पता लगा कि पिता भले सौतले हैं, मगर वह ख़ुशबु को अपनी बेटी समान प्यार करते और उसकी सफलता देखने चाहते हैं जबकि माँ नौकरी करने के कारण उन पर रौब गाँठते हुए आसानी से उन्हें आगे कर, ख़ुद को बचा लेती है। दूसरी ओर 'पाप, तर्क और प्रायश्चित' की हँसती-चुलबुलाती मीनू, जो एक ही वर्ष में न केवल कालेज की सभी गतिविधियों की जान बन गई बल्कि पढ़ाई में भी अव्वल रही, वही मीनू द्वितीय वर्ष में आते-आते ही मुरझाने लगी, कालेज से अक्सर गैरहाज़िर रहने लगी। घर पर किसी बाबा के नाम का दबाव और अनेक व्रत-नियमों में उलझी मीनू इमरान से प्यार कर बैठी, जो उसके जी का जंजाल बन गया और बाप ने पिटाई कर, उसका कॉलेज छुड़वा दिया। बाद में मालूम हुआ कि उसे ही बाप के बिजनेस डूबने का कारण माना गया और परिवार को अनिष्ट की राह से बचाने के लिए बाप ने उसे धर्म को सौंप दिया, जहाँ उसे दीक्षा दे दी गई। इससे पापा और परिवारवालों को जीवन मिल गया, क्या हुआ एक खिलखिलाती-हँसती लड़की की धर्म के समर्पण के नाम पर बलि दे भी दी गई तो क्या हुआ। आख़िर इन बेटियों का कुछ तो फायदा हो, यूँ भी जन्मते ही नुकसान करवाना शुरू करती हैं और अंत तक साँस नहीं आने देती.... अब कौन विचारे, पाप क्या है, पुण्य क्या है, प्रायश्चित क्यों करना और किस लिए करना है ? आपको लगता है, इन सब बातों,

नियमों, बंधनों, आहुति को किसी तर्क से समझा या समझाया जा सकता है। भारत में बाबाओं की कोई कमी नहीं और धर्म की आस्था के नाम पर जो किया जाएँ, वो भी कम लगता है।

स्त्रियाँ शिक्षित होकर नौकरी कर, अपने पैरों पर अवश्य खड़ी हो गई हैं, अपनी मर्ज़ी से अपना जीवनसाथी भी चुनने लगी हैं, परन्तु ऐसी स्त्रियों का प्रतिशत बहुत कम है। अधिकतर युवतियाँ शादी-विवाह के बंधन के लिए परिवारवालों की रज़ामंदी ही चाहती है। समाज की भी यही रीति है। ऐसे हालात के कारण स्कूल में नौकरी करती रावी, अपने कुलीग जतिन के साथ प्यार की पीगें बढ़ाने के बावजूद, दूसरी जाति का होने परन्तु प्रगतिशील जतिन के साथ कदम मिला कर चलने का साहस न कर पाई। रावी अपने संस्कारों में जकड़ी अपनी दादी, नानी और माँ के सरीखे फ्रेम से बाहर ख़ुद को खड़ा कर, देख नहीं पाई। घरों में काम करने वाली युवतियाँ भले गृहिणियाँ का साथ दे, उनके घर व बच्चों की दिल से, प्यार से सँभाल करें, बदले में एकाध सूट या कुछ पैसे दे कर उनके परिश्रम की इति मान ली जाती है। धर्राख अपनी धरमसाला की अमृता का इतने बरस चाकरी करने के बाद निरंजन व रेणुका ने यह सिला दिया कि उसे निकालने के लिए उसे मुसलमान होने का इल्ज़ाम दे, बेइज़्ज़त कर, घर से निकाल दिया। गृह-दक्ष अमृता का धर्म दूसरा होने से क्या उसकी सारी विशेषताएँ एकदम मिट्टी में मिल गई। उसके प्यार, त्याग और अपनेपन का मोल चुकाया नहीं जा सकता, जो बरस उसने निरंजन-रेणुका की गृहस्थी को सँभालने में दिएँ या गवाँ दिए। बतकुच्चन की बहनें आपको हर घर में मिलेंगी, कभी आपस में मिलकर किसी संबंधी की निंदा-चुगली और बुराई करने लगेंगी, कभी किसी से नाराज़ हो, तुरन्त हमेशा के लिए नाता तोड़ बैठने का ताव दिखाने लगेंगी और तभी किसी बात पर भावुक हो, मोटे-मोटे आँसू भी गिराने और बचपन की बीती खट्टी-मीठी यादों में घुलने लगेंगी। हम-आप भी ऐसा ही करते हैं, बस अपनी तस्वीर को किसी दूसरे का नाम देकर कहानी में पढ़ लें। बहुत मज़ा भी आएगा और भावुक हुए बिना भी नहीं रहेगी। तस्वीर का सच कहानी वाली रानी दीदी भी बहुत जानी-पहचानी सी लगेंगी। माँ का साया उठ जाने के कारण पढ़ाई छुड़वा, पहले भाईयों और पिता की तीमारदारी, फिर बड़ी उम्र के उज्जड़ से, मगर स्थाई सरकारी नौकरी वाले पति के बोझ से दबी, उसकी बदतमीज़ियों को हमेशा हँस कर सहन करने वाली रानी दीदी को बीमारी में भी पति ने साथ देने के बजाय दुत्कारा और बहानेबाज़ कहा। सुंदर, सुघड़, रसोई, कढ़ाई और कलात्मक चीज़ें बनाने में दक्ष रही रानी को आख़िर हँस-बोल कर रहने पर भी कुछ हासिल नहीं हुआ। बस सारी उम्र घर-बिरादरी के काम में जुटी ख़ुद के दर्द को भुलने का प्रयास करती रही।

संग्रह की दो प्रमुख कहानियाँ हैं शीर्षक की 'रज्जो मिस्त्री' और 'इमेज'। इन दोनों ही कहानियों की स्त्रियाँ रज्जो और रूपल दी निम्न और मध्य वर्ग की होने पर भी मिसाल कायम करती हैं। इन कहानियों में स्त्री जीवन की जीवटता और महत्त्वकांक्षाओं का पीछा करने वाली दौड़ दोनों ही दिखाई देती है। ये कहानियाँ परत दर परत खुलते हुए स्त्री जीवन के उन सपनों से परिचित करवाती हैं, जिनमें अपने क़द मुताबिक ही सही, परन्तु कुछ हासिल करने की चाहत ज्वारभाटे सी कभी दबी और कभी मौका मिलने पर लहरों को चीर कर आगे बढ़ने का हौसला भी रखती है। रज्जो ने अपने बाप से मिस्त्री का काम सीखा और उसे हुनरमंदी तक पहुँचाया। भाई ने हमेशा उसके इस काम की उपेक्षा की, पति ने कुछ साथ दिया परन्तु जब पति का एक्सीडेंट हो जाने पर वह दो महीने के लिए बिस्तर से जा लगा और कोरोना काल में सभी के धंधे ठंडे पड़ गए, तब उसी रज्जो को ठेकेदार काम के लिए बुला ले गया, जिसे लगता था कि कोई स्त्री कभी मिस्त्री का काम नहीं कर सकती, वह केवल मिस्त्री को सामान पहुँचाने वाली मज़दूरिन ही हो सकती है। रज्जो की बरसों की चाह कोरोना काल में पूरी हो गई। दूसरी ओर कालोनी में ब्यूटी पार्लर चलाने वाली रूपल दी ने अपने आप को स्थापित करने और अपनी इमेज बनाने के लिए, 'शक्ति' नामक एनजीओ के नाम पर सरकारी सहायता प्राप्त की और उच्च वर्ग में अपना रसूख कायम करने के लिए उस वर्ग की महिलाओं को अपनी संस्था से जोड़ने और चंदा देने के नाम पर पार्लर के लिए पैसा एकत्रित करने का शार्टकट अपनाया। मगर अपने बूते से ऊँची उड़ान भरने के चक्कर में वह अपना पार्लर भी गवाने की कगार पर आ पहुँची। जिस दिन समझ में आ गया कि राजनीति का खेल खेलना उस अकेली औरत के बस की बात नहीं, उसके बाद वह फिर से अपने पुराने स्त्री ग्राहकों को फ़ोन कर-करके वापस आने के लिए मनुहार करने लगी। रूपल दी की हिम्मत को दाद देनी चाहिए। भले वह सफल नहीं हो पाई लेकिन उनका जुझारूपन और सपनों के आसमान को छूने की ख़्वाहिश रखने का अधिकार कोई उससे छीन नहीं पाया।

सभी कहानियाँ अत्यन्त पठनीय और सुंदर वाक्य विन्यास से सजी हैं। जिनमें साहित्यिक पक्ष भी उतना ही वज़नदार है। प्रत्येक कहानी में कोई न कोई सुंदर वाक्य, आपको लेखिका की कलात्मक शैली का परिचय दे देता है। जैसे- "छोटी! रिश्तों का बीज तो ऐसा है कि ज़मीन में पड़ा तो अंकुर भी फूटेगा, छतनार पेड़ भी उठ खड़ा होगा। पतझड़ भी आएगा और बसंत भी..... जैसे जीवन चलता है वैसे ही रिश्ते। दोनों कभी ख़त्म कहाँ होते हैं री!" (बतकुच्चन)

इतनी स्त्री छवियों की विविध कहानियों के रंग देखने के बाद भी लगता है, अभी भी बहुत कुछ ऐसा बाकी रह गया होगा, जो स्त्री जीवन की गंभीरता, समझदारी और भीतरी परतों में छिपा रह गया होगा। जो साहित्यिक रचनाओं में इतना कुछ और उम्मीद से बढ़ कर प्रस्तुत होने के बावजूद भी बाकी रह जाता है.... यह 'कुछ' अवश्य बाकी रह जाना चाहिए, जो किसी लेखिका, किसी साहित्यिक रचना और स्त्री को बार-बार जानने, पढ़ने की उत्सुकता भी बनाए रखें और संभावनाएँ भी जगाए रखें। आख़िर संभावनाओं के द्वार सदा खुले रहने चाहिए....है न!

000

पुस्तक समीक्षा

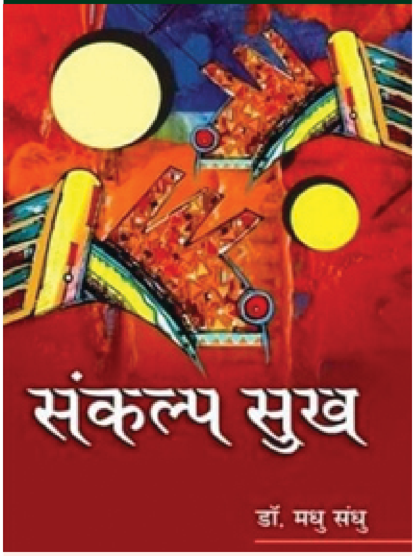

(कविता संग्रह)
संकल्प सुख
समीक्षक : डॉ. दीप्ति
लेखक : डॉ. मधु संधु
प्रकाशक : अयन प्रकाशन, नई दिल्ली

प्राचीन काल से ही कविता समाज के हर वर्ग की लोकप्रिय विधा रही है। कविता समाज के प्रतिबिंब के दायित्व के साथ-साथ जनसामान्य के विचारों, अवधारणाओं, मान्यताओं, सभ्यता एवं संस्कृति को भी वाणी देती रही है। आधुनिक काल में भी कविता इन दायित्वों का बखूबी निर्वाह कर रही है। आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रबुद्ध साहित्यकार डॉ. मधु संधु के विश्वविद्यालय और महाविद्यालयों में ३६ वर्ष के अध्यापन काल के दौरान रचनात्मक रचनाकार के रूप में दो कहानी संग्रह, दो गद्य संकलन, दो काव्य संग्रह, ७ आलोचनात्मक पुस्तकों के साथ-साथ चार कहानी कोष प्रकाशित हुए हैं। उनका नया कविता-संग्रह 'संकल्प सुख' तीन खंडों में विभाजित है। इस काव्य साहित्य का परिक्षेत्र नारी विमर्श, प्रकृति से संबंधित महाप्रलय, बाढ़ इत्यादि आपदाओं, समाज में व्याप्त नोटबंदी, वोट बैंक, आरक्षण, बलात्कार, तीन तलाक की त्रासदियों, कोरोना महामारी, देश के सजग प्रहरी विमर्श, मीडिया विमर्श, किन्नर विमर्श इत्यादि यथार्थ के विभिन्न आयामों को समेटता हुआ लेखिका के बहुआयामी दृष्टिकोण को परिलक्षित करता है।

प्रस्तुत कविता-संग्रह 'संकल्प सुख' में २१ वीं सदी के विश्वग्राम एवं वैश्विकता के तथाकथित परिदृश्य में आधुनिक सुशिक्षित, आत्मनिर्भर, स्वावलंबी नारी से संबंधित विडंबनाओं, विद्रूपताओं एवं समस्याओं को बखूबी दर्शा रहा है। 'मैं स्त्री हूँ' कविता सनातन काल से सर्वेसर्वा पुरुष प्रधान समाज में निर्दोष नारी को जबरन कभी अहिल्या, मीरा, द्रौपदी, सीता के रूप में परिवार, समाज द्वारा अपमानित व तिरस्कार के विषपान की विवशता को उद्‌घाटित करती है। पुरुष समाज ने स्त्री के नियंत्रक बनते हुए उसके लिए धैर्य, संयम, त्याग व बलिदान के तथाकथित आदर्श मापदंड बनाए और इनकी कसौटी पर स्त्रियों को कसने की दुर्व्यवस्था को सुनिश्चित किया।

"अहल्या बनाकर/ बलात्कारी को नहीं/बलत्कृत को सज़ा सुनाते रहे हैं।

द्रौपदी बनाकर /पाँच में बाँट दिया/ पाँच-पाँच पति/और/धर्मराज की उपस्थिति में/चीरहरण करवाया।"

'पितृ सत्ता के षड्यंत्र' कविता स्त्रियों को पुरुषों के प्रत्येक रूप की अमरता, स्वास्थ्य हेतु-भाई के लिए भैया दूज, पति के लिए सोमवार के उपवास एवं करवा चौथ का व्रत, पुत्र प्राप्ति के लिए एकादशी व्रत एवं अहोई अष्टमी - सभी व्रत,त्यौहार,उत्सव, पर्व- पुरुषों को अपने से श्रेष्ठतम मानकर पूजने के षड्यंत्रों को बेनक़ाब करती है। कवियत्री यह प्रश्न उठाती है कि भगवान् के द्वारा बनाए गए सृष्टि के दो आधारस्तंभों में से एक स्त्री के विभिन्न रूपों की अमरता, स्वास्थ्य हेतु -बहन दूज का त्योहार, मातृ पूजन का उत्सव,पत्नीव्रत का पर्व, पुत्रीकांक्षा का उपवास का कोई विधान क्यों नहीं है?

'पितृ सत्ता के षड्यंत्र तो/ जन्मघुट्टी में पिला दिए जाते हैं मुझे/

क्या मेरे लिए कोई/ व्रत त्योहार,उत्सव-पर्व नहीं /कोई बहन दूज,/कोई एकादशी, अष्टमी, दुआ /की ज़रूरत नहीं।

'मेरा हर फैसला कानून है,' 'औरतें' और 'तुम और मैं' कविताएँ आधुनिक समाज में लिंग असमानता के यथार्थ के साथ-साथ राजनीति, संविधान, समाज, धर्म एवं परिवारिक तंत्रों के अधिष्ठाता पुरुष द्वारा स्वयं को सर्वेसर्वा समझ कर नारी को अपराध बोध से ग्रस्त कर मानसिक तनाव देने को अपना मौलिक अधिकार समझने के यथार्थ से परिचित करवाती हैं। "जब तुम लिखते हो/जब तुम पढ़ते हो /एक वैयक्तिक सेविकानुमा पत्नी /तुम्हें अनुभूत कराती है /तुम

डॉ. दीप्ति
सहायक प्रोफ़ेसर
हिन्दी विभाग
हिंदू कॉलेज,अमृतसर (पंजाब)
मोबाइल- 9501077702
ईमेल- drdeeptisahni@gmail.com

ख़ास हो, विशेष हो, अमूल्य हो /तुम्हारी हर ज़रूरत का ख़याल रखती है

जब वह कहीं से जाकर आती है/ तो उसे एहसास दिलाया जाता है कि/ तुम्हारे द्वारा दी छूट के मज़े लूटकर/रिलैक्स हो कर आई है। और फिर वह/ जुट जाती है/ घर की वर्कशॉप में /तुम्हारे और पूरे परिवार की सुश्रुषा में।"

'बलात्कारी' और 'नराधम' कविताएँ दुराचारी, आततायी पुरुषों के जंगल राज में मासूम बच्चियों के बलात्कार के घिनौने कुकृत्य को परत- दर- परत खोलती हैं।

"जब मासूम नवांकुरित /बच्चियों को/ कुत्तों सा नोचते हो /अपने कुकृत्यों से /आतंक/ दहशत/ नफ़रत फैलाते हो,/ दुराचारी /तुम्हारे होते /कोई असुर आततायी/इक्कीस कहाँ?"

कवयित्री ने प्रस्तुत कविता-संग्रह में जहाँ नारी के अबला रूप को दिखाया, वहीं 'लक्ष्मीबाई' कविता में नारी के छिन्नमस्ता व शक्ति स्वरूपा से भी अवगत करवाया और 'मुझे पिता बनना है' कविता में जागरूक नारी भेड़-बकरी नहीं, अपितु सिंह बन कर मानसिक उलझनों, द्वंद्वों से ग्रस्त जीवन को नकारती हुई पिता बन कर स्पष्टवादी, साहसी और निडरता होने के सुख भोगने का स्वर सशक्त स्वर में उठाती है।

"बैकग्राउंड म्यूज़िक की तरह/ मन की परतों में निरंतर बजता है/ एक उद्घोष/ कि मुझे पिता बनना है/ स्पष्टवादी, साहसी और निर्भीक/ कर्ता होने का सुख भोगना है/ अपना साम्राज्य फैलाना है।"

'आंटोप्रेन्योर' कविता में स्त्री आंटोप्रेन्योर बनकर जीवन संग्राम में अपने अस्तित्व का लोहा मनवा कर सुख सुविधा पूर्ण जीवन जीने का स्वप्न साकार करने की दिशा में निरंतर अग्रसर होती है। 'आंटोप्रेन्योर' कविता में नारी अपनी और अपने परिवार के लिए एक नए मूल्यवता की सृष्टि कर रही है।

"इस रविवार की दोपहर/ त्योहार होता है घर में/ आज होगी महीने की दबी इच्छाओं की पूर्ति/ आज मिलेंगी गेम्स, गारमेंट्स, मज़ेदार खाना/इस रविवार की शाम/ किसी फाइव-सेवेन थ्री डी थियेटर/ वाटर किंगडम/दर्शनीय स्थल पर/ अनूठे,सतरंगी विद्युतीय फन शो/ दिखाती गुदगुदाती है/ रविवार की रात/बड़ी सुखद नींद आती है/मन तृप्त, मस्तिष्क शांत/ सपनों की पूर्ति का एहसास/दिलाती है।"

'लोकतंत्र का महापर्व' और 'नोटबंदी' कविताएँ राजनीतिज्ञों के यथार्थ स्वरूप से परिचित करवाती है। जनता के हितों के लिए कार्य करने की अपेक्षा सत्ताधारी और विपक्षी एक दूसरे पर सदैव आरोप लगाते हैं किंतु अपने गिरेबान में झाँककर नहीं देखते है। उन्हें सदैव दूसरा पक्ष देशद्रोही ही नज़र आता है, जबकि सत्य तो यह है कि सत्ता के लोभियों ने लोकतंत्र को व्यवसाय बना दिया है। राजनेता स्वयं तो ऐश्वर्यपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं किंतु आम आदमी को सुख-सुविधाएँ प्रदान करने हेतु कुछ न करके उनको नोटबंदी जैसी समस्या उपहारस्वरूप प्रदान करते हैं और बेचारा आम आदमी मुश्किलों व समस्याओं के जंजाल में अत्यधिक उलझ कर रह जाता है।

"मेरे शहर में प्रशासन/नोटबंदी के इस आलम में/ प्रजा को अनुशासित कर रहा है/ यहाँ वहाँ से वाहन टो करके/ नकद नोटों में/राजस्व बटोर रहा है/ क्योंकि चुनाव आने पर नेताजी बनवा ही देंगे/ कार- बाइक पार्किंग।"

'बीच का आदमी' कविता में कवयित्री मीडियाकर की त्रासदी को उजागर करती है जो जी तोड़ मेहनत के बाद भी अपनी इच्छाओं, अभिलाषाओं की पूर्ति करने में असमर्थ रहता है और अंत में अर्थ, यश, मोक्ष से खाली हाथ इच्छाओं को छोटा करके मन को दिलासा देता है।

"ज़िंदगी की सबसे बड़ी त्रासदी है/ मीडियाकर होना/ बीच का आदमी न इधर का होता है/ न उधर का/ नंबर टू होना/ जीवन में अनवरत संघर्ष को जन्म देता है/ नाखून से सिर तक का संघर्ष/जी तोड़ मेहनत के बाद भी/ आदमी न तीन में न तेरह में।"

'मीडिया गाथा' कविता कटु सत्य को रेखांकित करती है कि वर्तमान समय के भौतिकवादी दौर में मीडिया अपने दायित्व को भूलकर पाठकों के समक्ष गाथाओं को प्रस्तुत करने में संलग्न है और जब त्रासदी या अनहोनी होने पर बड़ी बेबाकी से अमानवीयता का प्रदर्शन करती है।

"जुड़वाँ भाइयों की तरह/ मेरी एलसीडी के सभी चैनल/ जी, एबीपी, इंडिया टीवी, टाइम न्यूज़ वगैरह/ एक ही भाषा में बोलते हैं/ एक जैसे समाचारी रहस्य खोलते हैं/.. हर चैनल पर एक ही तस्वीर/हर घंटे बाद ख़बरों की वही कैसेट/ तब तक, जब तक/कोई बड़ी त्रासदी ब्रेकिंग न्यूज़ बन/ नए ख़बरी उत्सव का उद्घाटन नहीं करती।"

'प्रौद्योगिकी और मैं' कविता २१वीं सदी के दौर में प्रौद्योगिकी के महत्त्व से भी अवगत करवाती है। आज हर वर्ग व्हाट्सएप, ईमेल, फेसबुक, ट्विटर, गूगल, यूट्यूब, ऑनलाइन क्रय-विक्रय, ख़बरें और धारावाहिक इन सभी का आदी होकर मोबाइल की दुनिया में खोया हुआ है। आज मोबाइल मानव की ज़िंदगी का एक अहम अंग बन गया है।

"व्हाट्स एप पर संदेशों की रंगीनी/ भरा-भरा मेल बॉक्स/ फेसबुक पर ढेरों मित्र/इंस्टाग्राम के आकर्षक चित्र/ ट्विटर की चहचहाहट/ गूगल खोज का खुल जा सिमसिम/ डाउनलोड/यूट्यूब, ऐप्स/ ऑनलाइन क्रय विक्रय का/ मल्टीप्लेक्स सा बाज़ार/ सौ तरह की छूटें रियायतें और/डेबिट -क्रेडिट कार्ड/.. सभी चहल कदमी करते हैं/ मेरे आदेश पर/ मैं हूँ सूत्रधार।"

'वह है किन्नर' कविता आधुनिक समय के महत्त्वपूर्ण किन्नर विमर्श का स्वर उठाती हुई समाज द्वारा घृणित, तिरस्कृत, हेय,अस्वीकृत एवं निर्दोष किन्नरों की दुर्दशा का बखान करती है, जो मूल अधिकारों से वंचित व पहचान, सम्मान, रोज़गार, शिक्षा से भी उपेक्षित हैं। कवयित्री इनको अपेक्षित यथोचित सम्मान देने हेतु समाज को जागरूक करती है।

"वह है किन्नर/.. अस्वीकृत है सर्वत्र/ अपमान, अवहेलना से भरी है झोली उसकी/ संघर्ष सामान्य जीवन के लिए है/और /उपलब्धियों का कोषागार सूना है।"

इसके अतिरिक्त 'सैनिक' कविता देश की सीमाओं के प्रहरी सैनिकों के महत्त्व का

गुणगान करती कटु यथार्थ को चिह्नित करती है कि सैनिक जो इस देश की सुरक्षा के कर्तव्य पूर्ति के लिए अपने जीवन तक को कुर्बान कर देते हैं किंतु दूसरी और देश को चलाने वाले नेता कर्तव्यों को विस्मृत कर देश-विदेश घूमने में सुख-सुविधाओं को भोगने में व्यस्त रहते हैं।

"मैं हूँ प्रहरी सीमाओं का, सुरक्षाकर्मी, वज्रगात/ तुम हो जननेता, राष्ट्रनेता, अभिजात/ मुझे तो मरना है इस देश के लिए, सुरक्षा के लिए,/ जन-गण के लिए/तुझे जीना है नेतृत्व के लिए, अभिषेक के लिए/... मैं सैनिक मिले छुट्टी तो घर आना है/ तुम नेता देश-विदेश आना जाना है।"

कवियत्री 'गंगा', 'यमुना', 'बिपाशा', 'धरती दिवस' और 'धरती का दर्द' कविताओं में जन सामान्य को पर्यावरण प्रदूषण के विरुद्ध जागरूक करने का सदप्रयास करती हुई जीवनदात्री गंगा, यमुना और बिपाशा नदियों को गंदगी, प्रौद्योगिक कचरे, गंदे नाले, सोडा, साबुन, चीनी मिल का शीरा, शवों की अस्थियाँ से प्रदूषित करके स्वच्छ पानी को दुर्गंध और दुर्बल करके रुग्ण करने के कुकृत्य का विरोध करती हुई जीवन, मानवता, वनस्पति एवं पर्यावरण संरक्षण का पक्ष लेती हैं। वह 'धरती दिवस' को सिर्फ कागज़ों में दिखाने को नहीं अपितु इसका महत्त्व समझ कर धरती को प्रदूषण मुक्त करने व जल को स्वच्छ रखने और जल शोधन एवं प्रबंधन की विधियों का अनुसरण करने और वातावरण को पेड़ों से हरा-भरा बनाने का भी संदेश देती है।

"इस वसुधा ने दी प्राण वायु/क्यों उसे प्रदूषित करते हो/ चिमनियों, वाहन, एसी से/ मृत्यु वाहक धुआँ भरते हो/मैं ले आया बरगद पीपल/कर रोपण अब उपचार करो/मैं महाशक्ति बन आया हूँ/ अनुगमन करो, अनुसार चलो।"

'नववर्ष का प्रथम उत्सव' और 'नववर्ष' कविताओं में कवियत्री युवाओं को नववर्ष के आगमन पर निर्धनों की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने, स्वस्थ देश का लक्ष्य निर्धारित करके जगह-जगह पर स्वास्थ्य केंद्र, शिक्षा संस्थान सुनिश्चित करने और देश को आरक्षण, वोट बैंक के मकड़जाल से छुड़वा कर प्रगति के रास्ते पर अग्रसर करने के संकल्प का संदेश देती हैं।

"नए साल का कुंभ लगा है/ आओ सभी नहा लें/ बीते कल के काम अधूरे/ निश्चय कर निपटा लें/.. युवा उद्यमिता को बेकारी से/ मुक्त करें यह देश/ स्व रोज़गार, मेक इन इंडिया/ऊँचाइयों का वेश/.. स्वस्थ देश का लक्ष्य लेकर/ नई ऊर्जा भरते-भरते/ हर नुक्कड़, हर गली मोहल्ले/ स्वास्थ्य केंद्र खुलवा दें/.. नए साल का कुंभ लगा है/ आओ सभी नहा लें।"

आज लगभग प्रत्येक जन मोबाइल के सुनहरे पाश में बँध गया है। 'आभासी दुनिया' और 'पतंग की पुकार' कविताएँ आधुनिक दौर के उत्सव और त्योहार- होली, लोहडी, पतंगबाजी, आउटडोर खेल- सभी के मोबाइल की आभासी दुनिया में सिमटने के यथार्थ को चित्रित करती है।

"बन गई पतंग से खेल आज/ फिर भी सुख देती हूँ अपार/..अब बिना डोर के, कागज के /मैं उड़ती हूँ मोबाइल में/न छत, न शुद्ध हवाएँ हैं/ फिर भी उड़ती हूँ आर-पार।"

समकालीन समय में कोरोना महामारी ने निसंदेह समस्त देशों को अपनी चपेट में लेकर अर्थव्यवस्थाओं को ध्वस्त किया, है किंतु 'आमंत्रण' तथा 'अलविदा भागो कोरोना' कविताओं में उसका एक उज्ज्वल पक्ष यह दृष्टिगोचर होता है कि कोरोना महामारी के लॉकडाउन एकांतवास ने भ्रष्ट अफसर, कर्मचारी, पुलिस वालों, घृणित, लंपट और भ्रष्ट नेताओं को मानवता का पाठ पढ़ा कर उनकी सोई हुई अंतरात्मा को जगा कर वास्तविक कर्त्तव्यों का ज्ञान करवा करवाकर सन्मार्ग के पथ पर अग्रसर होने का प्रोत्साहन दिया।

"कल बने थे महामारी/ बनो आज आनंदकारी/ कर दिया तूने वही सब/ कर नहीं पाए जो सम्राट नेता/ लौट जाओ अब कोरोना/ धुल गया सब बाहर भीतर/ धरती जल आकाश स्वच्छतर/ लॉकडाउन एकांतवास ने कर/ दिया ज्योतिर्मयी जीवन/ अलविदा, भागों कोरोना।"

प्रस्तुत पुस्तक 'संकल्प सुख' की कविताएँ परिवर्तित समय के साथ प्रासंगिक विषयों- नारी विमर्श, प्रकृति से संबंधित महाप्रलय, बाढ़ इत्यादि आपदाओं, समाज में व्याप्त नोटबंदी, वोट बैंक, आरक्षण, बलात्कार, तीन तलाक की त्रासदियों, कोरोना महामारी, देश के सजग प्रहरी विमर्श, मीडिया विमर्श, किन्नर विमर्श इत्यादि को समेटे हुए समाज और साहित्य की जीती जागती प्रतिमाएँ हैं। प्रस्तुत पुस्तक में तत्सम शब्दों- षड्यंत्र, प्रौद्योगिकी, पूर्वाग्रह, विकल्प, गुरुत्व इत्यादि तथा अंग्रेजी के प्रचलित शब्दों- कैटरेक्ट, एँटरप्रेन्योर, मीडिया, बैकग्राउंड म्यूजिक, इंटेलेक्चुअल डिस्कशन,जेंडर जस्टिस आदि तथा उर्दू शब्दों- फैसला, कद्दावर, हाशिया इत्यादि का निसंकोच प्रयोग मिलता है। प्रस्तुत कविता-संग्रह में प्रयुक्त जनसाधारण की भाषा शैली से स्वाभाविकता का गुण स्वत: ही समाहित हो जाता है, जिससे इन कविताओं का संप्रेषण कई गुना बढ़ जाता है। इसमें नारी की रूढ़ छवि से इतर छवि मिलती है। उसका संघर्ष, उसकी व्यथा, चुनौतियाँ, प्रतिकूलता एवं लड़ाई एक विभिन्न छवि को जन्म देती है। एक ओर उसका जीवन अपने अस्तित्व को दर्ज कराने का है तो दूसरी और पारंपरिक बिम्ब को तोड़ने का। ये कविताएँ आयातित नारीवाद का समर्थन या अनुकूलन नहीं लिए हैं। ये हमारे देश का, हमारी आज की स्त्री का संघर्ष और विद्रोह चित्रित रेखांकित करती हैं। इन कविताओं का मूल स्वर विद्रोह एवं अनास्था नहीं, चिंतन है। खंडन नहीं, पीड़ा है। इन कविताओं का परिवेश आँखों देखा हाल है। ये कविताएँ सहज भाषा के द्वारा पाठकों का ध्यान अनायास ही आकर्षित करती हैं। ये कविताएँ बदमूल धारणाओं और परंपरित प्रेम से आगे की दृष्टिगोचर होते हैं। प्रभावी प्रस्तुति,सधी हुई भाषा और सुगठित शिल्प से सराबोर प्रस्तुत कविता-संग्रह समकालीन जीवन को प्रतिबिंबित करने के साथ-साथ आत्ममंथन करते हुए दूसरों के लिए एक सार्थक संदेश भी छोड़ता है।

000

पुस्तक समीक्षा

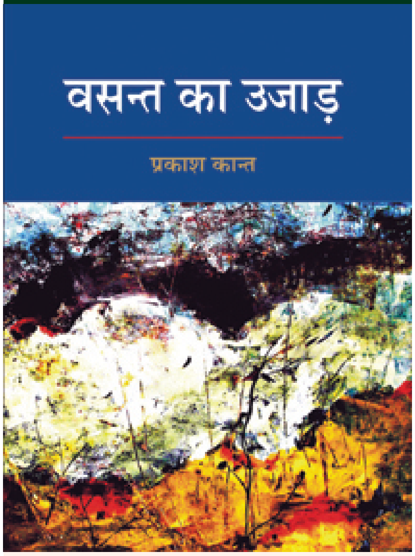

(कहानी संग्रह)

वसंत का उजाड़

समीक्षक : सूर्यकांत नागर

लेखक : प्रकाश कांत

प्रकाशक : अंकिता प्रकाशन गाजियाबाद

सूर्यकांत नागर
81, बैराठी कॉलोनी नं 02
इन्दौर-452014 (मप्र)
मोबाइल- 9893810050
ईमेल- suryakantnagar03@gmail.com

कहानी का परिदृश्य बदल चुका है। पुराना ढाँचा ध्वस्त हो रहा है। भाषा, कथ्य, शिल्प और विचार के स्तर पर नित नए प्रयोग हो रहे हैं। प्रयोग कोई सजावट की वस्तु नहीं है। प्रयोग से प्रगति की राह प्रशस्त होती है। कथाकारों में समकालीन यथार्थ से टकराने का जज़्बा बढ़ा है। आज का लेखक अधिक जागरूक है। रचनाकारों में नवोद्‌भावों को प्रकट करने के प्रयास स्पष्ट नज़र आते हैं। आज की कहानी में समय की आहट का प्रवेश हो रहा है। बदलते यथार्थ के रचनात्मक स्वरूप को सामने लाने के लिए कहानी में रूपात्मक बदलाव आया है। समकालीन यथार्थ पर उनकी गहरी पकड़ है। समकालीनता का अर्थ मात्र वर्तमान होना नहीं है। समकाल में दो छोरों-निकट अतीत और निकट भविष्य की निरंतरता समाहित है। उसका फलक विस्तृत है।

इन कसौटियों पर देखें तो प्रकाश कांत की रचनात्मकता खरी उतरती है। कांत कथा-साहित्य के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। आधी सदी से भी अधिक समय से सतत सृजनशील। उनके चार उपन्यास और तीन कहानी-संग्रह प्रकाशित हैं। हाल ही में उनका ताज़ा कथा-संग्रह 'वसंत का उजाड़' आया है। इसमें उनकी कुल जमा तेरह कहानियाँ हैं। प्रकाश कांत का भरोसा चुपचाप अपना काम करने में है। बिना शोर गुल के। अपना साहित्यिक अभिजात्य दिखाने की व्याकुलता नहीं है। उनकी तरह उनकी कहानियाँ भी शोर नहीं करतीं। प्रतीकों और संकेतों में बात करती हैं। जनपक्षीय कहानियों में गहरी जीवन-दृष्टि है। कांत अंतरदृष्टि के क़लमकार हैं। उन्हें मनुष्य-स्वभाव की अच्छी पहचान है। चेहरों के शिलालेखों को पहचानने में माहिर हैं। दरअसल ये कहानियाँ मनुष्य-मन की अंदरूनी पड़ताल करती व्यापक सरोकारों की कहानियाँ हैं। इनमें घटनाओं से अधिक उनमें मौजूद अंतर्विरोधों की प्रमुखता है। वस्तुत: यह कथाकार के निज के आत्मिक एकांत और बाहरी दुनिया को एक करके देखने का प्रयास है। प्रकाश अपने पात्र प्राय: जीवन के हारे-थकाए गए लोगों से उठाते हैं। इंसानी सरोकारों के प्रति उनकी प्रतिबद्धता असंदिग्ध है, और प्रतिबद्धता इस बात से तय होती है कि जीवन के संघर्ष में लेखक किसके साथ खड़ा है!

संग्रह की प्रथम रचना 'एक नदी-समय के बाद' प्रतीकवादी कहानी है। प्रतीक रूप में शहर और नदी का सटीक प्रयोग हुआ है। समय गुज़रने के बाद भी कुछ घटनाएँ स्मृति-पटल पर अंकित रहती हैं। यादों में बसे नगर और नदी कैसे नायक-नायिका को एकमेक किये रहते हैं, इसका हृदयग्राही चित्रण कथा में है। यह भी कि कैसे एक-दूसरे के अस्तित्व को उनका जीवन प्रवाहमान बनाए रखता है। आपसी समझ, स्नेह, विश्वास और स्मृति की यह एक विचारपरक कहानी है। पुराना शहर और नदी उन्हें जोड़े रहते हैं। इनमें वे एक-दूसरे का अक्स देखते हैं। इन चंद पंक्तियों से प्रतीकात्मक लेखन और सृजनात्मक सामर्थ्य का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है- 'मैं अपने इस शहर को साथ ले जाऊँगी।' 'जहाँ रहूँगी अपने इसी शहर में रहूँगी' या 'मुझे तुम्हारी नदी पसंद है।' अथवा 'नदी अपने साथ अपना छोटा-सा शहर भी ले आई थी।' या 'जब अपने शहर को साथ लेकर वह मेरे शहर में आ गई तो शहर के नए होते जाने ने कहीं मुझे भी भीतर-बाहर से नया कर दिया।' बाद की बदली हुई परिस्थिति में युवा पति की यह सोच- 'इसी तरह से सदा नदी ही रहो, नदी की तरह ही मेरे भीतर बहती रहो, मेरे भीतर के किसी भी उजाड़ और रेगिस्तान के ख़िलाफ़।'

'मरूस्थलों की विरुद्ध' एक उदासीन, विरक्ति-भाव वाले व्यक्ति की कहानी है जिसकी न स्वयं में, न दुनियादारी में दिलचस्पी है। जो जैसा भी है, ठीक है। वे ज़िंदगी अपने ढंग से जी रहे हैं। पत्नी की रोक-टोक का भी उन पर कोई असर नहीं। लेकिन पत्नी की उन शिकायतों में अदृश्य प्रेम लिपटा हुआ है। इसकी अत्यंत रोचक प्रस्तुति लेखक ने दी है। एक दिन उन महाशय

की मरुस्थल-जी ज़िंदगी में मरुउद्यान (नख़लिस्तान) उग आता है और ज़िंदगी फिर हरी-भरी हो जाती है। समावर्तन होता है। वे उमंग-उत्साह से भर आते हैं और तैयार होते हैं इस दुनिया के बीच रहकर उसका सामना करने के लिए।

शायद ही हिन्दी शब्दकोश में 'सिड़ली' शब्द मिला। मेरी समझ से यह मालवी बोली का शब्द है जिसका अर्थ है, सिरफिरी, बद्दिमाग, सनकी स्त्री। सिड़ली ऐसी झगड़ालु, शंकालु, धर्मांध और अड़ियल स्त्री की कहानी है जो अपनी ज़िद, अंधविश्वास और मान्यताओं के कारण दूसरों से सदा लड़ती-झगड़ती रहती है। आस-पड़ोस के लोग उससे इतने आतंकित हैं कि अपने घरों के दरवाजे बंद रखते हैं। इतने भयभीत कि उसके पास से गुज़रते हुए हवा तक में हरक़त नहीं होने देते। औरत अपनी बेटियों को भी नहीं बख़्शती। उन पर अत्याचार करती है और उन्हें भी पूजा-पाठ में उलझाए रखती है। उसकी आँखें तब खुलती हैं जब दोनों बेटियाँ अकाल काल के गाल में समा जाती हैं। तब विक्षिप्त-सी हो वह पड़ोसियों के बंद दरवाज़ों को पीटती है। उसके विवेक के द्वार खुलने से पड़ोसियों के बंद कपाट भी खुल जाते हैं। नई ताज़ी बयार बहने लगती है।

वसंत ऋतु है और एक राग भी। दोनों का मतवालापन नशे में डुबो देता है। वसंत ऋतु-राग है। उसके आगमन की उत्सुकता बनी रहती है। वसंत का नाम ही उत्कंठा है। उसके आते ही आम्र बौराने लगते हैं। आम्रकुंज की मदमाती गंध मन मोह लेती है। अमराइयों के बीच आनंद का बधावा होने लगता है। कोयल कूकती है तो हवा गाने लगती है। जयदेव का काव्य 'गीत गोविन्द' तो वासंती रस-वृष्टि का काव्य ही है। दूसरी ओर वसंत राग छह रागों में दूसरे क्रम का उत्कृष्ट राग है। अनुराग का राग। लेकिन विपरीत परिस्थितियों में जब दोनों ही वसंत चपेट में आते हैं तो सब कुछ उजड़ने लगता है। सारी चमक, आभा बाधित होने लगती है। संग्रह की नामधर्मा कहानी 'वसंत का उजाड़' राग के उजाड़ की ही कहानी है। जहाँ रस-भंग होता है। तमाम आशाओं-अपेक्षाओं पर पानी फिर जाता है। छोटी जगह में बड़े अफ़सर की अनायास उपस्थिति कैसे गीत-संगीत की महफिल के माहौल को दूषित करती है और कैसे अकलावादी अफ़सर गीत-संगीत की मदमाती गंध से उपस्थित जन समुदाय का ध्यान भटका कर आयोजन के मूल-भाव को ही नष्ट कर देता है!

क्वार्टर गार्ड या पुलिस लाइन में सामान्यत: सुबह-शाम बजने वाले बिगुल की तुलना में शंख फूँकना अधिक साहस का काम है। शंख फूँकने का अर्थ है संघर्ष, आंदोलन या युद्ध के आरंभ की घोषणा करना। बिगुल की तरह आसान नहीं है शंख फूँकना। इसके लिए साहस और फेफड़ों में हवा होनी चाहिए। वैसे बिगुल कुछ ख़ास लोगों के लिए ख़ास मौंकों पर बजाया जाता है। आम आदमी को यह हक़ हासिल नहीं है। कथाकार ने कथा के बहाने गाँधीजी की प्रासंगिकता पर भी प्रश्न उठाए हैं। आज गाँधी दिखावे और इस्तेमाल की वस्तु भर बन कर रह गए है। कहानी बिगुल ऐसे तमाम सच को बड़ी शिद्दत से उजागर करती है।

उजड़े और समाज से उखड़े लोगों के प्रति प्रकाश कांत की सामाजिक प्रतिबद्धता स्पष्ट है। चाहे वह वसंत के उजाड़ की बात हो, उजाड़ अटाले वाले की बात हो, सीधे-सच्चे एकाकी जीवन जीने वाले उजड़े व्यक्ति की गाथा हो या युवा प्रेमी-पति के भीतर के किसी उजाड़ और रेगिस्तान के ख़िलाफ़ बहती नदी की, अथवा आज़ादी के प्रसाद से वंचित की त्रासदी का बयान हो या फिर किसी थकी और उजड़ी हुई मुस्कुराहट की चर्चा हो। अपने में खोए व्यक्ति के अंतर मन को टटोलती प्रभावी कहानी है 'उजाड़ की तरफ'। पिता, पत्नी और दृष्टिबाधित बेटी को खो चुके संतप्त आदमी की यह मर्मस्पर्शी व्यथा-कथा है। जिस व्यक्ति की पूरी ज़िंदगी ही उजड़ी हुई हो, उसका आख़िर और कितना-क्या उजड़ेगा! पात्र के बहाने लेखक ने भविष्य-फल की प्रामाणिकता पर भी तंज़ कसा है कि कितना अज़ीब है दुनिया के अरबों लोगों को सिर्फ बारह खानों में बाँटकर आने वाले दिनों का हिसाब लगाना। आस्था इस हद तक कि बस चले तो लोग साँस भी मुहूर्त देखकर लें।

दरख़्त यूँ ही नहीं सूखता। हो सकता है कोई सींचने वाला ही न हो। जब पेड़ सूखना शुरू करता है तो पहले उसके पत्ते पीले पड़ते हैं। फिर एक-एक कर झड़ते हैं। डालियाँ झुकती हैं। अंतत: एक दिन पेड़ ठूँठ बनकर रह जाता है। बहुत दूर के रिश्ते के मामा का जीवन भी कुछ ऐसा ही था। वृक्ष की भाँति वे निश्वार्थ भाव से प्रेम-फल बाँटते रहे। जुड़े रहे, कभी तन से कभी मन से। बिलकुल अकेले यहाँ-वहाँ भटकते हुए। वर्षों बाद मिले तो थके-हारे ऐसे कि पहचान पाना मुश्किल। एकदम खण्डहर। 'उजाड़ सूखते हुए दरख़्त' ऐसे ही एक संवेदनशील मनुष्य के सकारात्मक सोच की कहानी है।

प्रकाश कांत की कहानियों में ख़ास किस्म की ख़लिश नज़र आती है। वस्तुत: ये अनुभव से उपजे विचार की कहानियाँ हैं। जीवन के सूक्ष्म अनुभवों की। लेखक अपने अंदर एक बड़ी दुनिया समेटे है। वह परिवेश की गहराई और व्यापकता को तीव्रता से देखता है। कांत की कहानियों में आप कलात्मक संयम पाएँगे।

कला-कल्पना और अनुभव से बुनी कहानियाँ स्वयं अपने कथ्य और संवेदना में शिल्पगत अनुशासन लागू कर लेती हैं। जटिल यथार्थ को सुलझे शिल्प में प्रस्तुत करने की अद्भुत क्षमता है इस कथाकार में। मुखरता पर अंकुश के बावजूद पाठक के लिए अन्वेषण के लिए काफी कुछ छोड़ा गया है। इस पूरे आयोजन में कांत की समृद्ध भाषा का बड़ा योगदान है। छोटे-छोटे वाक्यों में बड़ी बातें कहने की अद्भुत क्षमता है कथाकार में। पाठक का कम समय लेकर उसे अधिक से अधिक देने की अपार सामर्थ्य। उसका गद्य हमें हिन्दी साहित्य के सर्वाधिक सशक्त रचनाकार परसाई की रचनात्मकता का स्मरण कराता है। उसकी भाषा मे सादगी होते हुए भी गहरी संवेदना है। वह यत्नसााधित नहीं है। रवानी वाली सतत प्रवाही सहज भाषा है। लेखन में शाब्दिक ऊर्जा देखना हो तो कांत की रचनात्मकता से मुब्तला होगा।

000

पुस्तक समीक्षा

(कहानी संग्रह)

कुहासा छँट गया

समीक्षक : डॉ. आशा सिंह सिकरवार

लेखक : ममता त्यागी

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

डॉ. आशा सिंह सिकरवार
अहमदाबाद
गुजरात

ममता त्यागी जी का यह पहला कहानी संग्रह है, जो अभी हाल में ही प्रकाशित हुआ है जिसमें कुल ग्यारह कहानियाँ हैं। स्त्री लेखन की चुनौतियों का ज़िक्र करते हुए वे पुस्तक की भूमिका में कहती हैं कि स्त्री के काँधों पर घर गृहस्थी का बोझ पहले से ही रखा है यदि कोई काम-काजी महिला है तब यह भार दोगुना बढ़ जाता है। इस पर बच्चों की परवरिश की ज़िम्मेवारी अलग से है। ऐसे में किसी भी स्त्री का पढ़ना-लिखना कठिन होता है।

ममता त्यागी भी इसी प्रकार की चुनौती से गुज़रते हुए अपनी लेखनी को एक आवाज़ देने का प्रयास करती हैं। अपने देश से बाहर बैठकर अपनी ज़मीन और भारतीय समाज से जुड़ती हैं और संवेदनात्मक लगाव भी रखती हैं। परदेश में बसने वाले परिवार की समस्या दिन- प्रति बढ़ती जा रही है। एक तरफ तकनीकी शिक्षा ने युवा वर्ग को आत्मनिर्भर बनाया है। वह अपनी शिक्षा द्वारा विदेश में रहकर सुख-सुविधापूर्ण जीवन जीना चाहता है। वहीं दूसरी ओर विदेश में रहकर केवल अर्थ की भाषा समझता है। संवेदना के स्तर पर खालीपन से भर गया है। बदलते परिवेश में आज परिवार का अर्थ पति -पत्नी और बच्चे तक सिमट गया है जिसमें माता-पिता के लिए कोई जगह नहीं है। साथ ही माता-पिता की ज़िम्मेदारी से भी मुँह मोड़ रहा है। आत्मिक संबंधों के ईद गिर्द ताना- बाना बुनती ममता जी की पहली कहानी है।

'कुहासा छँट रहा है' यह केवल कहानी का ही नाम नहीं है अपितु कहानी संग्रह का नाम भी है। इससे सहज आभास मिलता है कि इन कहानियों का सरोकार पुरानी धुंध को हटा कर नवीन दृष्टि का प्रादुर्भाव भी है।

कहानी में एक नवयुवक की कथा है जो अमेरिका में अपने परिवार समेत बस गया है और कोरोना काल के कारण माता पिता को वहीं रुकना पड़ता है। वे अपने बेटे के पास केवल कुछ दिनों के लिए गए थे, कुछ दिन ठहरने के बाद उन्हें पता चला कि उनका बेटा अमेरिका आकर संवेदनहीन हो गया है अपने माता-पिता की कोई परवाह नहीं है। माता -पिता जिस उम्मीद से अपने बेटे के पास रहने गए थे दुखी हो कर भारत लौटने के लिए मजबूर हुए। बच्चों और माता-पिता के बीच आए अन्तराल के कारण सामाजिक व्यवस्था चरमरा गई है। मानव मूल्यों की तलाश में यह कहानियाँ वैचारिक धरातल पर व्यापक स्वरूप धारण करती हैं। यह कहानियाँ पूँजीवादी व्यवस्था में हस्तक्षेप करते हुए सामाजिक और मानवीय संवेदनाओं में बदलाव की ओर उन्मुख करती है। आधुनिक और मॉडन कहलाने की दौड़ में घर परिवार समाज से कट कर जीवन जीने के लिए विवश हो गए हैं।

समाज में विकास का वास्तविक क्रम ऊपर से नीचे की तरफ बता कर एक विशिष्ट दृष्टि का परिचय दिया है। यदि समाज का विकास संभव है तो नीचे से ऊपर नहीं ऊपर से नीचे अर्थात् उच्च वर्ग ने शिक्षा द्वारा यदि विकास किया है तो समाज के निम्न वर्ग को उदार एवं संवेदनशील दृष्टि से देखें। और उन्हें दुखों से मुक्ति के रास्ते दे। एक वयोवृद्ध दंपति अपनी नौकरानी की बेटी को शिक्षा का संपूर्ण खर्च देकर समाज में मनुष्यता का उदाहरण प्रस्तुत किया है। इस कहानी में पूँजी पति वर्ग को निम्न वर्ग के प्रति न केवल संवेदनशील बताया है बल्कि उनके दु:ख में सहायक भी हुआ है। इस दृष्टि से यह कहानी साहित्य में महत्त्वपूर्ण हो गई है।

व्यक्ति जब तक 'पर' पीड़ा को महसूस नहीं करता है, तब तक वह स्वयं दु:ख से नहीं गुज़रता है। रमा और श्याम तिवारी दोनों ही पति- पत्नी ने यह मान लिया है कि यदि बच्चों को हमारी संपत्ति की, हमारे प्रेम की ज़रूरत नहीं है तब ग़रीब वर्ग की मदद करके मनुष्यता को

बचाए रखने का दायित्व निभा सकते हैं। इसी कहानी में एक स्थिति विशेष का चित्रण लेखिका के शब्दों में - "मधुर कुछ नहीं बोला, बोलता भी क्या?अपनी आँखों से देख रोज़ देख ही रहा था बस चुपचाप इंडिया की टिकट करवा दी।"

यहाँ पता चलता है कि मधुर की भूमिका गौण है संवेदनहीनता के कारण अपने माता-पिता के प्रति रूखा व्यवहार करता है। जिस शिक्षा द्वारा अमेरिका पहुँचा। वह स्वयं की जड़ें काट रहा है। जो शिक्षा घर-परिवार रिश्तों में रिक्ता का भाव भर रही है उससे मनुष्य का अथवा समाज का विकास कैसे कह सकते हैं? दबी छिपी पर आज के दौर की पीड़ा और चिंतन दोनों को उभारने में ममता जी सफल हुई हैं।

'लॉकेट ' कहानी में भी एक तरफा प्रेम का दर्द उदघाटित हुआ है, वहीं पुरुष मानसिकता का पता लगता है प्रेम के नाम पर छले जाने का अहसास स्त्री को भीतर ही भीतर मार देता है। पुरुष भूतकाल में बीती घटनाओं को भूलकर तुरंत संवेदनाओं को एक ओर करके जीवन में लौटता है और अवसरवादी भूमिका में दिखाई देता है। नतीजतन कहानी की मुख्य पात्र माधुरी जीवनपर्यन्त अकेलापन झेलती है इसके वाबजूद वह अध्यापिका की भूमिका को चरितार्थ करती है।

'पुनर्जन्म' कहानी भी घर-परिवार के आपसी रिश्तों में सूक्ष्म और पारदर्शिता के स्तर तक मन-मस्तिष्क को को झकझोरती है। लेखिका ने बहुत सहजता से कह दिया है कि मनुष्य कोई वस्तु नहीं है जिसे हथिया लिया जाए, संवेदनाएँ भीतर ही भीतर वार करती हैं और एक दिन सच्चाई से सामना हो जाता है। इस कहानी में भी ममता जी ने उद्देश्यपूर्ण विकल्प सुझाया है। मानवीय रिश्तों में प्रेम और संवेदना बची रहे, प्रयास किया है।

ममता जी ने लगभग सभी कहानियों में क़िस्सागोई का शिल्प अपनाया है, जिसके कारण कहानी के संवाद सीमित हो गए और पात्रों का विशिष्ट चरित्र उदघाटित नहीं हो सका। कहानियाँ कथानक के वैविध्य को सरलता से समेट लेती हैं लेखक की चेतना जब रचनात्मकता वैचारिक धरातल पर कथानक को लेकर नया आयाम देती है तब कहीं नए विचार की स्थापना सम्भव है। प्रश्न यहाँ यह भी उठता है कि लेखक का चेतना के साथ संघर्ष किस प्रकार का है ?

रॉल्फ फॉक्स ने कहा है कि - "साहित्यकार का कर्म मात्र वस्तु जगत् को धारण करना नहीं है बल्कि नए सत्यों की उद्भावना करना भी है।" क्या आज का कहानीकार अपने अनुभव के सहारे जीवन प्रभाव को पकड़ने में सार्थकता रखता है उसका यह प्रयत्न कितना महत्त्वपूर्ण है यह हमें बारीकी से समझने का प्रयत्न करना चाहिए। पात्रों में चरित्र का विकास कहानी की मूल चेतना का बचाव कर सकता है।

कहानी के पात्रों में रमा नव्या, मधुर, मिथिला, हरदीप, बानी, मनिंदर, रेणु, अमित,मीतू, कृति, नवीन आदि पात्रों द्वारा और शुरुआत से अंत तक कहानी प्रभावशाली और गतिमान रहती है। कहानी में रोचकता बनाए रखने के लिए ममता जी ने सरल सहज भाषा शैली का प्रयोग किया है।

'तिरस्कार की भरपाई' कहानी एम्बिवेलेंट एटीट्यूड का बेहतर उदाहरण प्रस्तुत करती है। जब रेणु दहेज के विरुद्ध कदम उठाती है। जिस स्थिति में दहेज की रकम इकट्ठा न कर पाने के प्रयास में अन्तर्विरोध का रेणु सामना करती है इस कहानी का मुख्य उद्देश्य बन जाता है।

समाज में जिस सशक्तिकरण को लेकर आवाज़ सुनाई पड़ रही है उसके दुष्परिणाम भी उसी स्त्री को भोगने पड़ते हैं। यहाँ दो स्थितियाँ मिलकर एक बिम्ब तैयार करती है जिसमें दहेज न दे पाने की बिडंबना है वहीं दूसरी ओर रेणु का विरोध दर्ज होता है किन्तु स्थितिगत परिणामस्वरूप रेणु आजीवन अविवाहित रह जाती है। जिसके कारण अकेले रह कर जीवन भर संघर्ष झेलना पड़ता है। कहीं भी द्वंद्वात्मक स्थिति उत्पन्न नहीं होती है।

ममता जी की प्रत्येक कहानी सउद्देश्य चली। संवाद के बिना कहानी परिस्थिति को रच लेती हैं हालाँकि कहानी में ऐसा बहुत कम होता है। संवाद स्थिति और घटना दोनों का निर्माण करते हैं तब एक सफल कहानी बनती है। एक और कहानी है जिसका नाम है 'ब्रांडेड कपड़े' यह इसलिए भी ज़रूरी हो जाती है कि लेखिका ने वर्तमान जीवन की भयावह स्थितियों-परिस्थितियों का लेखा-जोखा प्रस्तुत है।

आज बाज़ारवाद ने ज़रूरत से ज़्यादा मनुष्य के भीतर सौन्दर्य का आकर्षण और उच्चवर्ग का प्रदर्शन करने में मात्र मान प्रतिष्ठा ही नहीं बल्कि संवेदनाएँ भी दाँव पर लगा दी हैं। स्त्री और पुरुष का प्रेम आत्मीय संबंध अर्थ पर सिमट कर रह गए हैं। स्त्रियों के भीतर एक बाज़ारवाद पैठ रहा है वे अपने प्रेमी या पति से मँहगा तोहफ़ा प्राप्त करने की उम्मीद रखती हैं। ब्रांडेड कंपनियों की चीज़ें इस्तेमाल करने की आदत के बुरे परिणाम आते हैं।

लेखिका ने बहुत सुन्दर ढंग से इस समसामयिक परिवेश का चित्रण किया है तथा समाज में यह समस्या बहुत गहरे पैठती जा रही है। ऐसी स्थिति में संवेदना का अंत होने के साथ ही संबंध का भी अन्त हो जाता है। आज धन के समक्ष संवेदना का कोई मोल नहीं। इतना ही नहीं आय से अधिक खर्च करने पर कठिन दिनों में मुसीबतों का भी सामना करना पड़ता है।

पुनर्मिलन, अमावस का चाँद आदि कहानियाँ भी मानव जीवन और मानवीय संबंधों पर जमी परत दर परत खोलती चलती है। प्रेरणात्मक, संदेश लेकर चलती हैं महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि विकल्प है। एक के पास दूसरा विकल्प है भटकाव नहीं है। एक सकारात्मक दृष्टि लगातार कहानी में कार्य करती दिखाई देती है।

ममता त्यागी जी ने अपने प्रथम कहानी संग्रह में एक गहन सामाजिक दृष्टि एवं मानवीय संबंधों पर सूक्ष्म लेखनी चलाकर हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है। पढ़ने पर कहानियाँ स्मृति में देर तलक बनी रहेगीं। साथ ही मानव संबंधों में आई संवेदनात्मक रिक्ता में रागात्मकता और प्रेम के लिए ज़मीन तैयार होगी।

000

पुस्तक समीक्षा

(कहानी संग्रह)

मेरी चुनिंदा कहानियाँ

समीक्षक : दीपक गिरकर

लेखक : डॉ. अशोक गुजराती

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

दीपक गिरकर
28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- 452016
मोबाइल- 9425067036
ईमेल- deepakgirkar2016@gmail.com

"मेरी चुनिंदा कहानियाँ" सुपरिचित कथाकार डॉ. अशोक गुजराती का तीसरा कहानी संग्रह है। अशोक गुजराती के लेखन का सफ़र बहुत लंबा है। इनकी रचनाएँ निरंतर देश की लगभग सभी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। अशोक गुजराती की प्रमुख कृतियों में "चहकार", (उपन्यास), "ये नहीं कि ग़म नहीं", अंगुलीहीन हथेली (कहानी संग्रह), ख़ुशबू का अहसास (बाबा आमटे की औपन्यासिक जीवनी), बीर बहूटी (नाटक), उजाले की मौत, तुम क्या जानो, अंदाज़ नया, (लघुकथा संग्रह), सार्थ (आलेख संग्रह), बचपन (बाल-साहित्य), नायाब (कविता संग्रह), व्यंग्य के रंग, चहबच्चे (व्यंग्य संग्रह), पंछी-सी उड़ान, सृष्टि की रचना, कालू का कमाल, लालची भालू ख़ुशी के दीये(बालकथा संग्रह), सौर जगत का एक बंजारा (लेख संग्रह), ओ हेनरी की कहानियाँ (अनुवाद), जंगल में चुनाव (किशोर उपन्यास), विज्ञान - हँसते-हँसाते खण्ड १ व २ (बालोपयोगी), चिन्तना (विमर्श) शामिल हैं। संवेदनशील कथाकार अशोक गुजराती जटिल यथार्थ को बड़ी बेबाकी से अपनी कहानियों में अभिव्यक्त करते हैं। इस कहानी संग्रह में छोटी-बड़ी १२ कहानियाँ हैं। इन कहानियों में दिखने वाले चेहरे हमारे बहुत करीबी परिवेश के जीते-जागते चेहरे हैं। कहानियों के पात्र गढ़े हुए नहीं लगते हैं, सभी पात्र जीवंत लगते हैं। कहानियों में प्रवाह है, अंत तक रोचकता बनी रहती है। इस संग्रह की विशेषता है कि कहानियों में विविधता बहुत है। संग्रह की अधिकांश कहानियाँ मध्य और निम्न वर्ग से संबंधित हैं। इस कहानी संग्रह की कहानियों में यथार्थवादी जीवन, जीवन की समस्याएँ, ग़रीब वर्ग की ईमानदारी, बेबसी, संतान के प्रति मोह, शोषण, उत्पीड़न, और स्त्रीमन की पीड़ा आदि का चित्रण मिलता है।

संग्रह की पहली रचना "भड़ास" में कथाकार ने एक ईमानदार, मेहनती, ग़रीब अपाहिज व्यक्ति के मानसिक तनाव को इस कहानी में स्वाभाविक रूप से निरूपित किया है। "कस्टमर केयर उर्फ़ दूसरा झूठ" कहानी अपने कथ्य और कथानक से काफी रोचक बन पड़ी है। इस कहानी में कथाकार ने एक ईमानदार शिक्षक की मन स्थिति और उसके मनोविज्ञान का चित्रण सफलतापूर्वक किया है। कथाकार ने एक महत्त्वपूर्ण विषय को उठाया है कहानी "भगदड़" में। व्यवस्था तथा परिस्थितियाँ समीर जैसे नवयुवक को आतंकवादी बनने को मजबूर कर देती हैं लेकिन जब समीर के द्वारा की गई भगदड़ में उसकी अपनी प्रेमिका शब्दिता मारी जाती है तो वह बुरी तरह से टूट जाता है।

"परख" कहानी का कैनवास बेहतरीन है। इस कहानी में कथाकार ने समाज में हो रही तब्दीलियाँ और जड़ता दोनों को सामने लाकर कथा का ताना बाना बुना है। संबल जी की पत्नी कौशल्या को घर में काम करने वाली बाई दलित समाज की नहीं चलती है तो वे अपनी बहू के रूप में दलित समाज की मेहा को घर में कैसे घुसने देती? संबल जी अपनी दलित बहू को अपनी पत्नी कौशल्या जी द्वारा अपनाने के लिए एक नायाब तरीका ढूँढ़ते हैं। कौशल्या जी को कैंसर होने के बाद उन्हें अस्पताल में एडमिट कर देते हैं। संबल जी अपने डॉक्टर मित्र की सहायता से कौशल्या जी की सेवा सुश्रूषा के लिए अपनी दलित बहू मेहा को नर्स के रूप में प्रस्तुत कर देते हैं। मेहा जी जान से अपनी सास की सेवा करती है और अपनी सास का दिल जीत लेती है।

"तालीम ताल" कहानी में कथाकार ने शिक्षा क्षेत्र में हो रहे घोटालों को उजागर किया है। "ये तो नहीं कि ग़म नहीं, हाँ, मेरी आँख नम नहीं" कहानी में "लिवइन रिलेशन" को विषय बनाया गया है। कहानी की मुख्य किरदार सांत्वना आर्थिक रूप से स्वतन्त्र है और वह मानसिक स्वतंत्रता चाहती है, लिवइन रिलेशनशिप में उसे मानसिक स्वतंत्रता तो मिलती है लेकिन प्रेम नहीं। उसके पार्टनर सिर्फ़ उसकी देह का उपभोग करते हैं। अंत में सांत्वना अपने माता-पिता द्वारा प्रस्तावित युवक से शादी के लिए स्वीकृति दे देती है।

"मन्दी" कहानी बाज़ार की मन्दी पर लिखी यथार्थवादी कहानी है। वैश्विक मन्दी में कई निजी क्षेत्र के कर्मचारियों को नौकरियों से निकाल दिया गया था। कहानी का नैरेटर जो एक एनीमेशन कंपनी में रेंडरिंग विभाग में था उसे भी नौकरी से निकाल दिया जाता है। वह नौकरी के लिए कई जगह प्रयत्न करता है लेकिन उसे उसके लायक नौकरी नहीं मिलती है। तब वह आत्महत्या का विचार करता है लेकिन उसे अपनी बेटी और पत्नी का ख़याल आता है तो वह आत्महत्या का विचार छोड़ देता है और सोचता है कि "हम तो फ़िर भी ठीक हैं, किसी प्रकार जी रहे हैं, उनका क्या, जिनके सर पर छत नहीं है, कहीं कोई जूठन या भीख मिली तो खा ली वरना पानी पीकर पड़े रहे, दो वक़्त की रोटी भी जिन्हें नसीब नहीं होती, वे भी तो जी ही रहे हैं, झुग्गी झोंपड़ी में, फुटपाथ पर या किसी की बेगार पर, फेंका हुआ खाना खाकर, लंगर में या मंदिर में प्रसाद माँगकर, किसी पेड़ के नीचे, शीत लहर में भी खुले आसमान को ताकते हुए, कैसे-कैसे तो जी रहे हैं लोग। क्या हम उनसे अच्छी स्थिति में नहीं हैं? वे तो शिकायत तक नहीं करते और हम मरने पर उतारू हो जाएँ? नहीं, हरगिज़ नहीं, हम से गई बीती हालत में भी जो जिजीविषा बनाए हुए हैं, क्या उनसे हम कोई सबक़ न लें, फटेहाल, लगभग निर्वस्त्र, मिल गया तो खा लिया ऐसे हज़ारों लाखों परिवारों से हम इतने अधिक धनवान हैं। फ़िर शिकवा किस बात का?" (पृष्ठ ९८)

"बेध्यानी" एक क्रिकेट खिलाड़ी की कहानी है, जिसमें वह खिलाड़ी एक टेस्ट मैच में फील्डिंग करते समय गिर जाता है, उसका एक हाथ और पैर में फ्रैक्चर हो जाता है और वह अपाहिज हो जाता है। वह नौकरी के लिए बहुत प्रयास करता है। उसे सिर्फ़ आश्वासन मिलते हैं, उसे न नौकरी मिलती है और न ही सरकारी सहायता। वह अवसाद में आ जाता है और आत्महत्या कर लेता है। "जिजीविषा" एक निर्धन डोम की कहानी है जिसे अपने पेट के खातिर अर्थियों का इंतज़ार रहता है। किसी की अर्थी देखकर उस डोम को ख़ुशी होती है - नींद से हताश हो वह बाहर निकला तो उसे एक अनिर्वचनीय ख़ुशी ने घेर लिया। जंगल में ज्यों पंछियों, जानवरों को शेर के आने का पूर्वाभास हो जाता है, कुछ वैसे ही रास्ते पर दूर तक कुछ नहीं था फ़िर भी उसे पता चल गया था कि किसी की अर्थी आ रही है, पास ही बैठी अन्नपूर्णा से उसकी निगाहें मिलीं। लगा जैसे दो हरेभरे ख़ुशहाल किनारों को एक क्षण के लिए कोई सेतु जोड़ गया हो। (पृष्ठ १०८)

"उठे हुए हाथ" कहानी साम्प्रदायिक दंगों पर आधारित है जिसमें एक बुज़ुर्ग लाइब्रेरी की पुस्तकों को बचाने के लिए अकेले ही निकल पड़ते हैं। "मैं ज़िंदा रहना चाहता हूँ" कहानी में एक सरदार महिंदर सिंह ट्रैन में लूटपाट कर रहे खालिस्तानियों से अकेले भीड़ जाते हैं और सभी यात्रियों को लूटने से बचा लेते हैं, लेकिन अपने गंतव्य वाले स्टेशन से पहले ही उतर जाते हैं क्योंकि वे खालिस्तानियों की हिटलिस्ट में नहीं आना चाहते थे और अपने परिवार के लिए जीना चाहते थे। संग्रह की अंतिम कहानी "लैंडस्लाइड" एक दलित व्यक्ति धोंडू की कहानी है जिसे शादी के बाद कई सालों तक संतान नहीं होती है। उस व्यक्ति की पत्नी एक संत के संपर्क में आती है। वे संत उसकी पत्नी से कहते है कि यदि तुम्हारा पति अपनी नौकरी छोड़कर भिक्षा पर गुजारा करें तो तुम्हें निश्चित ही संतान की प्राप्ति होगी। वह व्यक्ति धोंडू वैसा ही करता है और उसे संतान प्राप्ति होती है। उसके पश्चात धोंडू अपने मामा के पास मुंबई आ जाता है। धोंडू के मामा एक सरकारी ठेकेदार है। वे धोंडू को सुपरवाइजर के पद पर रख लेते हैं। धोंडू को एक मज़दूर युवती कुसुम से प्यार हो जाता है। धोंडू अपनी पत्नी सुमन को तलाक देकर कुसुम से शादी कर लेता है। अचानक एक दिन धोंडू के मामा का देहांत हो जाता है। धोंडू अपने मामा के पूरे कारोबार को अकेले सँभालता है। एक दिन धोंडू को अपनी पुत्री जैसी लड़की नग्न अवस्था में मुंबई में दिखती है, धोंडू उस समय स्वयं ही कार ड्राइव कर रहा होता है धोंडू अपनी पुत्री के बारे में ही विचार करता है, जिससे उसका ध्यान भटक जाता है और उसका एक्सीडेंट हो जाता है जिसमें धोंडू की मृत्यु हो जाती है।

लेखक की सामाजिक सरोकारों के प्रति सजगता को "परख", "ये तो नहीं कि ग़म नहीं, हाँ, मेरी आँख नम नहीं", "जिजीविषा", "लैंडस्लाइड" कहानियों में साफ देखा जा सकता है। संग्रह की कहानियों में कुछ ऐसे चरित्र हैं जो अपनी संवेदनशीलता, मानवीयता, परोपकारिता, सेवाभाविता और ईमानदारी के कारण सदैव याद किए जाते रहेंगे। इनमें प्रमुख है "भड़ास" कहानी का किशोर, "कस्टमर केयर उर्फ़ दूसरा झूठ" कहानी के अवधेश जी, "भगदड़" कहानी की शब्दिता, "परख" कहानी की मेहा। इस संग्रह की कहानियाँ हमारे आज के समय का दर्पण है। लेखक ने समाज में व्याप्त विसंगतियों, त्रासदियों को इन कहानियों में उजागर किया है। ये कहानियाँ जीवन से सार्थक संवाद करती हैं। लेखक की कहानियाँ समाज के ज्वलंत मुद्दों से मुठभेड़ करती है और उस समस्या का समाधान भी प्रस्तुत करती है। इस कहानी संग्रह को पढ़कर लेखक के मानवीय मूल्यों के प्रति आस्था, उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता का परिचय मिलता है। सहज और स्पष्ट संवाद, घटनाओं का सजीव चित्रण इस संकलन की कहानियों में दिखाई देता हैं। कहानियों के सारे पात्र जाने पहचाने लगते हैं। कहानियों के शीर्षक विषयानुरूप है। संग्रह की कहानियाँ पाठक को बाँधे रखती हैं। आशा है डॉ. अशोक गुजराती के कहानी संग्रह "मेरी चुनिंदा कहानियाँ" का हिन्दी साहित्य जगत् में स्वागत होगा।

000

पुस्तक समीक्षा

(कविता संग्रह)

समय का अकेला चेहरा

समीक्षक : प्रदीप कुमार ठाकुर

लेखक : नरेंद्र पुंडरीक

प्रकाशक : लिटिलबर्ड पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली

प्रदीप कुमार ठाकुर
मूल्यांकक,
केंद्रीय हिन्दी निदेशालय
नई दिल्ली
संपर्क- 9330561518
ईमेल- pradipb.ed@gmail.com

नरेंद्र पुंडरीक नब्बे के दशक के कवियों में एक चर्चित नाम है। केदारनाथ अग्रवाल के साहित्य के मर्मज्ञ कवि और लेखक के रूप में साहित्य जगत में उनकी विशेष पहचान है। वर्तमान में वे केदार स्मृति शोध संस्थान के सचिव और 'माटी' पत्रिका के संपादक के रूप में सक्रिय हैं। सन १९९१ से ही वे कविकर्म से जुड़े रहे हैं। उनका पहला काव्य-संग्रह'नंगे पाँव का रास्ता' सन २००० में केदार जी के आग्रह पर परिमल प्रकाशन से प्रकाशित हुआ था। इक्कीसवीं सदी में भी अपनी लेखनी से वे साहित्य के क्षितिज का विस्तार करने में मशगूल हैं। इस वर्ष २०२१ में उनका नया संग्रह 'समय का अकेला चेहरा' लिटिलबर्ड पब्लिकेशन्स, दरियागंज,नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। उनका यह काव्य-संग्रह एक नए एंद्रिक भावबोध तथा अनुभूति के साथ समकालीन हिन्दी कविता की ज़मीन को उर्वर बनाने की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है।

इस संग्रह में कवि ने अलग-अलग कोणों से भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रसंगों को काव्य का कथ्य बनाकर उसे नए भावबोध से जोड़ते हुए पूरी समग्रता के साथ एक मानवतावादी ज़मीन पर उतारने का प्रयास किया है। स्वयं से जुड़ी स्मृतियों, पिता से जुड़े प्रसंगों के इर्द-गिर्द बुनी गई यह रचना अपने वृत्त में स्त्री, धर्म, समाज और समसामयिक हलचलों को शिद्दत के साथ समेटती हुई एक नए आख्यान रचने का उपक्रम करती है। किंतु यह अपने समय का रूखा बयान भर नहीं है बल्कि यह उस समय से उपजे इतिहास-बोध को युगबोध में बदलकर भविष्य की आवाज़ों को पकड़ने की कोशिश भी है। बदलते समय के बदलते परिदृश्यों के नोटिस लेता हुआ कवि न केवल ऐतिहासिक घटनाचक्रों की ज़मीनी पड़ताल करता है बल्कि उसके अंतस में उतरकर तेजी से बदलते घटनाचक्रों और संकुचित होते जा रहे परिवेश की शिनाख़्त करता है। कवि की कुछ पंक्तियाँ('अपना एक समय था' कविता से)द्रष्टव्य हैं- वह अपना एक समय था / जब हम हिंदू-मुसलमान नहीं होते थे / होते तो अब भी नहीं हैं लेकिन आज की तरह हर शहर में / हिंदू-मुसलमान बनाने के / कारखाने नहीं खुले थे /

और / गाय के बछड़े का खेत जोतना / इतिहास होने जा रहा है और / खेत का खेत होना भी

/ गाय का सीधापन हमारी माओं में / हज़ारों साल पहले ही स्थानांतरित हो गया था / जो उसकी बेटियों में ठहरा हुआ है / जो गाय कही जाती हैं।

लोकतंत्र रूपी वटवृक्ष की शाखाओं पर जब कुठाराघात किया जाता है तो वह व्यथित हो उठता है। तब संवैधानिक मूल्यों की वकालत करता हुआ वह आत्ममुग्धता और बदबोलेपन की जड़ में गिरफ्त देश के कटु यथार्थ को बारीकी से पकड़ता हुआ वह 'क्षेपक' कविता में कहता है- लेकिन इसे चाहे जितना शीशा दिखाओ / अपने को दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र / कहने में नहीं अघाता / जबकि इसके लोकतंत्र में कहीं / आदमी नहीं लौकता हमेशा / जाति में छलाँग लगाकर / धर्म में कुलाँचें मारता है / इसका चेहरा धू-धू कर / जलती हुई बस्तियों का हाहाकारी चेहरा है / जिसमें बलात्कारों से बेजार हुई / औरतों और लड़कियों की चीखें हैं / हलाक होते बूढ़ों और बच्चों की आवाज़ें हैं

गाँधी के इस देश में जन्में नए सत्ताधारी वर्ग की स्वार्थी नीतियों के फलस्वरूप उपजे असंतोष और दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जूझती फटेहाल जनता की सूनी उदास आँखों के दयनीय दृश्य उसकी कविताओं से झाँकते हैं। अपनी कविता 'हल्के मामा' कविता में वह कहता है- आदमी इतना ही चाहता है / बाकी के खोज-बीन की / पेट की खौखियाहट के मारे इस देश में / फुरसत ही कहाँ रहती है आदमी को / उसकी तो सारी काबिलियत पेट की / लातें बचाने में ही निकल जाती है

कवि की जागृत चेतना जाति और धर्म के नाम पर बाँटनेवाली विभेदवादी नीतियों तथा उसको प्रश्रय देनेवाले नियंताओं के रुग्ण मस्तिष्क की संकीर्णताओं को लक्षित करती है। 'यह गाँव और यह नदी तुम्हारी नहीं है' कविता की पंक्तियाँ देखें- इस वक्त तक हमारे या उनके / गुमान में भी नहीं था कि / कभी भग्गू को यह कहकर / बेइज़्ज़त किया जाएगा कि / यह गाँव और यह नदी तुम्हारी नहीं है। / और / यह जानना न जानना देखकर कभी लगता है कि / यह भारत में रहते हैं और / हम हिंदुस्तान में रहते-रहते / भारत में रहने की तमीज नहीं सीख पाये।

स्त्री और प्रेम नरेंद्र पुंडरीक की कविताओं का अन्यतम विषय है। वाह्य-आवरण से ढँके स्त्री देह के भीतर के मन को टटोलते हुए कवि ने स्त्रीमन के बारीक रेशों के सीवन को उधेड़कर उसकी धमनियों में चलने वाले क्रंदन, एकाकीपन तथा अबूझ वेदना को महसूस करने की भरसक चेष्टा की है।'

इन्हें लगता है' कविता का उदाहरण देखें- अपने बीमार होने को / जल्दी बीमार होना नहीं मानतीं / इन्हें लगता है / यदि वे नहीं उठेंगी / तो सूरज नहीं निकलेगा / कैसे चलेगा दुनिया का कारोबार / और / सूरज / नदी और / औरत / तीनों इस दुनिया की सबसे नायाब चीज़ें हैं / जब तक यह अपनी तईं हैं / यह दुनिया,दुनिया बनी रहेगी - 'तीनों इस दुनिया की' कविता से।

कवि का अंतर्मन उस स्त्री के उस कोने को झाँकने में सफल हुआ है,जहाँ रोशनी के कतरे नहीं पहुँचे हैं और जहाँ वह उदास गुमशुम बैठी यंत्रवत एक अंतहीन पीड़ा को भोगने को अभिशप्त है। 'मेरे पढ़े -लिखे में' कविता की निम्न पंक्तियाँ देखें- मेरे पढ़े लिखे में / कहीं नहीं दिखती / आती-जाती / नाश्ता-पानी लाती पत्नी /और / उसने कहा मेरे सिर में दर्द है / ज़रा सहला दो इसे / ज़रा सा दबा दो मेरे हाथ-पैर / उसके हाथ-पैर दबाते हुए मुझे लगा / यही वह स्त्री है / जिसे मैं खोज रहा था / जो एक पुरुष से कह सके / दबा दो मेरे हाथ-पैर ('वह स्त्री मुझे यहीं कहीं मिली थी' कविता से)

कवि नरेंद्र पुंडरीक को कविता की पूरी ताक़त का अंदाज़ा है। यही कारण है कि वह पूरी ईमानदारी से कविता की पूरी क्षमता का इस्तेमाल करता है ताकि इस दुनिया में कुछ ठोस बचा रहे। उसके अनुसार प्रेम ही वह औषधि है जो आज के स्वादहीन समय का सही इलाज है।

शीर्षक कविता में प्रेम की आवश्यकता को रेखांकित करता हुआ वह 'प्रेम तो कोई।'.. कविता में कह उठता है – यह भी तय है कि यदि / दुनिया को अच्छा होना है तो / निश्चित है कि प्रेम को / बचाए रखना होगा /

वह 'हम कैसे हो गए' कविता में प्रश्न करता है – /सोचता हूँ अच्छी दुनिया और / अच्छे लोगों के लिए / हमारे इतना चिंतित रहते हुए भी / इतनी ख़राब दुनिया कैसे बन गई / और हम कैसे हो गए?

कवि की चिंता समय के हर उस अकेले चेहरे की चिंता है, जिसमें उत्कट जिजीविषा विद्यमान है,जिसकी आवाज़ शहरी कोलाहल के बीच दब गई है,जो समय के थपेड़ों को सहलकर भी ताल ठोंकते हुए संघर्षरत है और जिसकी पुतलियों में एक हरी-भरी दुनिया का सपना बचा हुआ है।

वह 'सोने का मुकुट' कविता में लिखता है – उनका सपना सोने के मुकुट को नहीं / उन खेतों का होता था जहाँ वे / चला रहे होते थे हल / इस समय उनके सिर में / बंधी हुई साफी जो कई जगह से / फटी-चिंथी होने के बावजूद सिर में / सोने के मुकुट सी दिखती थी।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि नरेंद्र पुंडरीक का यह काव्यसंग्रह वस्तुत: हमारे समय और समाज का वह आईना है जिससे गुज़रते हुए वह परिवेश जीवित हो उठता है जो आदमी के निर्माण की तथा उसके होने की वजह है। अपने पिता की उँगली पकड़े जिस तरह वह जीवनपथ पर आगे बढ़ता हुआ आज यहाँ तक पहुँचा है, उससे वह हर पड़ाव और ठहराव पर स्वयं को जुड़ा पाता है। माँ, पिता, संबंधी, मित्र जैसे रिश्तों की यह गरमाहट उसे आंतरिक ऊष्मा देती है। हालांकि संग्रह में निजी जीवन प्रसंगों का बोझ ज़्यादा है जिससे पाठक सीधे–सीधे जुड़ता प्रतीत नहीं होता। काव्ययात्रा के इस पड़ाव पर इतने प्रसंगों की ज़्यादा ज़रूरत महसूस नहीं होती। बावजूद इसके कवि निष्काम भाव से दुनिया को सुंदर बनाने की जद्दोजहद में प्रयासरत है। वह विशिष्ट में सामान्य को खोजने को बेचैन है ताकि उस सपने को सच किया जा सके, जिसके अहाते में सब हैं और जिसके उपवन में साँझे जीवन की खुशबू विद्यमान है।

000

पुस्तक समीक्षा

(दोहा संग्रह)

मन का हरसिंगार

समीक्षक : गोविंद सेन

लेखक : कुँअर उदयसिंह अनुज

प्रकाशक : श्वेतवर्णा प्रकाशन, नई दिल्ली

आकारगत संक्षिप्तता और अपूर्व मारक क्षमता के कारण दोहा प्राचीन काल से ही जनप्रिय रहा है। दोहा एक लोक छंद है। पहले यह लोक में प्रचलित हुआ बाद में इसे काव्य ने ग्रहण किया। दोहे में जो सहजता,सरलता और संप्रेषणशीलता दिखाई देती है वह शायद इसी कारण संभव हुई हो। दोहे की गागर सी देह में सागर समा जाता है। दोहा अब श्रृंगारिकता, नीतिपरकता और उपदेशात्मकता की केंचुली उतार चुका है। इन दिनों दोहा हमारे आसपास फैले हुए खुले यथार्थ की बेलौस अभिव्यक्ति कर रहा है। दोहा समकालीन कविता की प्रगतिशील परंपरा को निरंतर पुष्ट कर रहा है। अब यह अपने समय का दर्पण बन गया है। आधुनिक काल में दोहों ने कवियों को बहुत आकर्षित किया है। वर्तमान में सौ से अधिक दोहाकार सक्रिय हैं। कुँअर उदयसिंह अनुज दोहों के एक प्रमुख और सशक्त हस्ताक्षर हैं। लोकभाषा निमाड़ी के दुष्यंत कुमार के रूप में इनकी ख्याति है। समीक्ष्य दोहा संग्रह 'मन के हरसिंगार' इनका दूसरा दोहा संग्रह है। संग्रह में ४६ शीर्षकों में विभाजित करीब ६०० दोहे संग्रहित हैं।

कम शब्दों में और मात्रिक अनुशासन में रहकर प्रभाव उत्पन्न करना कठिन होता है। दोहों में प्रत्येक शब्द का अपना महत्त्व होता है। दोहा एक भी मात्रा की कमी या आधिक्य को बर्दाश्त नहीं करता। अनुज जी ने इसे बखूबी साधा है। इन दोहों के जरिए अनुज जी दबी हुई आवाज़ों को वाणी देते हैं। अनुज जी के दोहे आधुनिक भावबोध से भरे हैं। ये दोहे दमित, दलित,किसान, मज़दूर और शोषित आमजन के पक्ष में खड़े हैं। ये कट्टरता को नकारते हैं, सामाजिक सद्भाव और समतामूलक जीवन मूल्यों की पैरवी करते हैं। ये पाखंडियों और कट्टरपंथियों को बेपर्दा करते हैं। ये सामंतवादी मानसिकता के ख़िलाफ़ खड़े होते हैं। इन दोहों में तल्खी के साथ गहरी संवेदनशीलता है। दोहों में बोलचाल और नए तेवर की धारदार संप्रेषणीय भाषा का प्रयोग हुआ है। अनुज जी परंपरा की लकीर नहीं पीटते वे नई हवा का खुलकर स्वागत करते हैं। पूर्वाग्रहों पर सवाल उठाते हैं। इन दोहों में आम आदमी के जीवन के सुख-दुख, प्रेम-ईर्ष्या, लगाव-अलगाव, संघर्ष, विसंगतियाँ, विद्रूपता, प्रकृति, मौसम के सजीव चित्र उकेरे गए हैं। संग्रह में यत्र-तत्र ताजे-टटके बिम्बों और अछूती उपमाओं की छटा बिखरी हुई है। इन दृष्टि संपन्न दोहों में अभिव्यक्त जीवन सिर्फ़ दोहाकार का ही नहीं सभी के अनुभवों का सारांश है। ये दोहे व्यष्टि से समष्टि की यात्रा करते हैं।

अनुज जी सामाजिक सरोकारों को सर्वोपरि मानते हैं। अनुज जी 'उसका नाम कबीर' शीर्षक दोहों में कबीर, सूर, तुलसी, मीरा, रहीम, मीरा, गालिब, दुष्यंत कुमार के कविता में अवदान को रेखांकित करते हुए उन पर कुछ सवाल भी उठाते हैं। अपनी आपत्ति दर्ज कराते हैं। रीतिकाल में आम आदमी की तकलीफों की कोई झलक नहीं मिलती। लगता है जैसे काव्य का उद्देश्य केवल राजा-महाराजाओं के मनोरंजन तक ही सीमित हो। रीतिकाल के सुप्रसिद्ध कवि बिहारी से अनुज जी शिकायत करते हैं-

एक शिकायत आपसे, करूँ बिहारी लाल / सतसैया में क्यों नहीं, आम जनों के हाल

इसी तरह अनुज जी तुलसीदास के भाग्यवाद पर भी सवाल उठाते हैं-

तुलसी बाबा आपके, ले वचनों की आड़ / भाग्यवाद की राह पर, मेरा हुआ बिगाड़

इस तरह अनुज जी कबीर और दुष्यंत कुमार की परंपरा का अनुसरण करते हुए आगे क़दम बढ़ाते हैं।

संग्रह के दोहों की अन्तर्वस्तु में पर्याप्त विविधता और व्यापकता है। इन दोहों में किसान-मज़दूर की दयनीय हालात हैं। इन दोहों के जरिए निम्न स्तरीय राजनीति पर भी तीखे तंज कसे गए हैं। इनमें दंगों का विनाशकारी प्रभाव है तो सद्भाव की अपील भी। इस संग्रह में पग-पग पर सामाजिक सरोकारों और आम आदमी की पीड़ा को देखा जा सकता है। वे केवल समस्या को चित्रित ही नहीं करते बल्कि उसके मूल कारणों की पड़ताल भी करते हैं।

गोविंद सेन
193 राधारमण कालोनी, मनावर, जिला-धार, पिन-454446, मप्र
मोबाइल- 9893010439
ईमेल- govindsen2011@gmail.com

कोरोना ने पूरी दुनिया को हिलाकर रख दिया। मृतकों का सम्मानित ढंग से अंतिम संस्कार भी नहीं हो पाया। इस दौरान सरकारी व्यवस्थाओं की पोल भी खुल गई। कारोना ने रिश्तों में भी दीवारें खींच दी।

कोरोना ने खींच दी, रिश्तों में दीवार / खड़ा रहा इस पार मैं, आप खड़े उस पार

हलधर के हालात पर अनुज जी ने अनेक दोहे रचे हैं। किसान क़र्ज़ में ही जन्म लेता है और क़र्ज़ में ही मर जाता है। अपना हक माँगने पर उसे लाठियाँ खानी पड़ती है।

अपना हक वे माँगते, लाठी खाए पीठ / हलधर के हालात ये,सत्ता कितनी ढीठ

मौसम की थी बेरुखी, कुछ मंडी की मार / चढ़ता रहा किसान पर, यों हर साल उधार

अनुज जी ने हर तरह के पाखंड का पर्दाफाश किया है। कुछ छद्म वेशधारी बाबा जनता की धार्मिक भावनाओं को शोषण करते देखे गए हैं। इस पर तंज करते हुए अनुज जी लिखते हैं :-

ध्यान योग की साधना, फलीभूत हों काम / कामसूत्र में राम को, साधें आसाराम

निर्दोष सीता को वन में भेजना कवि को स्वीकार नहीं है। इस कारण राम का रावण से लिया गया प्रतिशोध विफल हो गया। स्त्री को दोयम दर्जे का मानना उचित नहीं है। अनुज जी ने लिखा है-

धरा समाई जानकी, होता है यह बोध / विफल रहा है राम का,रावण से प्रतिशोध

इन दोहों के जरिए देश की दशा और दिशा का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

शीर्षक 'दंगों की सौगात' का एक दोहा देखिए-

अफवाहों की बारिशें, देख लिया अंजाम / आँख चुराकर जा रहे, अरशद से बलराम

त्योहार अब हँसी-खुशी नहीं बल्कि दहशत लेकर आते हैं। दोहा देखिए :-

गाँव-शहर में डर लगे, इतने पहरेदार / सरकारें चिंतित हुईं, शायद है त्योहार

दंगों की जड़ों तक भी अनुज जी की दृष्टि जाती है। दोहा देखिए -

बीज कौन से बो दिए,उग आया उन्माद / मुल्ला पंडित ने दिया, इसे कौनसा खाद

अनुज जी धर्मों के बीच वैमनस्य के स्थान पर सद्भाव की बात करते हैं।

कौन भेजता बारिशें, अल्ला या श्रीराम / भीग गई सब मस्जिदें, भीगे चारों धाम

धर्मों की कट्टरता और कर्मकांडों पर अनुज जी ने कबीर की तरह तीखा तंज कसा है-

बजीं रोज़ ही घंटियाँ, होती रही अजान / नींद ख़ुदा की कब खुली, कब जागे भगवान

गए वर्ष आने के बाद भी हालात नहीं बदलते। नए साल में चोरी-हत्या-रेप की नई खेप आ जाती है। इस बात को बखूबी कहा गया है -

गए साल में जो हुए,चोरी-हत्या-रेप / नए साल में आ गई, उनकी ताज़ा खेप

नए वर्ष के बहाने पारिवारिक संबंधों की टूटन और बाज़ारवाद के आकर्षण पर भी दोहाकार ने ख़ूब निशाना साधा है-

बटुए का मुँह है खुला, नया साल है यार / घर में बहनें लग रहीं, त्योहारों पर भार

दोहाकार ने प्रकृति का मानवीकरण कर पर्यावरण के प्रति चिंता जाहिर करते हुए मनुष्य के लालच पर करारी चोट की है। जंगल के दर्द को भी वाणी दी गई है। इन दोहों में हरसिंगार, पीपल, नीम, बरगद, आम, बैर, सागवान, सेमल, पलाश, इमली, मेंहँदी आदि पेड़ों के अवदान को रेखांकित किया गया है। जब तक पेड़ों की दुनिया है तब तक हमारी दुनिया भी है। पेड़ नहीं तो हम भी नहीं। पेड़ों को काटकर हमने अपना कल बिगाड़ लिया है:-

कटे ठूँठ की अनकही, टकरा रही दहाड़ / मेरी कोख उजाड़ कर, कल को बिगाड़

इस सदी में पारिवारिक और सामाजिक ताना-बाना लगातार छीज रहा है। संयुक्त परिवार एकल परिवार में बदल रहे हैं। खून के रिश्तों में भी अब पहले जैसी ऊष्मा नहीं रही। उनके बीच स्वार्थ और लालच की दीवारें खड़ी हो गई हैं। भाई-भाई, भाई-बहन, माँ-बेटे, पिता-पुत्र जैसे खून के रिश्ते निर्जीव से हो गए हैं। इस विघटन को अनुज जी ने प्रभावी ढंग से व्यक्त किया है। बँटवारे के बाद अपना ही पुत्र पड़ोसी हो जाता है। इस सत्य को अनुज जी ने बहुत ही कुशलता से इस दोहे में अंकित किया है-

पुत्र पड़ोसी हो गया, बँटा सहन घर-बार / नई इबारत रक्त की, आज बनी दीवार

टूटे रिश्ते नदी के दो किनारों की तरह हो जाते हैं जो कभी नहीं जुड़ते। दोहा देखें -

भग्न शिवालय में कभी, नहीं चढ़े जल-फूल / टूटे रिश्ते बन गए, नदिया के दो कूल

इन दोहों में लोकजीवन में प्रचलित शब्दों को उदारता पूर्वक स्थान दिया है। उर्दू, संस्कृत हो या अंग्रेजी के शब्द, किसी भी शब्द से परहेज़ नहीं किया गया है। शब्द तत्सम, तद्भव, देशज, ग्रामीण, शहरी या विदेशी हो, उसे दोहे की माँग पर ले लिया गया है। दोहों में लाइटिंग, आटोमेटिक लाक, दीद, आबे ज़मज़म, दस्तार, तीतर-फाँद, भोथरी, छुट्टे, साठोत्तर आदि शब्दों का सटीक प्रयोग किया गया है। कुछ ध्वन्यात्मक शब्दों का भी दोहों में उपयोग किया गया है जैसे टप-टप टाप, खट-खट खट-खट आदि। संदर्भ के अनुसार दोहों में अयोध्या, भरूच, श्रीनगर,बैतूल आदि नगरों के नामों के साथ आसाराम, दगड़ू, उमर खय्याम, अल्ला रक्खा, शिव शर्मा, अरशद, बलराम, रामचंद्र, रहमान, गिरधर, सलीम, होरी आदि व्यक्तिवाचक संज्ञाओं का भी प्रयोग किया है।

कुछ मुहावरों को भी दोहों में पिरोया गया है। मसलन गाल बजाना, हाथों के तोते उड़ना, रेवड़ी बाँटना, अंधे हाथ बटेर आदि। इनके कारण दोहों में एक विशेष आभा उत्पन्न हो गई है। वे लोकजीवन के और करीब आ गए हैं।

ज़मीन से जुड़े ये दोहे लोकजीवन के अनेकानेक सजीव चित्र खींचते हैं। संग्रह का आवरण नयनाभिराम है। किताब की कीमत भी अपेक्षाकृत कम है। इसे आसानी से खरीदकर पढ़ा जा सकता है। कुँअर उदयसिंह अनुज जी इन दोहों में समकालीन जीवन यथार्थ को प्रखरता से प्रकट करने में सफल रहे हैं। निश्चित ही 'मन का हरसिंगार' के दोहे सुधी पाठकों की संवेदना को ज़रूर स्पर्श करेंगे।

000

पुस्तक समीक्षा

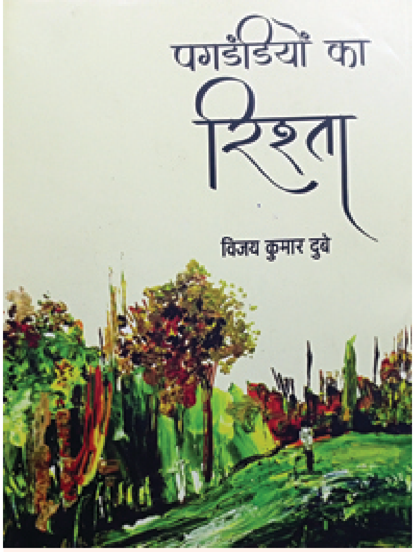

(ललित निबंध संग्रह)

पगडंडियों का रिश्ता

समीक्षक : अश्विनीकुमार दुबे

लेखक : विजय कुमार दुबे

प्रकाशक : बोधि प्रकाशन, जयपुर, राजस्थान

कवियों का गद्य बहुत सरस, कोमल और मन को छूने वाला होता है। आप महादेवी वर्मा का गद्य पढ़ लें, एक अलग बानगी मिलेगी। इधर विनोद कुमार शुक्ल का गद्य; चाहे उनकी कहानियों हों या उनके उपन्यास, मन को बहुत सुकून देते हैं। इस तरह की कोमलकांत भाषा हमारे यहाँ ललित निबंधों में इस्तेमाल होती रही है। आप हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली का खंड दस देखें, इसमें उनके निबंध संग्रहीत हैं। इनमें भाषा का अद्‌भुत लालित्य है। आगे इस भाषा शैली में लिखे जाने वाले निबंध 'ललित निबंध' कहलाने लगे। इस परंपरा को आगे बढ़ाया पं. विद्यानिवास मिश्र एवं कुबेरनाथ राय ने। अब तक तो हिन्दी में ललित निबंध लेखन ने अपनी विशिष्ट पहचान स्थापित कर ली है। बाद में श्याम सुंदर दुबे और श्री राम परिहार ने इस परंपरा को और आगे बढ़ाया। इसी क्रम में एक नाम आकर जुड़ता है, जांजगीर (छत्तीसगढ़) के श्री विजय कुमार दुबे का।

विजय कुमार दुबे कवि, कहानीकार और ललित निबंधकार के रूप में खासे चर्चित हैं। वे कुछ भी लिखें लेकिन भाषा का रंग वही है, कोमल और मन को छू लेने वाली भाषा। वे गाँव से हैं। पढ़ाई-लिखाई, गाँव के निकट एक छोटे कस्बे में हुई। अब उसी कस्बे में, जो ज़िला बन गया, वे वकालत करते हैं। मन उनका गाँव में ही बसता है। वे किसान परिवार से हैं। गाँव, खेत-खलियान, तालाब, नदी, पेड़, जंगल, पर्वत और ग्रामीण समाज के आपसी रिश्तों में उनका मन पगा हुआ है। वे कविता, कहानी और निबंध कुछ भी लिख रहे हों उसमें उनके अंचल का गाँव और ग्रामीण समाज ज़रूर होता है। मैं पिछले चालीस वर्षों से उन्हें और उनके लेखन को जानता हूँ। ललित निबंध लिखने में उनका मन रमता है। सत्तर और अस्सी के दशक में सभी राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में आपके ललित निबंध प्रकाशित होते रहे हैं। उस समय उनके कुछ संग्रह भी प्रकाशित हुए। इधर उनकी नई-पुरानी रचनाओं (ललित निबंध) का एक संग्रह प्रकाशित होकर आया है – 'पगडंडियों का रिश्ता', निश्चित रूप से यह पाठकों के मन को छू लेने वाली कृति है। इसमें दुबे जी के सत्ताईस ललित निबंध संग्रहीत है।

दुबे जी गाँधीवादी हैं। उनके लेखन में गाँधी दर्शन की झलक स्पष्ट दिखाई देती है। ग्राम स्वराज, स्वदेशी, पर्यावरण प्रेम, सादगी, मेहनत और ईमानदारी, कर्मठता - ये दुबे जी के जीवन मूल्य हैं। वे अपने लेखन में इन्हीं मूल्यों की व्याख्या करते हैं। संग्रह की पहली एवं शीर्षक रचना 'पगडंडियों का रिश्ता' एक सरस रचना है, जिसमें गाँव की पगडंडी और शहर की सड़क को लेकर मानव मन की कोमलता, संवेदना और रिश्तो की बात की गई है। एक उदाहरण देखिए –

तालाबों के निकट से चलती पनिहारिनें घड़ा भर-भर कर पानी ले जा रही हैं। रास्ते में गाय अपनी बछिया को दूध पिला रही है, कहीं नीलकंठ 'टें-टें, टें-टें' करते सामने से उड़कर निकल जाता, कितने सारे सगुन पगडंडियों के साथ गुंथे होते थे।

मार्ग में पगडंडियाँ कभी खेतों से कभी तलैया के पार से, कभी बस्ती से, कभी मैदानों से गुज़र कर जाती थी। बीच में पड़ने वाली बस्ती की गलियों में बैठे लोग अनायास पूछ लेते थे-

-"कहाँ गए थे, कब गए थे, क्या हो गया था, गाँव में फसल कैसी है, पानी कितना गिरा

अश्विनीकुमार दुबे
376-बी, सेक्टर आर,
महालक्ष्मी नगर, इंदौर- 452010 (मप्र)
मोबाइल- 9425167003
ई-मेल- ashwinikudubey@gmail.com

है"... कुछ भी पूछ लेंते - कोई कहता, "थोड़ा बैठ जाओ शरबत पी लो, ज़रा थिरा लो, फिर चल देना...."

हमें ज़रूर दर्शन देना। यह पगडंडी का रिश्ता था।

पगडंडी से जुड़े गाँव और पगडंडी से जुड़े आदमी का रिश्ता, प्रकृति, माटी और समाज से बड़ा गहरा जुड़ा रिश्ता हुआ करता था। सड़क में जा रहे आदमी को कोई दूसरा आदमी नहीं पूछता कि वह कहाँ जा रहा है। सड़क का रिश्ता शहरी रिश्ते को जन्म देता है। सड़क एकदम सपाट है, वह एकदम सीधी है, वह जब दौड़ती है तो शहर और गाँव पीछे छूटते चले जाते हैं। सड़कें न तो थकती हैं, न हाँफती हैं। सड़कें किसी पेड़ के नीचे, किसी पोखर के किनारे सुस्ताती भी नहीं। सड़क का रास्ता नदी, नाले नहीं रोकते, वह उनके ऊपर से गुज़र जाती है। सड़क के किनारे खड़े पेड़ निरपेक्ष भाव से खड़े रहते हैं। सड़क पर से तेज़ दौड़ती गाड़ियाँ गुज़रती हैं। गाड़ियों में लदे-फदे लोग अपनी रफ्तार में होते हैं।

संग्रह की दूसरी रचना है – 'टप-टप टपके महुआ'। हर ग्रामीण जन महुए को अच्छी तरह जानता है। महुए के फूलों का टपकना। ग्रामीण लोगों द्वारा उनका बीना जाना। फिर उससे शराब बनना, एक अलग वृत्तांत है। यहाँ लेखक को महुए के फूलों का टपकना ऐसा लगता है, जैसे गाँव की बिटिया की विदाई पर प्रकृति अपने आँसू बहा रही हो। लेखक कहता है-

गाँव के ये आम, वट, महुए के पेड़ और गली,सिवान एवं पगडंडियाँ सब बिटिया के आत्मीय हैं। बिटिया यहाँ खेली-कूदी है। सब के गले लगी है सबके साथ उसकी ममता बंधी है। बिटिया सबको छोड़कर ससुराल जा रही है। कदम्ब का पेड़, पोखर के घाट सब उसे समझा रहे हैं-बिटिया हमें भूलना मत, ससुराल में सुखी रहना, सबको सुख देना पर हमें भूलना मत। बिटिया तुम्हें हम नहीं भूलेंगे, तुम्हें जब भी समय मिले ज़रूर आना, अपने इन प्रिय परिजनों को कभी न भूलना। गंगा यमुना में जब तक पानी की धार हो तब तक तुम्हारा सुहाग अमर रहे।

'धातृ फलम् निर्मलम्' में लेखक शहरी भोज और ग्रामीण भोज में फर्क बताते हुए कहता है -

जीवन में बहुत सारी बनावटी चीज़ों को हमने चिपका लिया है। दातून की जगह चाक मिट्टी का पेस्ट, तालाब में तैर कर नहाने के स्थान पर घर में नल की टोंटी में बैठ कर नहाना, सिंथेटिक कपड़े, भारी नाश्ता और भोजन, चलने फिरने की एकदम मनाही, पश्चिमी शैली का रहन-सहन तमाम उपभोक्ता वस्तुओं के प्रति आकर्षण और आसक्ति। चलने-फिरने में प्रमाद, हर बात, हर काम के लिए मशीनों पर आश्रित। 'महाजनी सभ्यता' निबंध वर्षों पहले पढ़ा था। आज भी प्रेमचंद जी की बातें कितनी सटीक हैं। बाज़ार हमारे लिए ज़रूरत पैदा कर रहा है। उचक-उचक कर हमें बता रहा है कि अमुक वस्तु या उपादान के बिना हमारा जीवन व्यर्थ है। ये प्रसाधन जीवन को सुस्त और आश्रित बनाते चले जा रहे हैं। हमारे हाथ-पाँव,मनो-मस्तिष्क सब लुंज-पुंज होते चले जा रहे हैं। हम प्रकृति और प्राकृतिक जीवन से दूर होते हुए मन, आत्मा, बुद्धि तथा शरीर से खोखलेपन की ओर अग्रसर हो रहे हैं। प्रदूषण, हवा, पानी, आसमान और मिट्टी तक ही सीमित नहीं है। वह हमारे घर, परिवार, रिश्ते, व्यवहार, समाज और संस्कारों तक में घुस गया है। सबको दूषित और जड़ बना रहा है यह। सब कुछ एकदम भद्दा, कुरुप और कड़वा हो गया है। सामाजिक-सांस्कृतिक पर्वों को बनावटी व्यवस्था ने आक्रांत कर असहज बना दिया है। गाँवों में पहले जहाँ पाटों में बैठकर, पत्तल में हज़ारों लोग पंगत जीमते थे। थोड़े से व्यंजन, थोड़े से पकवान ढेर सारे प्रेम और आग्रह के साथ परोसे जाते थे। इसमें स्नेह का इतना स्नेह होता था कि घी, तेल की कमी कभी महसूस न होती थी। आज का आयोजन तेल,घी और व्यंजनों से सराबोर ज़रूर है लेकिन स्नेह और आग्रह के हाथ खुरदरे और भोथरे हैं। अपनी प्लेट उठाइए और जो जी चाहे प्लेट में निकाल कर खड़े-खड़े खा लीजिए। कागज के रुमाल से मुँह पोंछिए तथा गोली बनाकर किसी कोने में फेंक दीजिए। बिजली की चकाचौंध और स्टीरियों की तेज़ आवाज़ के बीच आपकी उपस्थिति का महत्त्व सिर्फ इतना ही है कि आप आयोजक की संपन्नता, प्रतिष्ठा, गरिमा और आयोजन के साक्षी हैं। चिकने कागज़ों पर छपे निमंत्रण पत्र में लिखी हुई यह बात, "हमारे कार्यक्रम की गरिमा बढ़ाएँ" कितनी खोखली लगती है। लिखा जाना चाहिए "हमारे कार्यक्रम में उपस्थित हो, हमारी गरिमा और प्रभुता के साक्षी बनें।"

मैंने पहले ही कहा कि विजय कुमार दुबे की भाषा ललित निबंधों के अनुकूल है, मन को छू लेने वाली। वे कविताएँ लिखते हैं और कविताएँ ख़ूब पढ़ते भी हैं। रामचरित मानस, कविता वली, दोहा वली और विनय पत्रिका तो उन्होंने कई-कई बार पढ़ी हैं। आधुनिक काल के कवियों में बच्चन, दिनकर, नागार्जुन, रवीन्द्र भ्रमर, वीरेंद्र मिश्र, नीरज और दिनेश शुक्ल तक आपने बहुत से कवियों को पढ़ा है। आपकी रचनाओं में जगह-जगह उनकी काव्य पंक्तियों का समुचित उपयोग देखते बनता है। इस प्रकार आपके निबंध बहुत प्रभावशाली बन पड़े हैं।

यों तो संग्रह के सभी निबंध रोचक, ज्ञानवर्धक और सरस हैं। 'नदिया धीरे वहो', 'अमृतघट', 'राम इतिहास नहीं है', 'इनको कभी न मारिए' और 'नाता एक राम से' विशेष उल्लेखनीय रचनाएँ हैं।

ऐसे समय में जब राजनीति की चर्चा ही प्रमुख हो गई है। हम अपने सांस्कृति मूल्यों से कटते चले जा रहे हैं। भौतिकवाद अपने चरम पर है, तब 'पगडंडियों का रिश्ता' पुस्तक से गुज़रना तपती दोपहर में शीतल बयार का अनुभव करने जैसा है। साहित्य में इन दिनों ललित निबंध कम लिखे जा रहे हैं। वे पत्रिकाएँ ही नहीं रहीं, जो ललित निबंधों को वरीयता पूर्वक छापती थीं। ऐसे में श्री विजय कुमार दुबे का यह ललित निबंध संग्रह मन को छू लेने वाली कृति है, जिसे पढ़ते हुए आप भाषा का सौंदर्य, शैली की मिठास और रस सिद्ध रचनाओं के पढ़ने का आनंद ले सकते हैं।

000

पुस्तक समीक्षा

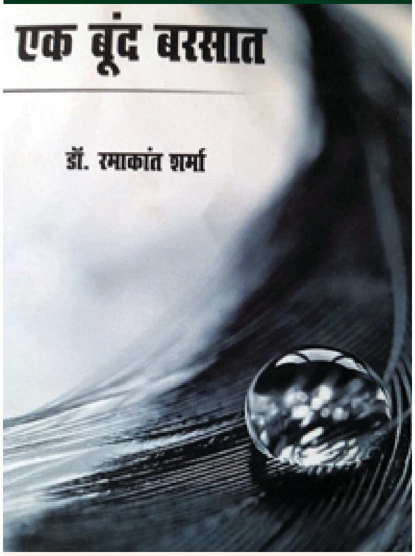

(उपन्यास)

एक बूँद बरसात

समीक्षक : डॉ. सुशील कृष्ण गोरे

लेखक : डॉ. रमाकांत शर्मा

प्रकाशक : इंडिया नेटबुक्स, नोएडा

एक बूँद बरसात डॉ. रमाकांत शर्मा का तीसरा उपन्यास है जिसमें निश्चित रूप से उनका कथाक्रम एक विकसित फलक हासिल करने में कामयाब हुआ है। उन्होंने किशोरमन के कोमल भावना संसार को उसकी सभी एकांत अनुभूतियों के साथ बहुत शिद्दत से चित्रित किया है। मूलत: यह तरुणाई की प्रेमकथा है।

प्रखर उपन्यास का केंद्रीय पात्र है और उसके अंदर किशोरवय में प्रेम की पहली कोंपल के प्रस्फुटन को उन्होंने अपना मुख्य कथासूत्र बनाया है। एक प्रकार से यह कथा प्रेम को महसूस करने और उसे पाने की चिरंतन अभिलाषा का एक आख्यान है। उपन्यास पढ़ते हुए बार-बार यह अहसास उभरता रहता है कि प्रेम के उपजने पर जो उजास होता है, और वह किस प्रकार जीवन को आशाओं के आलोक से भर देता है, देखते-देखते वह कितना संजीदा और सघन हो जाता है।

डॉ. शर्मा ने कथावस्तु को जिस मोहक तरीके से विकसित किया है उसे देखकर आपको कहीं भी ऐसा महसूस ही नहीं होगा कि आप इस तरह की अनेक कथाएँ पहले पढ़ चुके हैं। कथ्य, भाषा, शिल्प में एक नया टटकापन हर स्तर पर दिखाई देता है। कई मायनों में यह उपन्यास उनकी परिपक्व रचनाशीलता से उपजी एक बेहद उल्लेखनीय कृति साबित होती है।

प्रेम के बारे में एक आमफहम धारणा है कि उसे किए या जिए बिना लिखा जाना शायद संभव नहीं है। यह मनुष्य की सबसे मौलिक भावना भी है। यह भी कहा जा सकता है कि यह सभी मानवीय अनुभूतियों की एकमात्र स्रोतस्विनी है। उपन्यास पढ़ते हुए बार-बार यह बात कौंधती रहती है कि प्रेम ही जीवन की सबसे आदिम कथा है। यह सभी सीमाओं और विभाजनों से परे आजीवन मनुष्य को परिव्याप्त किए रहता है। इस प्रकार वह अपने स्वभाव से ही आत्मकथात्मक है।

उपन्यास की शुरूआत में कुछ ऐसा ही हुआ है कि अचानक एक रोज़ टहलने के बाद थककर पार्क की बेंच पर बैठे-बैठे पैंसठ वर्षीय प्रखर को अचानक करीब बावन-तिरपन साल पहले की एक घटना याद आ जाती है। देखा जाए तो पार्क में बैठे प्रखर को ज़रूर किसी घटना की याद नहीं आई होगी बल्कि अचानक किसी चेहरे की याद आई होगी। वह चेहरा उसे खींचकर एक फ्लैशबैक में ले जाता है जहाँ कभी सातवीं कक्षा का किशोरवय प्रखर पहली नज़र में उस चेहरे के सम्मोहन में बिंध गया था। फिर कथा बड़े सिलसिले के साथ आगे बढ़ती है। वाकई डॉ. शर्मा का लेखन कौशल तब दिखायी देती है जब वे इस पृष्ठभूमि में बड़े करीने से कथाक्रम को बड़ी तफसील के साथ उसके सब प्रसंगों से जोड़ते हुए विस्तार देते हैं। कब कहानी शुरू हो गई, कहाँ तक आगे बढ़ गई और किन-किन राह और मोड़ों से गुज़रती हुई किस मुकाम तक पहुँच जाती है, पाठक को अंत तक पता ही नहीं चल पाता। यह उपलब्धि किसी उपन्यास के लिए उसका सबसे सशक्त पक्ष माना जाता है जब वह पाठक को अपने भीतर के संसार में निमग्न कर दे।

स्मृतियाँ उसे पीछे ले जाती हैं। तब प्रखर की बड़ी बहन की शादी में बारात बुलंदशहर से मेरठ आई हुई थी। उसी बारात में पाँचवी में पढ़ने वाली प्रभा भी आई थी जो दूल्हे के मामा-मामी की बेटी थी। प्रखर की प्रभा से पहली मुलाकात जनवासे में होती है। देखा जाए तो उस समय दोनों की कोई उम्र ही नहीं हुई थी, शायद उनको यह भी समझ नहीं होगी कि रस्मो-रिवाज़ या रिश्ते क्या होते हैं। उस वय में उनसे इसकी उम्मीद भी नहीं की जा सकती जब उनके कोमल मन और हृदय के निविड़ प्रांतर में निजपन की कुछ इच्छाएँ उमग रही होंगी। कुछ चाहतें जन्म ले रही होंगी जो किसी के करीब आने, उसे देखने, उससे बातें करने, उसके भीतर अपने लिए प्यार की जगह बनाने की स्वप्निल कामनाओं को जगा रही होंगी।

डॉ. सुशील कृष्ण गोरे
मोबाइल- 8005488449
ईमेल- sushil.krishna24@gmail.com

डॉ. शर्मा ने इस उपन्यास में तरुण प्रेम के अहसास को बहुत शिद्दत से उभारा है जो प्रखर और प्रभा के एक-दूसरे के करीब आते जाने और उनसे जुड़े सभी प्रसंगों में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। यह प्रखर के भीतर जन्मी उत्सुकताओं के माध्यम से बहुत सुंदर रूप में व्यक्त होता है। डॉ. शर्मा की लेखनी ने इस क्रम में बड़ी सावधानी से प्रखर के तेजी से बदलते मनोभावों को उसकी सब गोपन और मनोरम छवियों में समग्रता के साथ चित्रित किया है। प्रभा का मन अभी इस रिश्ते में अनुराग तक नहीं पहुँचा है। वह इसे सहज आत्मीयता से लेती है। उसे भी प्रखर से नज़दीकी अच्छी लगती है लेकिन शायद अभी दोस्ती की हद तक। वह तुरंत उसमें डूबती नहीं है। यहाँ उपन्यासकार उसे एक स्त्री चेतना की प्रारंभिक मन:स्थितियों के साथ जोड़कर बहुत संतुलित दृष्टिकोण से अपने रचनाकर्म का प्रमाण प्रस्तुत करता है।

उपन्यास में मुख्य धारा की कैशोर्य की प्रेमकथा के समानांतर दो अन्य प्रेम कथाएँ भी चलती रही हैं। डॉ. शर्मा ने इन सब कहानियों की बुनावट और विस्तार को जिस ख़ूबसूरती के साथ सूत्रबद्ध किया है वह वाकई काबिले-तारीफ़ है और निश्चित रूप से उनकी औपन्यासिक प्रतिभा को भी रेखांकित करती है। चाहे वह मौली के जीवन में घट रही प्रेम संवेदना का कथात्मक चित्रण हो या नीरा के एकनिष्ठ प्रेम का प्रतीक्षा में डूबा एकांत हो, डॉ. शर्मा ने अपने पात्रों को बेहद संजीदा प्रेम छवियों में प्रस्तुत किया है। वे सब के सब बहुत साधारण जीवन के साधारण प्रेम की समस्त निश्छलताओं एवं विह्वलताओं के आत्मीय प्रसंगों में विकसित होते हुए जीवंत चरित्रों का निर्माण करते हैं।

एक विशेषता के लिए डॉ. शर्मा को श्रेय दिया जा सकता है कि उनके पास प्रेम करते हृदय की हर धड़कन को न केवल समझने की क्षमता मौजूद है बल्कि वे उसकी सब नि:शब्द आंतरिक कामनाओं को पूरी कलात्मकता के साथ उकेरेने में भी सिद्धहस्त हैं। अपनी इस ख़ूबी के साथ उन्होंने अपने पुरुष और स्त्री दोनों चरित्रों के भीतर चलने वाले सभी मनोभावों को उनकी तीव्रता के सभी स्तरों में पकड़ा है। उनके पात्र अत्यंत स्वाभाविक रूप से अपने प्रसंगों एवं स्थितियों में अपनी भूमिकाओं में बख़ूबी विन्यस्त दिखाई देते हैं। उनके संवाद एवं प्रतिक्रियाएँ बिल्कुल उनके चरित्रगत स्वभाव के अनुकूल बैठती हैं। किसी कथा या उपन्यास में इस तरह की संगति उसे विश्वसनीय एवं प्रामाणिक बनाती है। लेकिन इसके लिए कथाकार को ख़ुद पहले संवेदनात्मक धरातल पर बहुत सांद्र, गहन और मानवीय होने की अनिवार्य अपेक्षा पूरी करनी होती है।

एक बूँद बरसात आज के परिदृश्य में बहुत पठनीय उपन्यास है क्योंकि आज के जीवनानुभवों से प्रेम लगातार कटता जा रहा है। अपने सहजात सौंदर्य के साथ उसकी उपस्थिति समकालीन परिदृश्य में लगातार विरल होती जा रही है। उसकी जगह तमाम प्रकार की भौतिकताओं के जंजाल में कहीं खोती जा रही है। उसके सभी एकांतों और अभिसारों पर अब इंटरनेट की आभासी छायाओं का कब्जा होता जा रहा है। इस समय प्रखर को ऐसी कोई बारात नहीं मिलेगी कि जिसमें वह अपनी प्रभा को पहली बार करीब से देख सके, उसकी ऊष्मा में अनुरक्त हो सके और फिर उससे ताउम्र भूल न पाए। अब वह मौली भी नहीं जो दूर के रिश्ते में होने के बावजूद प्रखर को उसके प्यार से मिलाने में कोई कसर न छोड़ती हो भले ही ख़ुद उसकी चाहतों वाला प्यार उसे आख़िर तक न मिल सका हो। उपन्यास में दर्ज़ यह स्थानीयता और उसका पूरा परिवेश एक जबरदस्त नॉस्टैलजिया पैदा करता है जो उम्रदराज पाठकों को मोह लेता है।

इस उपन्यास में प्यार पर पूरा एक अध्याय नीरा का भी है जो मध्यांतर के बाद उस समय खुलता है जब प्रखर की दुनिया में उसके अपने प्यार का उत्तरार्द्ध शुरू हो जाता है। प्रभा के सामने उसका अपना एक नया संसार सिरजने लगता है। उसके रिश्ते की बात पक्की हो जाती है। उसके मन में नए जीवन के सपने आकार लेने लगते हैं। उधर प्रखर ख़ुद को अजीब कश्मकश में फँसा महसूस करता है। भावनाओं के गहरे आवर्त्त से घिरा खड़ा वह मौन वेदना सहने के अलावा कुछ नहीं कर सकता था। उसके सपने एक झटके में बिखर कर टूट गए थे जिसकी आवाज़ें उसके आलावा कोई नहीं सुन सकता था। जो बुलंदशहर कभी उसके लिए ज़िंदगी की आख़िरी मंजिल बन चुका था, वही उसकी आँखों में चुभने लगा था और वह उससे दूर भाग जाना चाहता था। वह वापस मेरठ अपने घर आता है, दिल की वीरानी, तनहाई का बोझ, टीसती यादों का सैलाब लिए। शायद, वक्त कुछ नया करने वाला था क्योंकि उसे हर दिल की दास्ताँ मालूम है। शायद नीरा के लंबे इंतजार में कहीं प्रखर की ज़िंदगी का नया मोड़ छिपा था।

डॉ. शर्मा ने टूटे हुए सिसकते प्रेम को वियोग की भावशून्य और विषण्ण कर देने वाली गहरी वेदना के पार झिलमिलाती नई आशाओं के क्षितिज की ओर ले जाते हुए एक बड़ी सार्थक बात मौली के जरिए कहलवाई है – "जब हम ख़ुद को दु:ख-दर्द भरे अँधेरे कमरे में बंद करके बैठ जाते हैं तो जो खुशियाँ बाहर खड़ी इंतज़ार कर रही होती हैं, वे हम तक नहीं पहुँच पातीं? सच कहूँ मैंने भी ख़ुद को उस अँधेरे बंद कमरे में कैद कर लिया था। उससे बाहर निकली तभी उन बेपनाह खुशियों तक पहुँच पायी जो आज मेरी झोली में भरी हैं। समझ रहा है ना? पता नहीं अब कब मिलना हो भाई, पर हम जब भी मिलेंगे, मैं तेरे चेहरे पर दर्द की शिकन नहीं, नई ज़िंदगी की चमक देखना चाहूँगी।"

इस कथाकृति की सबसे बड़ी उपलब्धि है कि वह एक अकुंठ प्रेम की कथा कहता है जिसमें कहीं आसक्ति या सतही आकर्षण नहीं है। मांसल स्थूलताएँ नहीं हैं, अनावश्यक मोहग्रस्तता नहीं है। वह ज़्यादातर मौन और अभिराम है। उसमें भीनी स्निग्धता के साथ प्रणय और प्रतीक्षा है। यह विशेषता उपन्यास को नए प्रयोगों के खाने में भले न डाले लेकिन उसे सामान्य मानवीय आकांक्षाओं को उभारने वाले एक प्रभावशाली उपन्यास के बतौर अवश्य स्थापित करती है।

000

पुस्तक समीक्षा

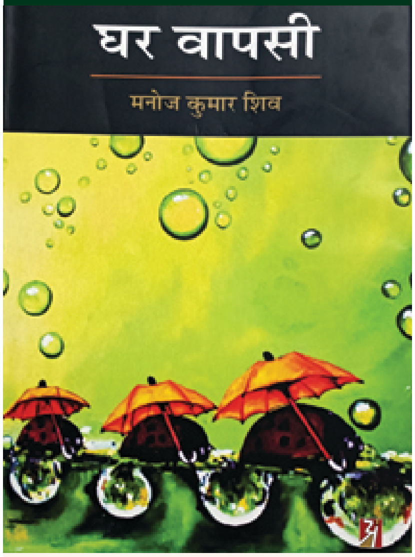

(कहानी संग्रह)

घर वापसी

समीक्षक : रमेश शर्मा

लेखक : मनोज कुमार शिव

प्रकाशक : अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद

रमेश शर्मा
92 श्रीकुंज, बोईरदादर, रायगढ़
(छत्तीसगढ़) पिन 496001
मोबाइल- 7722975017

घर वापसी युवा कथाकार मनोज कुमार शिव जी का पहला कहानी संग्रह है। इस संग्रह में ग्यारह कहानियाँ हैं। इन ग्यारह कहानियों को पढ़ने के बाद यह तय कर पाने में कोई संशय नहीं रह जाता कि मनोज ग्रामीण अंचल की घटनाओं को अपनी कहानियों में पिरोने वाले कथाकार हैं। उनके रचना कर्म का भूगोल मूलत: ग्रामीण अंचल की घटनाओं से ही आकार पाता है।

आज के उत्तर आधुनिक समय में ग्रामीण अंचल की घटनाओं को कहानियों में उतारना दुरूह तो नहीं है पर सरल भी नहीं है। इसके लिए कथाकार को ग्रामीण अंचल के जीवन का पर्याप्त अनुभव होना चाहिए और यह अनुभव केवल सुनी सुनाई बातों के माध्यम से अर्जित किया हुआ न होकर जीवंत होना चाहिए। मनोज की कहानियों को पढ़ने के बाद यह कहा जा सकता है कि उनके पास एक नागरिक और उस नागरिक के भीतर जन्में लेखक के रूप में ग्रामीण जीवन का पर्याप्त अनुभव है। इन कहानियों को पढ़ने के बाद पाठक को नदी, नाले, पहाड़, पहाड़ की गोद में बसे गाँव, सेब के पेड़ के बगीचे और वहाँ की आबोहवा के सौंदर्य का एहसास यूँ होने लगता है कि जैसे उनके बिना दुनिया का सौंदर्य अधूरा है। कहानियों को पढ़ते हुए एक बात और शिद्दत से महसूस होती है कि मनोज कुमार शिव जी ने अपनी कहानियों की रचना में प्रकृति के चित्रण का बखूबी इस्तेमाल किया है। इसी चित्रण के माध्यम से वे कहानियों को आगे बढ़ाते हैं और एक परिवेश की रचना करते हैं। एक ऐसा परिवेश जहाँ प्रकृति है, उससे जुड़ा लोक है और लोक के दुख दर्द भी हैं।

कहानियों को पढ़ते हुए कई बार ऐसा भी लगता है कि मनोज कुमार शिव मिथकों पर आस्था रखने वाले कथाकार हैं। पर यह आस्था उनकी ख़ुद की मर्ज़ी से चल कर आई हो ऐसा भी नहीं है। दरअसल लोक में इस तरह की आस्थाएँ आज भी जीवित हैं और उन लोक आस्थाओं से छेड़छाड़ किए बिना उन्होंने उन्हें उसी रूप में अपनी कहानियों में आने दिया है। यह एक कथाकार की ईमानदारी भी है कि लोक आस्थाओं, मान्यताओं की स्वाभाविकता को अपनी कहानियों में वह उसी रूप में आने दे।

संग्रह की कहानी इंसाफ एक ऐसी ही कहानी है जो इन लोक आस्थाओं को प्रगाढ़ करती है। प्रकृति जब इंसाफ करती है तब फिर किसी की नहीं चलती।

इंसाफ कहानी हिमाचल प्रदेश के मंडी जिले की एक सत्य घटना पर बुनी गई है। इस कहानी में जंगलों की अवैध कटाई को वनरक्षक होशियार सिंह रोकने की कोशिश करता है और अपराधी तत्वों द्वारा उसकी जान ले ली जाती है। पर्यटन को बढ़ावा देने के नाम पर प्रकृति की गोद में बसे गाँव की शांति को जिस तरह छीनने की कोशिश होती है और जिस तरह पर्यटन के नाम पर वनों की अवैध कटाई के दृश्य इस कहानी में आते हैं उन सभी दृश्यों में आज के समय की विभीषिका नज़र आती है। पशु पक्षी, पेड़ पौधों से प्रेम करने वाला होशियार सिंह उन विभीषिकाओं से लोहा लेता है और एक दिन जंगल में उसकी लाश टँगी हुई मिलती है। कहानी यह सन्देश भी देती है कि आज सरकारों और पूँजीवादी ताक़तों का गठजोड़ गुंडे और अपराधियों की भूमिका में है और आम इंसान को ईमानदारी और सच्चाई की खातिर उससे जूझने के अपने खतरे हैं। इस सन्देश के बावजूद यह कहानी आम आदमी में इन ख़तरों से जूझने की एक हिम्मत देती है जिसका उल्लेख यहाँ ज़रूरी है।

शहरीकरण आज की ज़रूरत है या नहीं यह तो हमारी अपनी सोच और नज़रिए पर निर्भर है पर आज जिस तरह शहरीकरण को पूँजीवादी ताक़तें मिलकर बढ़ावा दे रही हैं उससे आज की नई पीढ़ी भी शहरीकरण की ओर आकर्षित हो रही है जो कि एक चिंता का विषय है। शहरीकरण के चलते गाँव ख़त्म हो रहे हैं। प्रकृति नष्ट हो रही है। गाँव में परंपरागत आजीविका के साधन ख़त्म हो रहे हैं और आम लोगों का विस्थापन हो रहा है। शीर्षक कहानी 'घर वापसी' इसी चिंता को आगे बढाती है। यह कहानी एक ऐसे किसान की कहानी है जो सेब उत्पादन से अपना जीवन यापन अच्छी तरह कर रहा है। इस आजीविका से उसे वो सारी खुशियाँ प्राप्त हैं जो एक साधारण आदमी के खुशहाल जीवन के लिए पर्याप्त हैं। परंतु उसका बेटा इस गाँव को नहीं बल्कि शहर को प्राथमिकता देता है क्योंकि उसके मन में शहरी जीवन की चकाचौंध समाने लगी है और वह वहीं रहने चला गया है। इसे संयोग ही कहा जाए कि कहानी में परिस्थितियाँ बदलती हैं और कोरोना वायरस से उत्पन्न बीमारी के भय से उसका बेटा घर वापस लौट आता है। कहानी में पेड़ों को काटे जाने एवं नशीले पदार्थों की खेती की ओर भी कथाकार ने इशारा करते हुए उससे उत्पन्न परेशानियों की ओर इशारा किया है। एक तरफ शहर की ओर आकर्षित होकर गए किसान के युवा पुत्र की कथा इस कहानी में है वहीं परदेश से रोज़गार की खोज में गाँव की ओर आए युवकों की दास्तान भी इस कहानी का हिस्सा है। कथाकार ने दोनों घटनाओं का समानांतर रूप से ज़िक्र करते हुए गाँव का जीवन और वहाँ के रोज़गार की पैरोकारिता करते हुए घर वापसी कहानी के माध्यम से गाँव और वहाँ की प्रकृति को बचाने की मंशा ज़ाहिर की है जो पाठकों के लिए एक अच्छा सन्देश है।

संग्रह में एक अन्य कहानी है 'बँटवारा'। इस कहानी के माध्यम से कथाकार ने मानवीय दर्द को जिस तरह बयाँ किया है वह पाठकों का ध्यान खींचता है। स्थायी रूप से न सही पर अगर कहानी मनुष्य की संवेदना को आंशिक रूप में भी जगाने का काम करती है तो कहानी अपने उद्देश्य की ओर अग्रसर कही जा सकती है। 'बँटवारा' कहानी अत्यंत मार्मिक है और अपने उद्देश्य की ओर बढ़ती हुई गतिशील होने का आभास कराती है। एक छोटी बच्ची और उसकी दादी के माध्यम से मानवीय पीड़ा को कथाकार ने अपनी इस कहानी में भली भाँति संप्रेषित कर अपने कथा कौशल का परिचय दिया है।

शराब आज एक ऐसी वस्तु है जिसे समाज में ख़राब नज़रिए से देखा जाता है। इसके बावजूद शराब की बिक्री सरकार की नज़र में बहुत ही जरूरी है। शराब की बिक्री से सरकारों का वित्तीय कारोबार गतिशील रहता है। सरकार को इन चीज़ों से कोई लेना-देना नहीं कि शराब के कारण ही कितने परिवार तबाही के कगार पर पहुँच जाते हैं। संग्रह की कहानी 'गुरु दक्षिणा' एक ऐसी कहानी है जो एक शराबी पिता के बच्चे की पीड़ा, उसके दु:ख दर्द की पड़ताल करती है। वो बच्चा पढ़-लिखकर कुछ करना चाहता है पर पारिवारिक परिस्थितियाँ उसे एक ट्रक पर लाकर छोड़ देती हैं जहाँ वह स्कूल आते-जाते बच्चों को देखकर बैचैन रहता है। इस कहानी को पढ़ते हुए एक चलती हुई ट्रक में करतार और जग्गी के साथ पाठकों को भी ऐसा महसूस होगा जैसे वे भी उस ट्रक की सवारी कर रहे हों और उस बच्चे के दु:ख-दर्द में शामिल हों। करतार कहानी की शुरुआत में किंचित निष्ठुर प्रतीत होता है परंतु कहानी का अंत पाठकों को चौंकाता है।

संग्रह की एक अन्य कहानी 'रिटायरमेंट' जहाँ एक ओर पाठकों के मन में संवेदना जगाती है वहीं दूसरी तरफ मनुष्य की भीतरी दुनियाँ में सुप्त रूप में पड़े हुए लोभ लालच में डूबे भूखे मानव मन का भी दर्शन कराती है। कहानी का पात्र नानकू सभी को खुश रखने का भरसक प्रयास करता है परंतु उसके बेटे, नाते-रिश्तेदार, दोस्त, सबकी नज़र उसके पास संग्रहित धनराशि पर होती है और धन प्राप्त होते ही सभी उसके जीवन से दूर चले जाते हैं। यह कहानी मनुष्य के भीतर अन्तर्निहित अच्छे और बुरे गुणों का द्वंद्व प्रस्तुत करती है और उसे चुनने का एक खुला विकल्प देती है। कहानी उपदेशात्मक न होकर कुछ ऐसी स्थितियाँ सामने प्रस्तुत करे जहाँ से मानवीय मन के भीतर द्वंद्व पैदा हो तो वहाँ से कहानी की दिशा तय होती है। इस लिहाज से यह एक ठीक ठाक कहानी लगती है।

संग्रह में विस्थापन के दर्द को बयाँ करती एक अन्य मार्मिक कहानी है, 'जलेबी मेले की'। आज विकास के नाम पर जिस तरह गाँव, नदियाँ, पहाड़ और पूरी प्रकृति को नष्ट करने की सरकारी मुहीम चल पड़ी है, उस मुहीम की विभीषिका को यह कहानी सामने रखती है। विकास के नाम पर कई मील फैली समतल घाटी का उपयोग, उसी विकास के नाम पर नदी पर बाँध बनाने की प्रक्रिया में वहाँ आस पास रह रहे लोगों के विस्थापन का दर्द अक्सर अनदेखा, अनकहा रह जाता है। उन लोगों की सुध न सरकारें लेती हैं न देश दुनियाँ का समाज ! उस अनकहे अनदेखे दर्द की टीस है यह कहानी। कहानी में आई दादी जो कि अपने विस्थापन के दर्द को भूल ही नहीं पाती। पोता-दादी के प्रेम को यह कहानी बहुत मार्मिकता से सामने रखती है।

देखा जाए तो ग्रामीण परिवेश, प्रकृति और मानवीय संवेदना की पैरोकारिता करने वाले कथाकार मनोज की सभी कहानियाँ पाठकों का ध्यान खींचती हैं। ख़ासकर प्रकृति को लेकर कहानियों में जो चित्रण हैं वे आँखों के सामने जीवंत दृश्य रचकर पाठकीय मन को आनंदित करते हैं। मनोज की कहानियों में भाषा और शिल्प के स्तर पर ज़रूर एक किस्म की सहजता है जिसके कारण कई जगह कहानी की घटनाएँ विवरण के तौर पर आगे बढ़ती हैं और भाषायी कलात्मकता से दूर होती हुई प्रतीत होती हैं। इस लिहाज से कोई अगर उनके कथा शिल्प का आकलन करे तो उन्हें अपने भाषायी कौशल पर आगे अभी और खरा उतरना होगा। बहरहाल इस नए संग्रह की कहानियों को पढ़ते हुए पाठक कुछ नए अनुभवों को अर्जित करेंगे जो जीवन मूल्यों के बहुत करीब कहे जा सकते हैं।

000

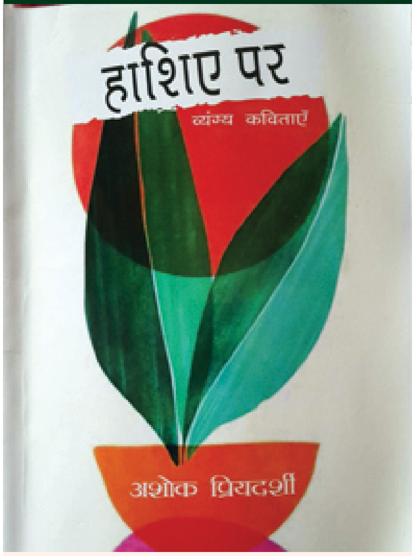

(कविता संग्रह)

सिलवटें

समीक्षक : नीरज नीर

लेखक : अशोक प्रियदर्शी

प्रकाशक : नोशन प्रेस

जो व्यक्ति विगत साठ सालों से लिख रहा हो, उसकी पहली कविता की किताब ८३ वर्ष की उम्र में आए तो वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यह अविश्वसनीय ही लगता है। अभी हाल ही में फेसबुक पर एक व्यक्ति की पोस्ट देखी थी, जो अपने ६० वें जन्म दिवस के अवसर पर अपनी प्रकाशित ६१ वीं किताब की बात बता रहे थे। आजकल जिनकी चार कविताएँ भी कहीं नहीं छपी हो, वे भी जल्दी से जल्दी एक संग्रह ले आना चाहते हैं। ऐसे में एक वरिष्ठ कवि के धैर्य एवं प्रकाशन के प्रति ऐसी उदासीनता की दूसरी मिसाल नहीं मिलती।

अशोक प्रियदर्शी एक सुपरिचित वरिष्ठ कहानीकार, आलोचक एवं कवि रहे हैं। इनकी कविताओं की पहली किताब "हाशिये पर" हाल ही में प्रकाशित होकर आई है। किताब का नाम हाशिये पर होने की भी अपनी कहानी है। कभी धर्मयुग पत्रिका में उनकी व्यंग्य कविताओं का कॉलम प्रकाशित हुआ करता था, जिसका नाम था हाशिये पर। उसी कॉलम के नाम पर इस संग्रह का नाम रखा गया है। स्वभावत: इस संग्रह में वैसी कई कविताएँ हैं, जो धर्मयुग के उस कॉलम में प्रकाशित हुई थी। संग्रह में कुल इक्यावन कविताएँ संकलित हैं। ये कविताएँ व्यंग्य कविताएँ हैं।

व्यंग्य कविताओं की खूबी होती है कि ये बिना प्रत्यक्ष आघात किये, चुटीले अंदाज़ में सामाजिक एवं राजनैतिक विद्रूपताओं पर करारा चोट करती है एवं पाठकों के अंतस्तल को झकझोरती है। लेकिन आज व्यंग्य के नाम पर मंचीय कवि कविताओं के बदले सीधे सीधे चुटकुले पढ़ रहे हैं, फूहड़ता परोस रहे हैं, जो बहुत निराशाजनक परिदृश्य उपस्थित करता है। गद्य में तो व्यंग्य अभी भी पढ़ने को मिल जाता है लेकिन व्यंग्य-कविता अभी दुर्लभ हो गई है। ऐसे में अशोक प्रियदर्शी जी की ये कविताएँ निश्चय ही प्रशंसनीय एवं पठनीय है।

अशोक प्रियदर्शी जी के इस इस संकलन में शामिल हरेक कविता अपने चुलबुले अंदाज़ ए बयान के माध्यम से, अपनी वक्रोक्तियों से घाव करे गंभीर वाली बात को चरितार्थ करती है। समाज में व्याप्त सामयिक विसंगतियों एवं विडंबनाओं की ओर संकलन की कविताएँ जिस अंदाज़ में इशारा करती है, उससे एक तरफ तो हँसी भी आती है और दूसरी तरफ दिल में एक कचोट भी उठती है। व्यंग्य कविताओं की यही तो विशेषता भी होती है। इनकी व्यंग्य कविताओं का चुटीला अंदाज़ सहज ही पाठकों तक कविता की अंतर्वस्तु को प्रेषित कर देता है एवं मर्म को छूता है। संग्रह की कविताओं में जहाँ एक ओर राजनैतिक व्यंग्य हैं, वहीं दूसरी ओर समाज के दुराग्रहों एवं विचित्र मान्यताओं की भी ख़बर ली गई है।

अशोक प्रियदर्शी जी की काव्य-चेतना प्रगति और परंपरा के बीच एक सधा हुआ संतुलन बना कर चलती है। हजारों सालों की अनुभव जनित एवं सिद्ध परंपराओं को प्रगतिशीलता के नाम पर हठात् त्याज्य बना देना उनकी चिंतन पद्धति का उद्देश्य नहीं है लेकिन रूढ़ एवं प्रतिगामी विचारों एवं लोकाचारों पर करारी चोट करते भी वे दिखते हैं। वे जितनी सहजता से राजनीतिक चुटकी लेते हैं, उतनी ही सहजता से एवं चुटीले अंदाज़ में प्यार मुहब्बत की बातें भी कर लेते हैं।

नीरज नीर
आशीर्वाद, बुद्ध विहार
पो - अशोक नगर, राँची
झारखण्ड - 834 002
मोबाइल- 8789263238

अपनी एक छोटी सी कविता "सम्मेलन" में कवि कहते हैं :

"जो सर्वदलीय राजनीतिक सम्मेलन होना था, हुआ? / क्या हुआ? हुआ .... होना क्या था !! /हुआ-हुआ"

आज भी अगर हम देखें तो राजनीति में "हुआ-हुआ" ही हो रहा है। अब तो उससे भी आगे बढ़ कर संसद में भी हुआ-हुआ होने लगा है। जिस उद्देश्य से संसद या विधानसभाओं में जनता के प्रतिनिधि चुन कर जाते हैं, जनता के हित में उस उद्देश्य की पूर्ति हेतु शायद ही कोई काम करते हुए दिखते हैं। अपनी कविताओं में कवि जनहित से हो रहे इस राजनीतिक खिलवाड़ पर गंभीर प्रश्न उठाते हैं।

एक दूसरी कविता "सहयोग -भावना " देखिए- शिक्षक 'अशेष' कविताई भी करते थे, जहाँ-तहाँ छपते थे। लिखा प्रकाशक को – / कि, संग्रह एक प्रस्तुत है, / बहुजन प्रशंसित है, / चाहें तो छाप दें / पत्र शीघ्र आप दें। / लिखा प्रकाशक ने – / कि पत्र मिला, हर्ष हुआ। / अभी कुछ ज़्यादा ही / पड़ी है पांडुलिपियाँ। / सेवा कर सकेंगे नहीं, / इसका है विषाद। / सहयोग-भावना के लिए धन्यवाद।

सहयोग भावना के लिए ऐसे धन्यवाद वाले पत्र से भला कौन रचनाकार परिचित नहीं होगा? आज जबकि रोज़ नए प्रकाशक बाज़ार में आ रहे हैं और थोक भाव से नई पुस्तकों की घोषणा हो रही है, वहीं विडम्बना यह कि प्रकाशकों का एक ही रोना है कि हिन्दी की किताबें बिक नहीं रही है। भाई किताबें बिक नहीं रही तो छाप क्यों रहे हो?

भारत में समाजवाद एक ऐसा ख़याली पुलाव है, जो स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् से ही लगातार पकाया जा रहा है। लेकिन आज तक इस पुलाव का चावल कच्चा का कच्चा ही रहा है। लेकिन समाजवाद के झुनझुने को बजाकर कई स्वघोषित समाजवादी मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री बन गए। समाजवाद शीर्षक की एक छोटी से कविता में कवि इस स्थिति का अत्यंत ही मज़ाहिया अंदाज़ में बहुत ही सही आकलन प्रस्तुत करते हुए कहते हैं- "एक आदमी ने / सड़क पर पाया एक कोड़ा / तो खुश होकर बोला- / बस, अब घुड़सवार होने में घटता है थोड़ा, / जीन, लगाम, घोड़ा ! / - हमने छू ही लिया है समाजवाद, / बस, कुछ ही है रोड़ा!"

इसी मिजाज की एक और कविता देखें- शास्त्रों में सत्य ही कहा है – / "संघे शक्ति कलियुगे!' / इस घोर कलिकाल में / अपने संघ-शक्ति वाले राष्ट्र में / शक्ति की घनघोर भक्ति है। / शक्ति याने सत्ता ! / मंत्रिपद ! मौज और भत्ता! /

अपने व्यंग्य कविताओं के माध्यम से कवि कहते सबसे अच्छा व्यंग्य वही होता है, जो स्वयं पर ही किया आता है। ऐसे में जबकि कवि अपने व्यंग्य वाण हर दिशा में चला रहा हो, अपने ही साहित्य समाज को भला कैसे बख्श सकता है। अपनी एक कविता "पारिवारिक उपन्यास" में कवि लिखते हैं- एक कथाकृति हाथ लगी। / भूमिका में लिखा था- / लेखक आभारी है पत्नी का / जिन्होंने रचने की प्रेरणा दी। / लेखक के अमुक-अमुक बेटे-बेटियों ने / तल्लीनता से प्रूफ देखे / कृति समर्पित थी पूज्य पिता-माता को, / रचना रुचेगी सभी भाइयों को, बहनों को, / प्रकट किया था लेखक ने विश्वास। / कवर पर लिखा था- / पारिवारिक उपन्यास!

किसी भी रचनाकार की रचनाओं में उसके जीवनानुभवों की अभिव्यक्ति होती है। रचनाकार का अनुभव संसार जितना वृहत होता है, उसकी रचनाओं में उतना अधिक वैविध्य और परिपक्वता परिलक्षित होती है। जीवन में जितने ज़्यादा संघर्ष रचनाकार ने किए होते हैं, उतनी व्यापक करुणा और संवेदना उसकी कविता में परिलक्षित होती है। अशोक प्रियदर्शी जी को अपार जीवनानुभावों से उपजी व्यंग्य की विदग्धता उनकी तात्कालिक कविताओं को भी स्थायी भाव देती है, जिसके कारण वे बासी नहीं होती और अब भी तात्कालिक बनी हुई हैं। अत्यंत सरल, सहज एवं सौम्यता की प्रतिमूर्ति अशोक प्रियदर्शी जी कि यह किताब न केवल पठनीय बल्कि संग्रहणीय भी बन पड़ी है।

000

लेखकों से अनुरोध

'शिवना साहित्यिकी' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फ़ॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीएफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे किसी अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद

संपादक

shivnasahityiki@gmail.com

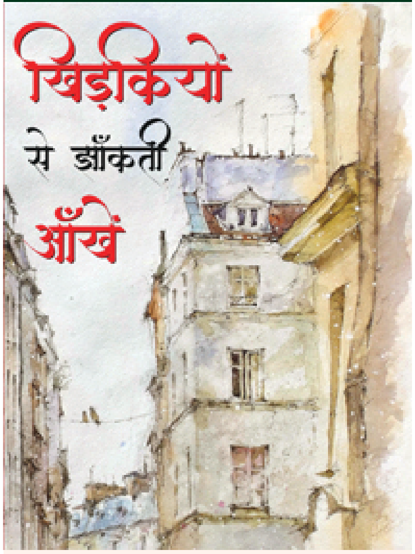

(कहानी संग्रह)

खिड़कियों से झाँकती आँखें

समीक्षक : अशोक प्रियदर्शी
लेखक : सुधा ओम ढींगरा
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

अशोक प्रियदर्शी
एम. आई. जी. 82, सहजानंद चौक
हरमू हाउसिंग कॉलोनी
राँची, झारखण्ड 834002
मोबाइल- 9430145930

'खिड़कियों से झाँकती आँखें' में कुल आठ कहानियाँ हैं। भिन्न-भिन्न रंगों वाली, भिन्न-भिन्न स्थितियों, प्रसंगों वाली। पहली कहानी 'खिड़कियों से झाँकती आँखें' वृद्धजनों की उस पीड़ा और संवेदनशीलता से हमारा परिचय कराती है। जो भारत और अमेरिका में प्राय: समरूप है। हाँ, यह स्वीकार करना चाहिए कि वरिष्ठ नागरिकों के लिए जो सुविधाएँ अमेरिका में हैं, वे हमारे देश से बहुत आगे और बहुत बेहतर हैं। कहानी सिर्फ इतनी है कि डॉ. सागर मलिक बेहतर आमदनी की आशा में अमेरिका आ जाते हैं। क़र्ज़ लेकर भी जिसे रंजीडेंसी के दौर में उन्होंने उतार दिया है। एक कस्बाई हॉस्पिटल से बुलावा आता है। डॉ. सागर मलिक वहाँ ज्वाइन कर लेते हैं। डॉ. डेविड स्मिथ ने उनसे कहा कि 'व्हाय हैव यू कम हियर टू गेट ओल्ड!' इस अस्पताल में सिर्फ़ उम्रदराज मरीज़ आते हैं। बल्कि अस्पताल और इस सबके बीच में कोई युवा दिखता नहीं। डॉ. सागर ने अपार्टमेंट भी नज़दीक वाला लिया है। वहाँ वे जाते हैं तो हर अपार्टमेंट से आँखें उन्हें तक रही हैं। और उन्हें लगता है ये आँखें उनकी पीठ से चिपक सी गई हैं। वे अपार्टमेंट बदलना चाहते हैं। शुक्र है उस दिन कार्यालय बंद है। और अस्पताल से जब वे लौटते हैं तो उनके दरवाज़े के आगे तीन बैग पड़े हैं। एक बैग में लगी स्लिप पर लिखा है- हमारे पड़ोस में आपका स्वागत है। बैग में फ्रूट केक हैं। '११३० नं। फ्लैट'। दूसरे बैग पर हिन्दी में लिखा है- तुम हमारे बेटे जैसे हो। बैगों में सूप-बड़ा और इटली है – रेड्डी दंपति, ११३२। डॉ. रेड्डी मिलने आते हैं। और भी आए मिलकर गए। रेड्डी दंपति बैठ गए। मिसेज़ ने कहा मैं सर्व करती हूँ, तुम खाओ। डॉ. मलिक पूछ बैठते हैं- आपका बेटा कहाँ रहता है ?। वे भीग जाते हैं- बेटा पेरिस में रहता है। फ्रेंच लड़की से शादी की है! ... आदि..आदि। यानी ये इलाका बूढ़ों का है। क्योंकि युवा एक-एक कर अपने माता-पिता को छोड़कर चले गए। बूढ़ों की झाँकती आँखें डॉ. मलिक में अपने बेटे को देख रही हैं। अपने यहाँ भी अपनी पसंद की शादी के बाद प्राय: बच्चे परिवार से संपर्क नहीं रखता। करुण है यह कहानी।

संकलन की दूसरी कहानी हैं 'वापसी'- यह सुनने में चाहे बुरा लगे किन्तु होता यही है कि भोले पति को उसकी पत्नी स्वार्थी बनने का मंत्र देती है। बड़ा भाई है शंकर देव और उसकी पत्नी है उमा। छोटा भाई है हरि और उसकी पत्नी है सुषमा। दो और भाई हैं नरेन्द्र, सुरेन्द्र। नरेन्द्र और हरि में बड़ा स्नेह रहा है। नरेन्द्र ने हरि को सदैव प्रेरित किया है। अर्थार्जन के लिए अब हरि अमेरिका आ गया है। एक कठिनाई यह है कि अमेरिका में डॉलर कमा रहे व्यक्ति का पैसा घरवालों को बहुत ज़्यादा मालूम पड़ता है। क्योंकि वे रुपयों में उसकी आमदनी का हिसाब करते हैं। जबकि अमेरिका में डॉलर में ही खर्च करना होता है। ख़ैर ! शंकर माता-पिता के लिए घर बनवाने के लिए हरि से पैसे माँगता है। सारी कठिनाई के बावजूद वह पैसे भेजता है। फिर स्थिति ऐसी बनती है कि हरि को सपत्नीक भारत आना पड़ता है। शंकर ने घर माँ-बाप के नाम पर नहीं, ख़ुद के और हरि के नाम पर करवाया है। और अब वह घर बेच रहा है। हरि विरोध करना चाहता है। पर उसकी पत्नी कहती है कि निरर्थक विरोध क्यों ! घर बिक जाता है। हरि को उसके हिस्से के पैसे मिल गए हैं। हरि चेक लेकर भाई से कहता है- किसी रियल स्टेट एजेंट के पास ले चलो, माँ-बाबा के लिए घर लेना है। वहाँ घर सिर्फ़ उनका होगा, उस पर उनके किसी बच्चे का हक़ नहीं होगा।

"एक ग़लत कदम" कहानी अमेरिका में बस गए एक भारतीय परिवार की कहानी है, जो बतलाती है कि विजातीय या विदेशी होने से कोई संस्कारहीन नहीं हो जाता। शुक्ला दंपति के बेटे शरद ने अमेरिकी युवती जैनेट से विवाह किया है। इसलिए पिता-माता ने उससे संबंध तोड़ लिया है। बाकी बच्चों ने वृद्ध माता-पिता (दयानंद एवं शकुंतला शुक्ला) को नर्सिंग होम में डाल दिया है। वहाँ का ओल्ड एज होम। यह बात शरद- जैनेट को पता लगती है, तो वे माता पिता को लाकर नए घर में छोड़ते हैं। दरवाज़े पर ठीक वही लिखा है जो शुक्ला दंपति ने अपने घर में

लिखवाया था। गृह-प्रवेश में जैनेट पूजा की थाली के साथ उनकी आरती उतारती। माँ भावनाओं में बह गई, बाबूजी ने शरद को बाज़ुओं में कस लिया है। रहस्य यह खुलता है कि जैनेट उन डॉक्टर की बेटी है, जिन्होंने शुक्ला जी को यहाँ बसने में मदद की थी। और मिसेज़ शुक्ला का प्रसव भी कराया था, वही लड़का है शरद। जैनेट का जन्म भी थोड़ा ही पीछे हुआ।

'ऐसा भी होता है' - एक पंजाबी परिवार की उस बेटी की कहानी है जो अमेरिका आ गई है। माता-पिता उसे पैसों की मशीन समझते हैं। और वक़्त–बेवक़्त पैसे माँगते रहते हैं। पिता-माता ने लिखा है कि बैंक-लोन न चुकाने के कारण दलजीत (उसका पति है कुलदीप) की बदनामी होगी। दलजीत लम्बा पत्र लिखती है अपने माता-पिता के नाम। 'स्त्री ही अपनी जात के साथ ग़द्दारी करती है।' (असल में बीजी बेटों को सीने से लगाती है, बेटियाँ उपेक्षिता हैं।) .... जिनको लेने का स्वाद पड़ जाता है उनके लिए रिश्तों की कोई कीमत नहीं होती। आप यह भूल गए, यहाँ डॉलर में कमाते हैं, डॉलर में खर्च करते हैं रुपयों में नहीं। ...बैंक से लोन लेते समय आपने मुझसे पूछा था ? क्या मैंने कोई गारंटी ली थी। ...आपने यह कभी नहीं कहा-मैंने ऐसा बेटा लेकर क्या करना, जो बहन के काम न आ सके ! असल में नीबू को ज़्यादा निचोड़िए तो वह तीता हो ही जाता है।' इस कहानी की पंजाबी भाषा भी छोंक इसे और पठनीय बनाती है।

'कॉस्मिक की कस्टडी' थोड़ी सी रहस्य-कथा सरीखी है। एक फिल्मी गीत याद आ रहा है- रुत ये सुहानी है मेरी महबूबा ! गीत की शुरूआती पंक्तियों से लगता है जैसे नायक अपनी जीती-जागती प्रेमिका को याद कर रहा हो। मिसेज़ रॉबर्ट विधवा हो गई है। उनका कहना है कि कॉस्मिक जब सिर्फ एक दिन का था, तब से उन्होंने उसे पाला है। ज़ाहिर है, उसी से अब उनका मन बहलता है। इधर मिसेज़ रॉबर्ट का बेटा अपनी गर्लफ्रेंड डनीस की ज़िद के कारण कॉस्मिक को रखने का अधिकार चाहता है। फैमिली कोर्ट के डिस्ट्रिक्ट एडवाइज़र अटॉर्नी सुधीर पटनी का फ़ैसला अंततः मिसेज़ रॉबर्ट के हक़ में होता है। ग्रेग, बीगल नस्ल के कुत्ते कॉस्मिक को माँ को सौंपते हुए कहता है- माँ सँभालो अपने छोटे बेटे कॉस्मिक को! यहाँ आकर पाठक जान पाता है कि कॉस्मिक क्या है ?

'यह पत्र उस तक पहुँचा देना' एक दु:खांत कथा है, प्रेम की गहराई को रेखांकित करने वाली। और ऐसी कहानी कोई सुधा जी ही सिरज सकती हैं। जो प्रवासी हैं और संवेदनशील भी। कथा-कथन की विशेष भंगिमा तो सुधा जी के पास है ही। - यों है कि रोज़-रोज़ तो कोई अमेरिका की सैर लगाता नहीं। हार्दिक की पत्नी दीपाली फार्मास्यूटिकल कंपनी बेलमिल में कार्यरत है। इस कंपनी का एक ऑफ़िस मुंबई में भी है। मुंबई से वही टीम आई हुई है। और उसे लौटने के लिए समय पर एयर-पोर्ट पहुँचना है। मौसम बर्फ़ीला और अत्यंत ख़राब है। कार हार्दिक चला रहे हैं। मनीष को एयर-पोर्ट पहुँचने की जल्दी है। हेवी ट्रैफिक से बचने के लिए एक ख़तरनाक सुनसान रास्ते को पकड़ते हैं। तभी मनीष दीपाली से कहता है कि विजय का पत्र उसे उसकी मित्र जैनेट गोल्डस्मिथ तक पहुँचाना था। वह पत्र दीपाली को सुपुर्द कर देता है। दीपाली विजय और उसकी मित्र जैनेट को जानती है। इन्हीं वादियों में वहीं जैनेट सोई पड़ी है। विजय भी अब नहीं है। और संयोग देखिए तेज़ बर्फ़ीली आँधी में वह पत्र भी उन्हीं वादियों में उड़ता-उड़ता गल जाता है।

"अँधेरा उजाला" कहानी का स्वरूप यह है कि जिसे आप उसकी ग़रीबी और जातीय पहचान के कारण अस्पर्श्य और हीन समझते रहे हैं। वह भी ऐसी ऊँचाई पा सकता है कि आप उससे रश्क करें। कहानी आप स्वयं पढ़ें। संक्षिप्त कथा यह कि इला एक भरे-पूरे भारतीय ज़मींदार परिवार की बेटी है। और डॉक्टरी की पढ़ाई के बाद वह अमेरिका चली आती है। इला अपेक्षया विद्रोहिणी थी। और उसके घर के शौचालय की सफाई करने सोमा और उसके जो परिवार-जन आया करते थे उन्हें घर में प्रवेश नहीं मिलता था। विशेषकर दादी के कारण। डॉ. इला के पिता अपेक्षया उदार थे। अमेरिका में प्रसिद्ध गायक मनोज पंजाबी की धूम है। उसे ज़हर देकर ख़त्म करने की कोशिश भी हुई। उन्हीं की बेटी है मीना। मनोज को गायन के लिए इला के पिता ने ही प्रेरित किया था। सुविधा जुटा दी थी। अमेरिका में जात-पाँत का झगड़ा नहीं है। निष्कर्ष यह कि कला किसी जाति की बपौती नहीं होती और ज़हर से कला मरती नहीं। ये कहानी थोड़ी पेचीदा है। माने पेचो-खम वाली है।

आख़िरी कहानी है- 'एक नई दिशा'। इस कहानी की बुनावहट अपेक्षया एक रेखीय और सरल है। कथा यह बताती है कि भरे-बुरे लोग हर जगह होते हैं, आप दुनिया की किसी भी दिशा में जाएँ। हमारे यहाँ जैसे महिलाओं के गले का हार झपट लेने वाले चेन-स्नैचर होते हैं। या मोबाइल को झपट्टा मार कर छीन लेने वाले होते हैं। वैसे ही अमेरिका में भी औरतों के गले पे पड़े कीमती हार पर लुटेरों की नज़र रहती है। मौली-परेश दंपति अमेरिका में रहते हैं। मौली देव रियल स्टेट एजेंट हैं। वह गहने कम पहनती हैं। वे डिब्बों में धरे हैं। भास्कर को एक फ्लैट चाहिए। वह मौली से संपर्क करती है। मौली भास्कर और उसके पति को कई सब डिविज़नों के फ्लैट दिखलाती है। वे उसे और दूर और दूर ले जाना चाहते हैं। मौली स्थिति को भाँप लेती है कि भास्कर और उसके पति की नज़र उसके हीरे के हार पर है। ग्राहक उसे रिमोट एरिया में ले जाना चाहते हैं। मौली बहाने से अपने फ्लैट के पास कार पार्क कर घर में आती है और असली हीरे के हार को रखकर नकली हीरे का हार पहन लेती है और ये बच जाती है। कहानी का सकारात्मक पक्ष यह कि गहनों से मौली का जी उचाट हो जाता है और वह यह निर्णय लेती है कि इन गहनों को बेचकर उन पैसों से ज़रूरतमंद बच्चों को शिक्षा दिलाना चाहती है।

सुधा ओम ढींगरा की कहानियों के इस संकलन की कहानियाँ, लीक से हटकर और विशिष्ट हैं, रोचक और नितांत पठनीय तो हैं ही।

000

केंद्र में पुस्तक

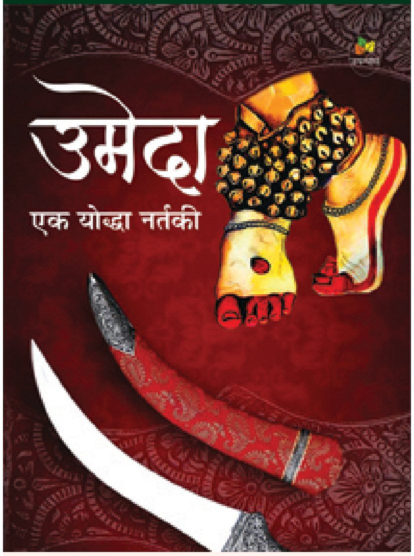

(उपन्यास)

उमेदा - एक योद्धा नर्तकी

समीक्षक : गीताश्री

दीपक गिरकर

लेखक : आकाश माथुर

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

गीताश्री
फ़्लेट नंबर - डी-11442
गौर ग्रीन एवेन्यू
अभय खण्ड- 2, इंदिरापुरम
ग़ाज़ियाबाद, उप्र 201010
मोबाइल - 9818246059
ईमेल- geetashri31@gmail.com

दीपक गिरकर
28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- 452016
मोबाइल- 9425067036
ईमेल- deepakgirkar2016@gmail.com

वक्त की धूल में गुमशुदा नायिकाओं की तलाश

गीताश्री

पत्रकार और लेखक जब एक काया में साथ जीते हैं तब वे खंडहरों को सूँघते फिरते हैं। वे फिर इतिहास के पन्नों पर मोहरों की तरह छोड़ दी गईं बहादुर नायिकाओं की तलाश करते हैं। पौराणिक आख्यानों से लेकर स्वाधीनता आंदोलन तक खोई हुई, विस्मृत स्त्रियाँ दिखाई देती हैं जिनका अपने देश के प्रति गहरा अनुराग रहा। जिन्होंने बढ़ चढ़ कर स्वाधीनता की लड़ाईयों में हिस्सा लिया और जब इतिहास लिखे गए तो वे छूट गईं या हल्के फुल्के विवरणों में समेट दी गईं। उस वक्त की बहादुर स्त्रियाँ इत्यादि में शामिल करके छोड़ दी गईं। कहीं-कहीं वे पुरुषों के सहयोगी के रुप में नज़र आती हैं, लेकिन इतना काफ़ी नहीं है। उन्हें उतनी जगह चाहिए पन्नों पर, जितना वो डिज़र्व करती हैं। अब कौन तलाशे उनको? कौन खोजे, दर दर की ठोकरें खाए, खंडहरों से बातें करें और उनमें निशाँ ढूँढ़े ? टुकड़ों में बिखरी वीर गाथा को समेटना आसान कहाँ! ये काम वही काया करती है जिसमें दो सजग आत्माएँ रहा करती हैं।

"उमेदा : एक योद्धा नर्तकी" एक ऐसी ही स्त्री की तलाश है जिसे संभव किया है पत्रकार - लेखक आकाश माथुर ने। ऐसा काम तभी संभव होता है जब लेखक की कोई सदिच्छा शामिल हो। अन्यथा धूल कौन हटाता है। वक्त की धूल को हटा कर उमेदा को ढूँढ़ कर स्त्री संसार को एक नायिका देने की जो सफल कोशिश की है आकाश माथुर ने, वह विरल है। उन्होंने इसे उपन्यास कहा है मगर ये औपन्यासिक शैली का ऐतिहासिक दस्तावेज़ है। इतिहास से प्राप्त अपर्याप्त जानकारी के आधार पर उपन्यास लिखा जा सकता था। लेकिन आकाश ने ख़ूब शोध किया है। ऐतिहासिक साक्ष्य देते हुए कथा शिल्प में उमेदा को उकेर दिया है। इसे पढ़ते हुए कई बार लगा कि लेखक के हाथ में छेनी, हथौड़ा है और एक मूर्ति पर पड़ी पाषाण-धूल को छाँट कर हटा रहा है।

एक आकृति उभर रही है, नाचती हुई आकृति, जो मनोरंजन भी करती है और वक्त पड़ने पर दुश्मनों का सर्वनाश भी। ऐसे समय में जब समूचा स्त्री-विमर्श बदल गया है और साहित्य में स्त्री लेखन केंद्र में अपनी जगह बना चुका है, तब यह उपन्यास एक सशक्त स्त्री के किरदार को लेकर सामने आता है। जिसकी बहुत ज़रूरत महसूस की जा रही है। स्त्री को अपनी परंपरा की तलाश हमेशा से रही है जिससे वह जुड़ सके। जहाँ से वह हुंकार भर सके। हमेशा से स्त्री के योगदान को, उसकी भूमिका को कम करके आँका गया। आज भी उस पर तरह-तरह के आरोप लगा कर उसके काम को रिड्यूस किया जा रहा है। ऐसे समय में एक और नायिका का आगमन बहुत ताक़त देता है।

इतिहास पर लेखन बहुत आसान काम नहीं है। इस उपन्यास में गहन शोध दिखाई पड़ता है। सबसे पहले उमेदा के बारे में बता दें कि यह कौन थी और आज इसकी प्रासंगिकता क्यों है? उसकी कथा १८५७ की क्रांति से ३३ साल पहले की कथा है। जिसका अंत हज़ारों की सेना के सैकड़ों वीरों के युद्ध के साथ हुआ। ये कहानी है उन शहीदों के साथ शहीद होने वाली भारत की पहली योद्धा नर्तकी की जो आज़ादी के लिए अंग्रेज़ों से लड़ते-लड़ते शहीद हो गई। ऐसा नहीं कि इसमें उस समय के वीर पुरुष नहीं हैं। लेकिन उनकी कहानियाँ कई बार लिखी जा चुकी हैं। लेखक को यह भान था। वे उमेदा की कथा कहते हुए ध्यान रखते चलते हैं कि कहीं यह कहानी उस दौर के पुरुषों की कथा न बन जाए। इसकी संभावना थी। इसका ध्यान रखना कठिन होता है। उस समय की स्त्री को वीर पुरुष की छाया से अलगाना कठिन काम तो है। लेखक को ज़रूर परेशानी आई होगी जिसका वे हल्का ज़िक्र अपनी भूमिका में करते हैं। बार-बार इतिहास के प्रभावशाली पुरुष पात्र आ घेरते थे उन्हें। लेकिन उमेदा ने इनसे अपनी कथा लिखवा ही ली।

भूमिका में लेखक की एक बेहद ईमानदार आत्म स्वीकृति रेखांकित करना ज़रूरी है। वे साफ़गोई से लिखते हैं - "मैं जब भी लिखता, उमेदा दूर चली जाती। क्योंकि उसके बारे में कहीं ज़्यादा पढ़ा नहीं था। मुझे कई बार लिखना और मिटाना पड़ा। क्योंकि रह रह कर कुंवर-सा और

दोनों ख़ाँ साब के साथ अन्य पात्र रेखांकित हो रहे थे, उमेदा नहीं। मैंने प्रयास तो किया है कि उमेदा की कहानी रेखांकित कर सकूँ पर शायद सफल नहीं हो पा रहा था। जब भीतर उतारना मुश्किल काम था, क्योंकि एक पुरुष किसी महिला की क्यों सुने? ये तो पितृसत्तात्मक व्यवस्था पर प्रहार होगा। जबकि मैं उसी व्यवस्था का हिस्सा हूँ।"

लेखक के इस बयान से साफ़ ज़ाहिर है कि पुरुष पात्रों पर लिखना उनके लिए आसान था। उमेदा उनके लिए एक इम्तहान साबित हुई। जिसमें वे सर्वाधिक सफल रहे। सच कहूँ तो उन्होंने मेरी यह धारणा बदल दी कि स्त्री की काया में किसी दूसरी स्त्री की तरह पुरुष प्रवेश करके नहीं लिख सकते। यहाँ लेखक उमेदा की काया में प्रवेश कर चुके हैं और उमेदा उनके रोम रोम में बस कर अपनी कथा कह रही है, पूरे साक्ष्यों साथ।

कथा का मूल नायक भी एक पत्रकार ही हैं जो घूमते घूमते खंडहरों और क़ब्रों के पास पहुँच कर ठिठक जाता है। जहाँ एक नायिका "इत्यादि" की श्रेणी में मिलती है और उतावला होकर कहता है - "मैं तो उस नर्तकी के बारे में लिखना चाहता हूँ जो कुँवर चैन सिंह के साथ शहीद हुई थी।"

उमेदा एक नर्तकी थी, इसलिए उसके प्रति उपेक्षा भाव था इतिहास का। वह मनोरंजन की वस्तु थी। नर्तकी भला कैसे शहीद हो सकती है? नायक क्षितिज एक उपेक्षित क़ब्र पर जाकर ठिठक जाता है और सवाल पूछता है। लोग ऐसे तथ्य छिपा जाते हैं कि किसी पुरुष शहीद की बदनामी न हो। पत्रिकार नहीं मानता और वह उमेदा की खोज शुरू कर देता है। इतिहास में उपेक्षित पात्रों की समाधि भी उपेक्षित ही होती है। उमेदा की क़ब्र के साथ भी यही हुआ है। पत्रकार को उमेदा की कहानी ढूँढ़ने में अड़चनें तो आती हैं मगर यहाँ भी एक स्त्री ही उसकी कहानी सुनाती है। इतिहास की ग़लती पर वर्तमान की स्त्री इतनी कटु हो चुकी है कि वह पत्रकार को बिना लाग लपेट के सुना देती है- "वो भी शहीद हुई थी। उसने भी अंग्रेज़ों से लड़ाई लड़ी थी। उसके पास भी मौक़ा था अपनी जान बचाने का। लौट जाने का। या युद्ध में शामिल होने का। पर वो लड़ी। अपनी मातृभूमि के लिए। पर लोग उसे भूल गए।" यही महिला खोजी पत्रकार को उमेदा की कहानी सुनाती है।

पत्रकार क्षितिज को एक अनजान महिला उजड़ी समाधि के पास बैठ कर राजनर्तकी उमेद की कहानी सुना रही है। वह महिला इतनी जानकार है कि पत्रकार से १२ वीं शताब्दी की मिथिला की राजनटी मीनाक्षी के बारे में बताती है। संक्षेप में वो पूरी कथा सुना डालती है। यह प्रसंग थोड़ा अजीब लगा। उसे सात सौ साल पुरानी राजनर्तकी की जानकारी है, ढाई हज़ार साल पहले वैशाली की अंबपाली, मगध की कोशा जैसी बहादुर राज नर्तकियाँ याद नहीं? आम्रपाली ने तो मगध के खिलाफ मैदान में जाकर युद्ध किया था और समूचे जनपद को ललकार कर युद्ध के लिए तैयार किया था। मीनाक्षी तो अनसुना नाम है। इतिहास के किसी पन्ने पर नहीं। लोक इतिहास की स्मृति में हमेशा के लिए दर्ज है मीना। यहाँ आश्चर्यजनक है यह प्रसंग, लेकिन एक पत्रकार को इसी कहानी के माध्यम से तंज़ कसती है कि इतिहास देश पर क़ुर्बान होने वाली राजनर्तकियों को नहीं जानता।

यह सच है कि स्वाधीनता आंदोलन के दौरान तवायफ़ों ने क्रांतिकारियों की हर तरह से मदद की है। इतिहास गवाह है। क्रांतिकारी सिपाही मंगल पांडेय की कथा में ये अध्याय मिलता है। मालवा की उमेदा भी अस्त्र-शस्त्र निपुण हैं और निर्भीक है। बहुत मिलते जुलते चरित्र हैं उमेदा के, पूर्ववर्ती राज नर्तकियों से। दिमाग़ी रूप से भी बहुत तेज़ है। वह चतुराई से फ़िरंगी को मात देने का प्रस्ताव रखती है तो एक मंझी हुई रणनीतिकार के रुप में नज़र आने लगती है।

वह महाराजा कँवर चैनसिंह को सुझाव देती है-

"हमें कुछ ऐसा सोचना होगा जिससे साँप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे। आप धैर्य रखें और योजना बना कर घात करें। महाराज कँवर चैनसिंह को यह बात ठीक लगी। उन्होंने ऐसा ही करने का मन बना लिया।" (पृष्ठ संख्या -१२८)

उमेदा एक योद्धा के रूप में दिखाई पड़ती है जब महाराज कँवर चैन सिंह तोप और बंदूकों से लैस फ़िरंगी सेना से घिर चुके हैं। उमेदा को ख़बर मिली कि महाराज कँवर चैनसिंह के साथ मात्र पचास सैनिक लड़ रहे हैं। उमेदा ने यह समाचार सुना तो सिर से ओढ़नी उतार कर अपनी कमर में कस लिया और उसमें कटार फँसाई । लेखक ने उस रूप का ज़िक्र कुछ इस तरह किया है- "हाथ में तलवार लिए वो तंबू से बाहर आई। उसने संतरी से सभी ख़िदमतगारों को एकत्रित करने को कहा। ख़िदमतगारों को लगा कि अब उन्हें नरसिंहगढ़ के लिए रवाना होना है। वे इसके लिए तैयार होकर उमेदा के पास पहुँचे। वे लगभग हिम्मत हार रहे थे। तब उमेदा ने उनसे कहा- "हमें युद्ध के मैदान में चलना है। महाराजा कंवर सा और नरसिंहगढ़ को हमारी ज़रूरत है।"

ख़िदमतगारों ने सवाल दागा- "हम युद्ध कैसे लड़ सकते हैं? हमारे पास न तो हथियार हैं और न हम हथियार चलाना जानते हैं।"

तब उमेदा ने उनसे कहा- "हमारे पास जो भी हथियार या सामान है, जिससे दुश्मन पर वार किया जा सकता है, वह उठा लीजिए। दुश्मन को हम हथियार से नहीं, अपने मनोबल से हराएँगे। जीत हौसलों से होती है, हथियारों से नहीं।"

इस तरह की बातें वो बार-बार करती हैं और ऐसी सलाहें देती है। एक कुशल राज नर्तकी एक कुशल रणनीतिकार और कुशल सैन्य संचालक की तरह सामने आती हैं। ये सारे प्रसंग साबित करते हैं कि जो पैर घुँघरू बाँधते हैं, थिरकते हैं, उनके पास न सिर्फ़ सुंदर देह होती है बल्कि शानदार दिमाग़ भी होता है। वे कला, राजनीति और युद्ध संचालन सबमें माहिर होती हैं। वक्त पड़ने पर वे अपने को साबित कर देती हैं। जो पैर मंचों पर थिरक सकते हैं, वो युद्ध के मैदान में क़हर भी ढा सकते हैं।

ये कहना उचित होगा कि उमेदा का किरदार बहुत शानदार ढंग से खड़ा किया है उपन्यासकार ने। उसे पढ़ते हुए उमेदा इतिहास

की कई ऐसी ही स्त्रियों की याद दिलाती है जिनका पेशा कथित सभ्य समाज की नज़र में बुरा था मगर जिन्होंने स्वाधीनता आंदोलन में सक्रिय योगदान दिया था। कानपुर की नर्तकी अजीमन बेगम की कथा याद करें कि ग़दर के समय किस तरह चार सौ महिलाओं को लेकर मस्तानी टोली बनाती है और क्रांतिकारियों की मदद करती है। इसके बदले उन्हें अपनी जान गँवानी पड़ी। अंग्रेज़ों ने उन्हें गोली मार दी थी। एक और ऊदा देवी, नवाब वाजिद अली शाह के दस्ते की एक दलित महिला जो पुरुषों के वेश में अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ युद्ध लड़ी।

ये सब इतिहास के पन्नों पर गुम हो गईं नायिकाएँ हैं। साहित्य ज़रूर इनके किरदार के साथ न्याय करता है। अमृत लाल नागर ने अपनी किताब "ग़दर के फूल" में इनका ज़िक्र किया है।

उमेदा इन सबसे पहले की नायिका है। ये अलग बात है कि १८५७ को आधिकारिक तौर पर प्रथम स्वतंत्रता आंदोलन के रूप में मान्यता मिली हुई है। लेकिन उसके पहले भी अंग्रेजों के ख़िलाफ़ बग़ावत हुई है, लड़ाइयाँ हुई हैं, लोगों ने क़ुर्बानियाँ दी हैं। ये अच्छा है कि इतिहास न सही, साहित्य शताब्दियों में खोयी हुई महिला क्रांतिकारियों की तलाश कर उन्हें इक्कीसवीं शताब्दी में याद दिला रहा है।

हाल के वर्षों में ऐतिहासिक पात्रों पर कई उपन्यास आए हैं। कई आने वाले हैं और कुछ लेखिकाएँ इस ओर उन्मुख हुई हैं। इतिहास के अधूरेपन को साहित्य पूरा करता है। उसके अन्याय या हड़बड़ी को नये ढंग से देखता और आँकता है। उचित नैरेटिव सेट करता है।

इस उपन्यास में वो एक अनजान औरत जो कथा वाचक है, वह रहस्य जगाती है। पाठक अंत से पहले तक उस रहस्य को नहीं समझ पाएँगे। बीच में एकाध जगह संकेत उभरते हैं और लुप्त हो जाते हैं। क्रांति की अलख जगाने वाली यह कथा वाचक और मालवा की नायिका उमेदा दिल जीत लेगी। आख़िर स्त्रियाँ अपनी कथा खुद नहीं कहेंगी तो कौन कहेगा ! यहाँ तो कहती भी है और लिखवा भी लेती है।

000

उमेदा की शहादत का दस्तावेज़

दीपक गिरकर

आकाश माथुर का ऐतिहासिक उपन्यास "उमेदा - एक योद्धा नर्तकी" इन दिनों काफी चर्चा में है। इस उपन्यास में आकाश ने एक ऐसे योद्धा पर अपनी कलम चलाई है जिसका उल्लेख अधिक नहीं है। यह उपन्यास कुँवर चैन सिंह और नर्तकी उमेदा की शहादत का दस्तावेज़ है। लेखक ने इस उपन्यास को बहुत ही रोचक तरीके से प्रस्तुत किया है। उपन्यास में नरसिंहगढ़ के महाराजा सोभाग सिंह, महाराजा के पुत्र कुँवर चैनसिंह, योद्धा नर्तकी उमेदा की कहानी है। "उमेदा - एक योद्धा नर्तकी" उपन्यास में वर्ष १६८१ से वर्ष १८२४ तक के इतिहास का वर्णन किया गया है। उस समय देश छोटे छोटे राज्यों व रियासतों में विभाजित था। इन राज्यों के राजा एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिए आपस में लड़ते रहते थे, इसी का लाभ अंग्रेजों को मिला। उपन्यास के कथानक में रोचकता, मौलिकता, स्वाभाविकता, समृद्धता, जिज्ञासा आदि सभी गुण मौजूद हैं। इस उपन्यास में कुँवर चैनसिंह और योद्धा नर्तकी उमेदा का अंग्रेज़ों से युद्ध, नरसिंहगढ़ क़िले का चित्रण, सेनाओं का प्रबन्ध, राजाओं के परस्पर युद्धों, पेशवा तथा होल्कर सियासत, अंग्रेज़ों द्वारा राजा महाराजाओं और पेशवा व होल्कर राजाओं के साथ संधि का चित्रण और लार्ड हेस्टिंग्स की कार्यशैली व अंग्रेज़ों की विस्तारवादी नीति का चित्रण मिलता है। उपन्यास इतिहास की कई वास्तविक जानकारियों से अवगत कराता है। यह ऐतिहासिक उपन्यास १८५७ की क्रान्ति से तैंतीस साल पहले १८२४ में अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ क्रान्ति का बिगुल फूँकने वाले पहले क्रांतिकारियों - कुँवर चैनसिंह, उमेदा, हिम्मत ख़ान, बहादुर ख़ान जैसे वीरों का कालजयी दस्तावेज़ है। इस उपन्यास की यह मुख्य घटना अभी तक इतिहास के हाशिये पर ही दर्ज हो पाई थी लेकिन आकाश माथुर ने इस घटना पर एक पूरा उपन्यास लिखकर अमर शहीदों को सच्ची श्रद्धांजलि दी है। एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाक्रम को लगभग भुला दिया गया था, इसे आकाश माथुर ने पठनीयता और कथात्मकता के साथ जिस तरह इस पुस्तक में विस्तार दिया है इसके लिए कथाकार आकाश माथुर बधाई और प्रशंसा के पात्र है। इस उपन्यास का सन्देश है - अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए वीरतापूर्वक मुकाबला करना और देश के अमर शहीदों को सम्मान देना। लेखक इस सन्देश को पाठकों तक पहुँचाने में पूर्ण रूप से सफल हुए हैं। कथानक में एक ओर पात्रों के अद्भुत शौर्य, देशप्रेम, लगन और बलिदान जैसे गुणों का चित्रण हैं तो दूसरी ओर सामंती परिवेश में होने वाले षड्यंत्रों, स्वार्थसिद्धि, छल आदि को भी चित्रित किया गया हैं। "उमेदा - एक योद्धा नर्तकी" अद्भुत उपन्यास है, इसमें राजा महाराजाओं के जीवन के विविध पक्षों को सुन्दर ढंग से पिरोया गया है। प्रस्तुत उपन्यास में राजाओं के दरबार से लेकर नर्तकी के आवास तक, आभूषणों से लेकर खाद्य पदार्थों तक, क़िलों से लेकर जंगल तक, वस्त्रों से लेकर शस्त्रों तक सब का सजीव चित्रण हुआ है। उपन्यास में मुख्य कथा के साथ साथ प्रासंगिक कथाओं का भी विकास हुआ है। उपन्यास में सजीव, सार्थक, संक्षिप्त, स्वाभाविक, भावानुकूल संवादों का प्रयोग किया गया है।

कथाकार कथा के नैरेटर के माध्यम से लिखते हैं - उमेदा स्वतंत्रता के लिए अंग्रेज़ों से युद्ध करते हुए शहीद होने वाली पहली नर्तकी थी। उसने अपने राज्य के कुँवर के साथ अंग्रेज़ों से युद्ध लड़ा, उसे न सत्ता का लोभ था न पद का लालच। वो अपने लिए नहीं लड़ी, वो मातृभूमि के लिए शहीद हुई। इसके बाद भी उसे सम्मान नहीं मिला। हाँ, उसको भुलाने के तमाम प्रयास किए गए। कुँवर चैनसिंह को लोग भगवान् की तरह पूजते हैं, नरसिंहगढ़ क्षेत्र में शादियों में उनके गीत गए जाते हैं। उनकी समाधि पर जाकर लोग मन्नत माँगते हैं, पर उमेदा की समाधि पर कोई नहीं आता। मैं तो कहती हूँ, हर शहीद का सम्मान इसी तरह किया जाना चाहिए, लेकिन उमेदा की तरह जो उपेक्षित हैं, उन्हें एक शहीद का सम्मान मिल जाए, तो काफी है। (पृष्ठ १९६-१९७) योद्धा नर्तकी उमेदा की बस एक टूटी-

फूटी समाधि है, जो सीहोर में कुँवर चैनसिंह की छतरी के पास बनी हुई है। इस समाधि के बारे में कथाकार ने लिखा है - समाधि के पत्थर धीरे-धीरे गिर जाएँगे, सब ख़त्म होने के बाद कोई निशान भी उमेदा का नहीं बचेगा। जो उसकी शहादत की गवाही दे सके। हाँ, एक तस्वीर कुँवर चैनसिंह की छतरी में लगी है। जो छुपी हुई है परदे के पीछे। जिसमें युद्ध का दृश्य है। उसमें उमेदा दिखाई देती है। यह चित्र कुछ दिनों तक उमेदा की याद दिलाता रहेगा। तस्वीर को देखकर कुछ लोग पूछ लेंगे है ये कौन? तब अधिकतर लोग हिक़ारत से कहेंगे "आई थी एक नाचने वाली.. जिसकी मौत यहाँ हुई थी।" (पृष्ठ 197)

इस उपन्यास में आख्यान के माध्यम से राजा महाराजाओं, सरदारों, सेना नायकों, वफ़ादार सैनिकों के जीवन संघर्ष और मानसिक सोच-विचार को अभिव्यक्त किया गया है। पुस्तक में महारथियों की शौर्यगाथाएँ, राजनीति, षड्यंत्र, दर्द, पीड़ा, यातना का चित्रण है। इस उपन्यास में सजीव, सार्थक, संक्षिप्त, स्वाभाविक और सरल संवादों का प्रयोग किया गया है। यह उपन्यास अपने कथ्य, प्रस्तुति और चिंतन की दृष्टि से भिन्न है। कथाकार ऐतिहासिक तथ्यों की तह तक गए हैं। उपन्यास लिखने के पूर्व उपन्यासकार ने आधुनिक भारत के इतिहास सहित अनेक ऐतिहासिक पुस्तकों का गहन अध्ययन किया है। लेखक ने इस उपन्यास को बहुत गंभीर अध्ययन और शोध के पश्चात लिखा है। इस पुस्तक में कथाकार ने ऐतिहासिकता को बरकरार रखते हुए महिला सशक्तिकरण पर भी अपनी कलम चलाई है। उपन्यास के सभी पात्र अपने सामाजिक स्तर के अनुकूल भाषा का प्रयोग करते हैं। "उमेदा-एक योद्धा नर्तकी" उपन्यास शिल्प और औपन्यासिक कला की दृष्टि से सफल रचना है। यदि आप एक बार पुस्तक को पढ़ना आरंभ कर देते हैं तो फिर कहीं से भी छोड़ने को मन नहीं करता। इस ऐतिहासिक उपन्यास में आकाश माथुर ने कुँवर चैनसिंह और योद्धा नर्तकी उमेदा को जीवंत कर दिया है।

000

पुस्तक समीक्षा

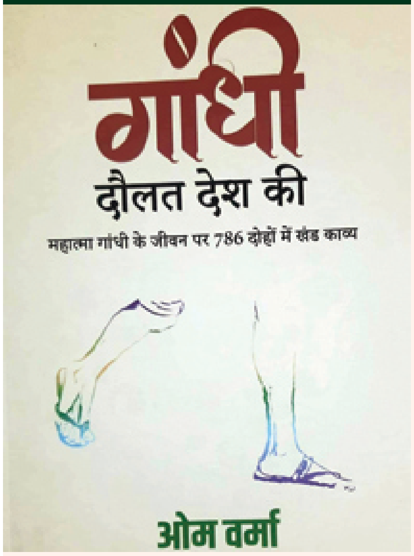

(दोहा संग्रह)

गांधी दौलत देश की

समीक्षक : ब्रजेश कानूनगो

लेखक : ओम वर्मा

प्रकाशक : श्वेतवर्णा प्रकाशन, नई दिल्ली

वर्तमान समय में वैसे ही साहित्य हाशिए पर आ गया है। और जब बात कविता की हो तो वहाँ भी काव्य, छांदिक और अतुकांत कविता में बँटा हुआ नज़र आता है। यद्यपि अतुकांत समकालीन कविता में आंतरिक लय की बात की जाती है, वह होती भी है किंतु छांदिक रचनाओं में लयात्मक अनुशासन स्पष्ट नज़र आता है। छंद में यह अनुशासन व्याकरणीय और मात्राओं की गणना, पंक्ति के वज़न आदि जैसे मानदंडों की वजह से मुखर हो उठता है। नवगीत जैसी नई विधा में भी कुछ हद तक यह दिखता है। आज स्थिति तो यह है कि छांदिक अनुशासन का पालन बहुत कम रचनाकार कर पाते हैं। ख़ास तौर से 'दोहा' जैसी विधा में तो रचनाओं में इस अनुशासन का उल्लंघन खुले तौर पर बहुत आम हो गया है।

ऐसे में जब कवि, व्यंग्यकार ओम वर्मा 'गाँधी दौलत देश की' जैसा खण्ड काव्य लेकर आते हैं तो यह बहुत महत्त्वपूर्ण घटना कही जा सकती है। ओम वर्मा जी का यह सृजन कई कारणों से उल्लेखनीय कहा जा सकता है। पहला तो यह कि यह दोहा छंद में पूरी तरह शिल्पगत अनुशासन के अधीन रचा गया है। दूसरा महात्मा गाँधी के जीवन चरित्र या उनकी आत्मकथा का हिन्दी में ७८६ दोहों में ईमानदारी से किया गया रूपांतर है। तीसरा सबसे महत्त्वपूर्ण कारण कवि की 'गाँधी विचार' के प्रति अपनी आस्था और उसे जन-जन तक सहज सरल भाषा में पहुँचाने की आकांक्षा का होना भी है।

किताब की विषय वस्तु या महात्मा गाँधी के जीवन और विचारों पर चर्चा यहाँ करना महज दोहराव होगा। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि जिन्होंने महात्मा गाँधी की आत्म कथा पढ़ी है उन्हें छंद में किताब का पुनर्पाठ पुन: उनका स्मरण कराता है। नई पीढ़ी को गाँधीजी के जीवन, संघर्षों और स्वतंत्रता संग्राम के महानायक के विचारों को जानने समझने का काव्यात्मक अवसर इस किताब को पढ़कर उपलब्ध होता है।

महात्मा गाँधी पर विपुल साहित्य की उपलब्धता के बावजूद ओम वर्मा जी की यह पहल नवोन्मेषी भी कही जा सकती है और उनका दुस्साहस भी। दुस्साहस इस मायने में कि जिस दौर में अतीत के महापुरुषों के विचारों, अस्तित्व व कृतित्व को नष्ट भ्रष्ट किए जाने के कुत्सित प्रयास हो रहे हैं तब ओम वर्मा की यह किताब विचारहीनता के घटाटोप में उम्मीद का उजाला फैलाने का प्रयास करती है।

000

ब्रजेश कानूनगो, 503,गोयल रिजेंसी, इंदौर 452018
मोबाइल- 9893944294

केंद्र में पुस्तक

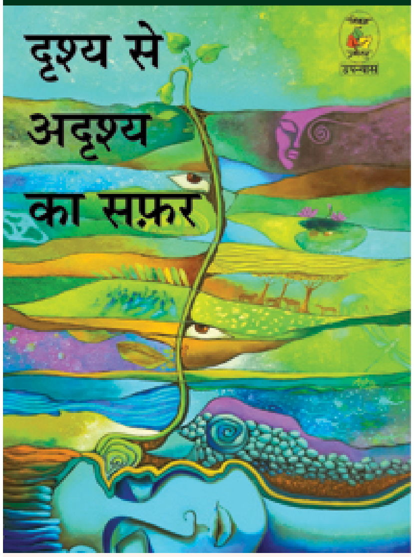

(उपन्यास)

दृश्य से अदृश्य का सफ़र

समीक्षक : प्रेम जनमेजय, तरसेम गुजराल, डॉ. सीमा शर्मा, दीपक गिरकर

लेखक : सुधा ओम ढींगरा

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

प्रेम जनमेजय
73, साक्षरा अपार्टमेंट्स, ए-3, पश्चिम विहार, नई दिल्ली 110063
मोबाइल- 9685458072

तरसेम गुजराल
444-ए, राजा गार्डन, डाक खाना, बस्ती बावाखेल, जालन्धर 144021, पंजाब
मोबाइल- 9463632855

डॉ. सीमा शर्मा
एल–235 शास्त्रीनगर, मेरठ
पिन -250004 (उप्र)
मोबाइल- 9457034271

दीपक गिरकर
28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड, इंदौर- 452016
मोबाइल- 9425067036

मानव समाज की बेहतरी के सोच की कृति

प्रेम जनमेजय

सुधा ओम ढींगरा के उपन्यास को पढ़ना आरम्भ किया तो आरम्भ में ही संकेत मिल गया कि मेरी हमारे समय के कठिन समय से मुठभेड़ होने वाली है, कि मुझे सावधान की मुद्रा में इस उपन्यास को पढ़ना पढ़ेगा। पूत के पाँव पालने में दिखते हैं तो अच्छी कृति के पाँव उसके आरंभ में दिख जाते हैं। उपन्यास यदि आपको अपने कथारस के साथ आपकी आँखों में आँखें डाल आरंभ में ही स्पष्ट कर दे कि सावधान पाठक मैं तुम्हारे अंदर बेचैनी की परतें बिछाने वाला हूँ तो सजग पाठक को समझ आ जाता है कि यह कृति उसके लिए पाठशाला बनने वाली है। सुधा ओम ढींगरा के पहले उपन्यास 'नक़्क़ाशीदार केबिनेट' पर मैंने लिखा था-''नक़्क़ाशीदार केबिनेट' में आए टॉरनेडो का साकार रूप तो कुछ पृष्ठों में अपनी उपस्थिति दर्ज कर गुज़र जाता है पर निराकार रूप में यह टॉरनेडो पूरे उपन्यास में उपस्थित है। इस छोटे से उपन्यास में विचार एवं चिंतन के लिए बहुत कुछ भरा हुआ है। पाठक कथा के आनंद के साथ- साथ चिंतन में भी डूबता उतरता है।'' वहाँ साकार और निराकार था तो इस उपन्यास में दृश्य और अदृश्य है। इस उपन्यास में भी आपको सुधा ओम ढींगरा की विशेषता मिलेगी -विचार एवं चिंतन के लिए बहुत कुछ भरा हुआ है। पाठक कथा के आनंद के साथ- साथ चिंतन में भी डूबता उतरता है। उनकी इसी विशेषता के कारण पाठक को, कम से कम मुझ जैसे पाठक को सावधान की मुद्रा में बैठना ही पड़ता है।

'दृश्य से अदृश्य का सफ़र' आंरभ किया तो समझ आ गया कि इसका कथानक रस तो देगा पर मेरे मस्तिष्क को झकझोरेगा भी। समझ आ गया कि मानव जीवन की बेहतरी से जुड़े अनेक प्रश्न मुझसे मेरा उत्तर माँगेंगे और मुझे अपने अंदर झाँकने को विवश करेंगें। पृष्ठ १२ पर ही मानवीय सभ्यता के निरंतर क्षरण पर एक भ्रष्टाचार के दैत्य का एक बहुत बड़ा सवाल पाठक के समाने आ खड़ा होता है और उसे चुनौती देने लगता है।

'सड़कों पर कोई कार दिखाई नहीं दे रही। वहाँ पर बिखरी उदासी उनकी कार के अंदर प्रवेश कर उनके चेहरों पर छा गई। दोनों ने गहरी साँस ली और कार वापिस मोड़ ली।'

'क्या कभी सोचा था, हँसते-खेलते शहर वीरान हो जाएँगे?'

'अजीब-सी घुटन महसूस होती है। अनहोनी का डर सबके चेहरों पर नज़र आ रहा है.... क्या कहर बरपा है !'

'लुक एट द नेचर, हाउ हैप्पी शी इज़।' (प्रकृति को देखो, कितनी खुश है)

'वह रोई भी बहुत है... हमने उसकी फ़रियाद नहीं सुनी। आज हम रो रहे हैं, वह क्यों सुने?'

इसके बाद फिर कार में ख़ामोशी फैल गई। वे अचानक बोलते हैं और अचानक चुप हो जाते हैं। कार में चुप्पी का कोहरा-सा छा गया।

वातावरण में व्याप्त असुरक्षा, अनिश्चय और अनजाना भय इस तरह कुंडली मार कर बैठ गया है कि उसका प्रभाव मानव हृदय पर भी पड़ा है। सबके चेहरों पर बेचैनी झलक रही है। कार में बैठे वे दोनों भी शायद चारों ओर फैली परेशानी का शिकार हैं। शॉपिंग सेंटर, कंपनियाँ, दफ़्तर, स्कूल, कॉलेज, रेस्टोरेंट, सलून सब कुछ बंद है, खुले हैं तो बस ग्रोसरी स्टोर। सब काम घरों से हो रहे हैं। यहाँ तक कि बच्चे भी घर से ही ऑनलाइन पढ़ रहे हैं।

कार में छाई चुप्पी को चीरती एक स्त्री आवाज़ उभरी- ''पूरे विश्व की हवाओं में 'अदृश्य शक्ति' की छाया लहरा रही है, जो मानव जाति के तन, मन और मस्तिष्क को उत्तेजित कर रही है। 'अदृश्य शक्ति' जो मानव जाति के पूरे अस्तित्व को निगल रही है...देखा, आज ग्रोसरी स्टोर पर क्या हुआ। वह 'अदृश्य ताक़त' जो अजेय बन कर उभर रही है, मानव की पहुँच से बाहर है, जिसे न खोजा जा पा रहा है, न वह पकड़ में आ रही है और न ही उसे मिटाने की कोई तरक़ीब सूझ रही हैं।''

पुरुष आवाज़ भी सुनाई दी- ''तरक़ीब ढूँढ़ भी लें पर यह 'अदृश्य ताक़त' पूरी तरह मिटेगी नहीं। आदि काल से ही 'अदृश्य शक्तियाँ' मानव जाति के लिए चुनौती रही हैं। यह सोचने का विषय है कि एक 'अदृश्य' शक्ति को पाने, उसमें डूबने और उसे जानने के लिए मानव जन्म-जन्मांतर तक भटकता रहता है और ऐसी कई नई व्यापी 'अदृश्य ताक़तों' को मिटाने के लिए वह जी जान से जुटा रहता है....''

इसे पढ़ने के बाद एक हताशा, अवसाद और गहरी निराशा जैसे जकड़ लेती है। इसे पढ़ने के बाद, बहुत पहले पढ़े अल्बैर कामू के 'प्लेग' के पृष्ठ दर पृष्ठ खुलने लगते हैं। 'प्लेग' के भी तो शुरुआती लगभग साढ़े तीन अध्याय इसी हताशा, अवसाद और गहरी निराशा से भरे हैं। '' --कस्बे को सील कर दिया गया है। शहर के फाटक बंद हैं, रेल यात्रा प्रतिबंधित है, और सभी मेल सेवा निलंबित हैं। टेलीफ़ोन लाइनों का उपयोग केवल "अत्यावश्यक" कॉल तक ही सीमित है, छोटे टेलीग्राम को शहर के बाहर दोस्तों या परिवार के साथ संवाद करने का एकमात्र साधन के रूप में छोड़ देता है। अलगाव दैनिक गतिविधि को प्रभावित करता है और शहरवासियों की भावना को दबा देता है, जो अलग-थलग और अंतर्मुखी महसूस करने लगते हैं, और प्लेग विभिन्न पात्रों को प्रभावित करना शुरू कर देता है। ।

अगस्त के मध्य में स्थिति और ख़राब होती जा रही है। लोग शहर से भागने की कोशिश करते हैं, लेकिन कुछ को सशस्त्र संतरी द्वारा गोली मार दी जाती है। छोटे पैमाने पर हिंसा और लूटपाट शुरू हो जाती है, और अधिकारी मार्शल लॉ घोषित करके और कर्फ्यू लगाकर जवाब देते हैं। अंतिम संस्कार अधिक गति के साथ किए जाते हैं, कोई समारोह नहीं होता है और मृतक के परिवारों की भावनाओं की थोड़ी चिंता होती है। निवासी निर्वासन और अलगाव की अपनी बढ़ती भावनाओं को निष्क्रिय रूप से सहन करते हैं। निराश होकर, वे भावनात्मक रूप से और साथ ही शारीरिक रूप से बर्बाद कर देते हैं।"

कितना भी भयानक वर्तमान हो, कितनी ही निराशाजनक परिस्थितियाँ, मानवीय समाज की बेहतरी चाहने वाला लेखक अपने पाठकों को गहनतम अँधेरे से बाहर निकालता है। कामू ने नोबेल पुरस्कार ग्रहण करते समय अपने उद्बोधन में कहा था-लेखक का कार्य उन लोगों का हित साधना नहीं जो इतिहास को रचते हैं, बल्कि उसे ऐसे लोगों के पक्ष में खड़ा होना है, जो इतिहास से उत्पीड़ित हैं।' संभवत: यही कारण है कि संकट में एकजुटता 'प्लेग' की बड़ी थीम है। सुधा ओम ढींगरा भी इसी सोच की लेखिका हैं और अपनी सकारात्मक सोच को वे आरंभ में ही अपने पात्रों के द्वारा रेखांकित कर देती हैं। उनके पात्र रवि भार्गव और लता भार्गव मानते हैं कि सकारात्मक और नकारात्मक ऊर्जाएँ जब टकराती हैं तो उनके संघर्ष में मानव जाति का बेहद नुकसान होता है, बहुत कुछ नष्ट होता है, पर अंततः ज्ञान तो यह मिलता है कि वेदों का दर्शन समझ आ जाए तब शरीर के सकारात्मक अदृश्य की ताकत का अहसास होने पर शरीर को समझना आसान हो जाए। जब यह समझ मिल जाती है तो नकारात्मक सोच अदृश्य होने लगती है और सकारात्मक सोच एक मज़बूत हिस्सा बन जाती है। तभी हम लेखिका की इस सोच से सहमत हो पाते हैं---'' पूरा विश्व दो ही शक्तियों पर टिका है, सकारात्मक और नकारात्मक। दोनों ही मनुष्य के अंदर समाई हैं। सकारात्मक ऊर्जा ही उस अंतिम सत्य की ओर लेकर जाती है, जिसे कुछ लोग बाहर से भीतर खोजते हैं, कुछ उसे भीतर से बाहर तलाशते हैं और कुछ बस भीतर ही उसमें खो जाते हैं। पथ सभी कठिन हैं। बाहरी दुनिया में दिखाई देने वाले रास्ते, तरह-तरह के दर्शन, मीमांसा की भीड़ में खोया मानव अपने भीतर के अंतिम सत्य को पहचान ही नहीं पाता। हर मानव का अंतिम सत्य अदृश्य ही बना रहता है।'' अदृश्य ही बना है।

इस उपन्यास में उस समस्त ख़राब का चित्रण है जिसने हमारे समय को विषाक्त किया है। इसमें कठिन समय में खेली जाने वाली डर्टी पॉलिटिक्स है जो निज हितार्थ अनेक षड्यंत्र रचती है। रवि और लता दोनों डॉक्टर हैं तो उनका बेटा रविश और बहू अंकिता भी डॉक्टर हैं जिनकी ड्यूटी कोविड वार्ड में लगी है। उनकी बेटी लतिका और उसका पति भारत भी डॉक्टर हैं। अब समझ सकते हैं कि इस भयावह बिमारी की इस उपन्यास में फर्स्ट हैंड नॉलेज है। रिटायरमेंट लेने के बाद भी अपना डॉक्टरी कर्त्तव्य निभाने को तत्पर निडर डॉ. लता का अपने आशांकित पुत्र के साथ संवाद में उभरी यह सोच आप भी देखें—

मोबाइल घूँ...घूँ करने लगा। साइलेंट मोड पर था। रविश का नाम उभरता देख कर मुस्करा पड़ीं। फ़ोन उठाते ही बोलीं 'हाँ बेटा, कैसे हो ? सब ठीक है। अंकिता कैसी है ?'

'मॉम, आपने डैड को क्यों जाने दिया ?'

'बेटा, अगर हम लोग रिटायर नहीं हुए होते तो ? देखते न सब मरीजों को। वही तुम्हारे डैड अब करेंगे।'

'फ़र्क़ है मॉम ! आपके शहर और रैक्स हॉस्पिटल के मुकाबले न्यूयार्क मरीज़ों और डॉक्टरों के लिए इस समय किलिंग स्ट्रेट बन गई है। लतिका और अंकिता तो बहुत ही घबरा गई हैं।'

'किलिंग स्ट्रेट तो कैलिफ़ोर्निया भी है बेटा और तुम दोनों कोविड पेशेंट ही देख रहे हो। हमें कितनी चिंता है। चिंता होनी स्वाभाविक है।'

'पर मॉम हम लोग यंग हैं। हमने कभी आप दोनों को एहसास नहीं दिलवाया पर हम चारों चाहते थे आप दोनों रिटायरमेंट ले लें और बाक़ी जीवन का भरपूर मज़ा लें। सारी उम्र आप दोनों ने बहुत काम किया है।'

'बेटा, उम्र की बात मत करो। यह वायरस उम्र नहीं देखता। तुम भी जानते हो।''

'दृश्य से अदृश्य..' के इस सफर में डॉक्टर के जीवन में कोरोना का वर्तमान है तो उसके डॉक्टरी जीवन का अतीत भी है। डॉ. लता को डायरी लिखने में बेहद रुचि है। डायरी में विशेष केसेज़ के नोट्स किसी कहानी की तरह लिखे हैं। उनके लिए रोगी की केस हिस्ट्री में सहायक होती है। लता अपने जीवन में आए मरीज़ों को भिन्न- भिन्न पात्र और चरित्र समझती है। मरीज़ों के नाम बदल दिए हैं ताकि उनकी निजता कायम रहे। अमेरिका के लोक संगीत की सौंदर्य सम्पन्न गायिका डॉली पार्टन, जो अब समाज सेविका बन गई है, उसका नाम एक कहानी की मुख्य पात्र को दिया गया है; क्योंकि वह उसी की तरह सुंदर और लोक गीत गाती थी। भारत में सुसराल द्वारा ठगी जाती है, जेठ और देवर उसका सामूहिक बलात्कार करते हैं और अमेरिका आकर पति उसका शोषण करता है। विक्षिप्त मानसिक स्थिति में वह डॉ. लता से मिलती है और उनकी मदद से उसका तलाक होता है, और वह नए सिरे से अपना जीवन आरम्भ करती है। तीन बच्चों की माँ बनकर अमेरिका में सुखी जीवन व्यतीत करती है। वह दृढ-इच्छा शक्ति वाली सकारात्मक सोच की लड़की थी; इसलिए गहरी चोट खाकर भी उठ खड़ी हुई।

इसमें सायरा की बेहद दर्दीली व्यथा है। सायरा की बेस्ट फ्रेंड संदेशवाहक बन अपने स्वार्थ का बेस्ट खेल खेलती है और जिस राजनेता के लड़के से कभी बात नहीं हुई, अपना स्पेस बनाने के लिए उसे उसका शत्रु बना देती है। उसकी बेस्ट फ्रेंड ही उसे चुनाव का गंदा खेल खिलाती हैं और उसके जीत जाने पर हारे लड़के से तेज़ाब फिंकवाती है। विदेश में इलाज कराने आई सायरा को जब दो वर्ष बाद, उसके खेल का पता चलता है तो बदले से भर जाती है। लाइलाज सायरा डॉ. लता की सकारात्मक सोच वाली काउंसलिंग से पुन:स्वस्थ होती हैं।

आशा है अब तक मेरा थोड़ा-बहुत कहा आपको उपन्यास पढ़ने को उत्सुक कर चुका होगा। अत: उपन्यास के जो पन्ने अभी भी शेष हैं उन्हें आपके लिए छोड़ता हूँ। अंतत: पुन: अल्बैर कामू पर लौटता हूँ। लेखक के उद्देश्य पर कामू ने एक बहुत बढ़िया बात कही है। वे कहते हैं- The purpose of a writer is to keep civilization from destroying itself.

निश्चित ही किसी भी लेखक का उद्देश्य स्वयं को नष्ट कर रही मानव सभ्यता को नष्ट होने से बचाना है। मुझे यही सोच सुधा ओम ढींगरा की लगती है। इस उपन्यास के मुख्य पात्र चिकित्सक हैं पर यह उपन्यास समाज को सकारात्मक सोच से भरने वाले चिकित्सक का काम करेगा और स्वयं को नष्ट करने में संलग्न मानव सभ्यता को नष्ट होने से बचाएगा।

000

स्त्री उपेक्षा, स्त्रियों का दर्द

तरसेम गुजराल

साल २०२१ में भी महामारी करोना ने विश्व भर में आतंक मचाए रखा। भारत देश भी इस महामारी के व्यापक नुक़्सान से नहीं बच पाया। लाखों बेशकीमती जानें चली गईं। लाखों लोगों का रोज़गार छिन गया। मज़दूर वर्ग पर भी मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा। जब सब कुछ बंद था, उनकी रोज़ी-रोटी का संकट गहराना ही था। यों आपदाएँ और महामारियाँ आती रही है, परंतु सभ्यता संस्कृति का भारी नुकसान उठा कर भी आगे ही बढ़ती रही है। जैसा कि सुधा ओम ढींगरा के २०२१ में ही छप कर आए उपन्यास 'दृश्य से अदृश्य का सफ़र' में दर्ज है, उपन्यास के पात्र डॉ.रवि, डॉ. लता जोकि उनकी पत्नी है,से कह रहे हैं- 'ऐसा संकट, ऐसी महामारी, ऐसी संकटकालीन परिस्थितियाँ पहले भी आई थीं, जिन्होंने मनुष्य जीवन को झकझोर कर रख दिया था। चौदहवीं सदी में इंग्लैंड की''ब्लैक डेथ''जिसमें एक तिहाई आबादी मारी गई थी। सोलह सौ सैंतालीस सदी का पीला बुखार का प्रकोप ''इसी तरह १८७८ में अमेरिका की मिससीसिपी नदी की घाटी में बीस हज़ार लोगों का मरना। हैज़ा, इन्फ्लूएंजा से हुए भारी नुक़्सान आदि। परंतु मनुष्य ने सदा साहस पूर्वक ऐसे बड़े हादसों का सामना किया है और जीवन पथ पर आगे बड़ा है। सौ साल पहले (१९१८-२०) में फैले 'स्पेनिश फ़्लू' में पूरी दुनिया में पाँच करोड़ लोग मरे थे।

कोरोना महामारी ने तो विश्वव्यापी गैरबराबरी को भी उजागर कर दिया है। लॉक डाउन में हालात और भी बदतर हुए। साहित्यिक पुस्तकों का प्रकाशन भी प्रभावित हुआ। लिहाज़ा जिस मात्रा में उपन्यास पहले छप कर आते थे उस तरह नहीं आ पाए। रचनाकार अपने समय, अपने समाज के दुख दर्द का साक्षी होता है। हिन्दी उपन्यासकारों ने कभी भी अपने दायित्व से मुँह नहीं चुराया।

सुधा ओम ढींगरा का उपन्यास 'दृश्य से अदृश्य का सफ़र' भी इस महामारी से उत्पन्न हुई परिस्थितियों पर केंद्रित है। सुधा जी अमेरिका से हैं परंतु उनका पूरा ध्यान भारत की तरफ रहता है। मूलत:वे भारतीय ही हैं सो इस उपन्यास में भी भारतीय पात्रों का आना - जाना चलता रहता है। उपन्यास की मुख्य पात्र डॉ. लता है; जिसे पूँजीवादी प्रलोभनों और लालसाओं ने खंडित नहीं किया। वह पहले एक संवेदनशील इंसान है फिर कुछ और। उसे सुधा जी ने एक लेखक का मन दिया है। वह कुदरत से प्रेम करने वाली, अपने मरीज़ों के दर्द की पड़ताल कर हमदर्दी से उनका

उपचार करने वाली डॉक्टर के रूप में सामने आती हैं। कुछ विशेष मरीज़ों की केस हिस्ट्री डायरी के रूप में अंकित करती हैं। उपन्यास कोरोना के हालात के बीच भारत से विभिन्न परिस्थितियों में अमेरिका गई महिलाओं की पीड़ा से साक्षात्कार करवाता चलता है। इस के लिए डॉ. लता मनोविज्ञान का सहारा भी लेती हैं। महिलाओं का वास्तविक दर्द जानने के लिए उनके भीतरी अँधेरे कोने का साक्षात्कार अनिवार्य हो जाता है। सो उपन्यास कोरोना महामारी, स्त्री उपेक्षा, मनोविज्ञान के तनाव बिंदुओं से टकराता चलता है। यह जीवन का अनुभव जन्य प्रस्तुतिकरण है, इस जटिल यथार्थ से जूझते हुए वन डायमेंशनल नहीं रह पाता।

भारत से आई स्त्रियाँ पुरुष आखेटक की शिकार होती हैं। वे भाँति-भाँति के तरीके से शिकार करते हैं। जैसे स्त्री देह से आगे कुछ भी नहीं। प्रलोभन से, छल से, डरा कर मार-पीट कर अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं, इस तिरस्कार से आहत हुई स्त्री के मन की भीतरी तह तक पहुँच कर डॉ. लता उन्हें जीवन संग्राम में जूझने के लिए पुन: तैयार करने में मदद करती हैं, जोकि एक गंभीर, समर्पण और मानवीय कर्म है। डॉ. लता ने सदा परिवार को एक यूनिट माना। बेशक उसका जीवन जीने का अपना तरीका होता है।

डॉ. लता उन्हीं केसों के बारे में नोट्स लेती हैं, जो विशेष और अलग हों, जिनसे उन्हें अद्भुत अनुभव हुए हों। पहला केस डॉली पार्टन नाम से डायरी में खुला। जो नब्बे के दशक तक अमेरिका के लोक संगीत की गायिका थीं और बेहद ख़ूबसूरत भी। उसी के नाम पर केस की मरीज़ का नाम रखा गया। मरीज़ की निजता के तहत ऐसा किया गया था। मरीज़ भी बेहद ख़ूब सूरत थी और लोक गीत गाने वाली थी। उसके पति को बाहर भेज कर डॉक्टर ने उसे अपनी बहन या दोस्त मान कर सहजता का व्यवहार करने का अवसर दिया। जिसने कहा कि उसे बचा लिया जाए, पागलखाने भेज दें या अस्पताल में दाखिल करवा दें किंतु पति के साथ न भेजें। डॉक्टर ने मामले की तह तक जाने की कोशिश की तो पता चला कि उसकी हालत बहुत ख़राब है। उससे बार-बार सामूहिक बलात्कार किया गया है। मार-पीट भी हुई है। मिस्टर हुड्डा उसके पति हैं जो पत्नी पर कम परिवार के लोगों पर अधिक विश्वास करते हैं। डॉक्टर के बहुत पूछने पर ही बताया कि उससे रेप किया जाता रहा है,और उसके जेठ तथा दो देवर इसके लिए ज़िम्मेदार हैं। इसी तरह दूसरा केस सायरा का है और तीसरा एक अनाम महिला का। पहले दोनों नाम वास्तविक नाम नहीं है। डॉ. लता द्वारा चेहरे-मोहरे की कुछ मिलती-जुलती खूबियाँ देखते हुए ये नाम दिये गए। महिला नम्बर एक जिसकी इज़्ज़त उसके जेठ और देवरों ने लूटी, का चेहरा अमेरिका की प्रसिद्ध गायिका से मिलता-जुलता लगा सो उसे डॉली पार्टन का नाम दिया। दूसरी महिला उन्हें हिन्दी फिल्मों की सायराबानो जैसी लगी तो उसे सायरा नाम दे दिया गया। वैसे कहा भी गया है कि नाम में क्या रखा है। महिलाएँ पितृसत्तात्मक कारणों से अपना-अपना अभिशाप ढो रही है। बलात्कार का तो मतलब ही यही है कि सामने वाले को अपनी क्रूरता से कुचल देना, उसे गया गुज़रा साबित करना। बेशक इस दमन की प्रतिक्रिया बहुत खतरनाक स्तर की होती है,जो या तो महिला को पत्थर बना देती है या प्रतिकार करने के लिए हिंसक। व्यक्तित्व का विघटन तो होता ही है, संतुलन भी नहीं रह पाता। जैसा कि उपन्यास में पहली महिला का व्यवहार दिखाया गया है, जिसने अमानवीय हरकतों को अपनी देह, अपनी आत्मा, अपने पूरे वजूद पर झेला है। वह अपना संतुलन खो बैठती है। लता ने उसकी खामोशी तोड़ने के लिए पहले ही कह दिया था-"जब तक तुम अपनी तरफ की कहानी नहीं बताओगी, वह ऐसा करता रहेगा। तुम कटघरे में खड़ी रहोगी। सदियों से आदमी यही करता आया है। औरत उसके पाप ढकती है और वह सच्चा,साफ़,सुथरा होकर निकल जाता है। कटघरे में औरत ख़ुद आ जाती है।" औरत की मजबूरी यह भी होती है कि किस बिरादरी के पास जाए? बिरादरी उसे ही दोषी ठहराने वाली है। सायरा की फाइल जब सामने आई थी तब वहीं लिखा था-बदले की भावना बड़ी उग्र है।कारण?..मानसिक और शारीरिक आघात। वह भी भारत से आई थी। दिल्ली में जन्मी इस लड़की को पापा के दुलार ने बिगाड़ दिया था। जिसे कॉलेज में जाकर सहेली ने ही धोखा दिया और चुनाव जीतने के बाद गंदी राजनीति के कारण एसिड अटैक झेलना पड़ा।

डॉ. लता ने ऐसी पीड़ित महिलाओं को उनके मानसिक अंधकार से निकाल कर जीवन नए सिरे से जीने को प्रेरित किया। दूसरी गाथा कोरोना के कारण बिगड़े हालात की है। वह उपन्यास का वर्तमान है। उसके पति रिटायर होकर भी इस संकट में भारी संख्या में आ रहे रोगियों के उपचार हेतु अस्पताल जाते हैं। डॉ. लता ख़ुद सक्रिय रह कर कोरोना के कारण परेशान लोगों की मदद करने को हर वक्त तैयार रहती हैं।

उपन्यास का मानवीय पक्ष छुपा नहीं रहता। स्त्री उपेक्षा, स्त्रियों का दर्द समय की चीख बन कर सवाल पूछता है। इन दोनों सूत्रों को संतुलित ढंग से प्रस्तुत करना उपन्यासकार की सफलता है, जिसे अंकित करने में आलोचना का कोई नुक़सान नहीं होगा।

000

सकारात्मक दृष्टिकोण

डॉ. सीमा शर्मा

'दृश्य से अदृश्य का सफ़र' उपन्यास का शीर्षक पढ़ने के बाद पाठक मन में कई जिज्ञासाएँ एक साथ जन्म लेती हैं कि इस उपन्यास में दृश्य से अदृश्य सफ़र की बात लेखक ने की है, तो यहाँ दृश्य क्या है और अदृश्य क्या? पुस्तक पढ़ते हुए पाठक की दृष्टि, लेखक द्वारा किये समर्पण पर जाती है जहाँ लिखा है "सकरात्मक ऊर्जाओं को, जिन्होंने हर युग के अशांत समय में मानवता को बचाए रखा....." पाठक अभी भी प्रश्नाकुल है। वह कहानी में प्रवेश करता है और पाता है यह तो अपना ही यथार्थ है जिसे हम दैनंदिन जीवन भोगने के लिए विवश हैं अर्थात् कोरोना अर्थात् अदृश्य। इस अदृश्य शक्ति ने जिस तरह पूरे विश्व में आतंक मचाया उसे हम सभी ने भलीभाँति अनुभूत किया है। वातावरण में व्याप्त असुरक्षा,

अनिश्चय और भय का प्रभाव मानव हृदय पर भी पड़ा है। लेखक ने इसी बेचैनी व विवशता को अभिव्यक्त करने प्रयत्न किया है। लेखक के शब्दों में- "पूरे विश्व की हवाओं में 'अदृश्य शक्ति' की छाया लहरा रही है, जो मानव जाति के तन, मन और मस्तिष्क को उत्तेजित कर रही है। 'अदृश्य शक्ति' जो मानव जाति के पूरे अस्तित्व को निगल रही है...."

इस अदृश्य शक्ति के बहाने सुधा ओम ढींगरा ने वैश्विक महामारी व संकट की परिस्थितियों के ऐतिहासिक विवरणों को भी पुस्तक में अंकित किया है और बताने का प्रयास किया है कि इस अदृश्य नकारात्मक शक्ति का यह प्रहार पहली बार नहीं हुआ बल्कि भूतकाल में ऐसे कई प्रहार मानव जाति ने झेले हैं और विजय भी पाई है। फिर चाहे 'ब्लैक डेथ', 'पीला बुखार', 'इनफ्लुएंजा', 'स्पेनिश फ्लू', 'एड्स' हो या इबोला वायरस या कोई अन्य। इन अदृश्य नकारात्मक शक्तियों ने मानव जाति को झकझोर कर रख दिया किन्तु अन्ततः विजय सकारात्मकता की ही हुई। सुधा ओम ढींगरा के साहित्य में हमें यह विशेषता देखने को मिलती है कि वह नकारात्मक शक्तियों की बात तो अवश्य करती है किंतु वे पाठक के मन में नैराश्य नहीं पनपने देतीं। उनके साहित्य में विजय सकारात्मकता ही होती है और निरंतर सकारात्मक बने रहने का संदेश उनकी रचनाओं में हमें प्राप्त होता है।

सुधा ओम ढींगरा के उपन्यास 'दृश्य से अदृश्य का सफ़र' की कथा डॉ.लता उनके पति डॉ. भार्गव व इनकी संतानों के माध्यम से आगे बढ़ती है और कोरोना वैश्विक महामारी के वे सभी दृश्य सजीव हो उठते जिन्हें लगभग हम सब ने अनुभव किया है। प्रस्तुत उपन्यास में कोरोना की कथा एक सूत्र के रूप में है जो न केवल उपन्यास की तीनों कहानियों को आपस में जोड़ती है बल्कि इस स्थिति में भारत जैसे विकासशील देश और अमेरिका जैसे विकसित देश का तुलनात्मक अध्ययन भी हमें देखने को मिलता है। किस तरह से एक विकसित देश का केवल उजला चेहरा ही हम देखते हैं जबकि उसके कुछ स्याह पक्ष भी हैं। उदाहरण के रूप में अमेरिका जैसे विकसित देश की चवालीस प्रतिशत आबादी 'डेली वेजिज़ अर्थात् दिहाड़ी मज़दूरी पर है। इस वैश्विक महामारी की अवधि में बिना दिहाड़ी के उनके दर्द, पीड़ा, मानसिक तनाव, उनकी घरेलू समस्याएँ कितनी बढ़ गई हैं। कई घरों में कंप्यूटर नहीं है उनके बच्चे स्कूल की ऑनलाइन कक्षाएँ नहीं ले पा रहे हैं क्योंकि पर्याप्त सुविधाएँ नहीं हैं। एक तरह से यह उपन्यास हमें सोचने की नई दिशा प्रदान करता है।

उपन्यास के दो अध्याय तक लगता है जैसे कोरोना काल की कोई कथा है किंतु पाठक का यह भ्रम भी जल्दी ही टूट जाता है। तब कथा एक नया मोड़ लेती है और पता चलता है कि दृश्य- अदृश्य की आँख मिचौनी में लेखक हमें मन की गूढ़ गुफाओं की ओर ले जाना चाहता है। मन के कई ऐसे रहस्य जो साधरणतः अबूझ ही बने रहते हैं। मनोविशेषज्ञ डॉ. लता इस उपन्यास की मुख्य पात्र है जो लेखक के विचारों की प्रतिनिधि भी है। कहती है कि मस्तिष्क की कई स्थितियाँ और मनोविकार डॉक्टरों की पहुँच तथा दवाइयों के असर से भी बाहर हो जाते हैं, जैसे उन्हें कोई और नियंत्रित कर रहा है। उनकी मानसिक दशा पर, विश्वास से कुछ नहीं कहा जा सकता। ऐसे में डॉ. लता को यह जिज्ञासा होती है कि मनोरोगों से पीड़ित और मस्तिष्क के अंधेरे कोने में गुम हुए रोगियों को क्या कोई और तत्व भी प्रभावित करता है। ऐसे में उन्हें क्रिस स्मिथ की बात याद आती है जिन्होंने एक कॉन्फ्रेंस में कहा था "सौरमंडल के कुछ ग्रह मनुष्य के मस्तिष्क पर प्रभाव डालते हैं।" डॉ. लता सोचती हैं कि ऐसे कौन से ग्रह हैं जो धरती पर बसे प्राणियों के जीवन को प्रभावित करते हैं। इसीलिए सेवानिवृत्ति के बाद वह ज्योतिष और हस्तरेखा का अध्ययन भी करना चाहती हैं। विज्ञान और तकनीक के इतने विकसित हो जाने पर भी न जाने कितने रहस्य हैं जो बने हुए हैं? कितने भी सुलझा लें इस तरह के रहस्य सदैव बने ही रहेंगे। इसके अतिरिक्त विज्ञान के दुरपयोग पर की गई सुधा ओम ढींगरा की टिप्पणी भी विचरणीय है – "प्रौद्योगिकी और औद्योगिकी से संपन्न इस युग में नकारात्मक सोच वालों को बायोलॉजिकल वार एक हथियार मिल गया है। सरहद के शत्रु तो नज़र आते हैं पर बायोलॉजिकल वार का शत्रु अदृश्य होता है। किसी भी देश को कमज़ोर करने के लिए सैनिक युद्ध के साथ यह एक ताकतवर हथियार है। जिससे किसी भी देश के वासियों और देश की अर्थव्यवस्था को नुकसान किया जा सकता है। इस समय तो पूरा विश्व दोनों संकटों से जूझ रहा है।" कोविड-१९ के रूप में आई वैश्विक महामारी को लेकर विश्वभर ऐसे कई प्रश्न उठ रहे हैं।

'दृश्य से अदृश्य का सफ़र' उपन्यास को मनोवैज्ञानिक उपन्यास श्रेणी में रखा जा सकता है। मनोवैज्ञानिक उपन्यास पात्रों और परिस्थितियों की स्थूल कथा न होकर परिस्थितियों और मानसिक घात-प्रतिघात में फँसे पात्रों का मनोविश्लेषण होता है। 'दृश्य से अदृश्य का सफ़र' की कथा बाह्य जगत् की कथा न होकर पात्रों के मानसिक जगत् की कथा है। इस उपन्यास में तीन नायिकाओं की तीन अलग-अलग कहानियाँ हैं। पहली डॉली पार्टन जो हरियाणा की एक नर्स और दूसरी स्त्री पात्र है सायरा बानो जो दिल्ली विश्वविद्यालय की छात्रा थी और तीसरी पात्र है रानी एक दक्षिण भारतीय लड़की। वस्तुतः उपन्यास में तीनों स्त्री पात्रों डॉली पार्टन, सायरा बानो और रानी को काल्पनिक नाम दिए गए हैं। क्योंकि यह मनोचिकित्सा का सिद्धांत है कि रोगी का परिचय उसके मूल नाम से नहीं किया जाता है।

इन तीनों स्त्रियों की कहानियाँ एक दूसरे से नितांत भिन्न हैं किंतु इनके बीच एक ऐसा सूत्र है जो इन्हें समीक्ष्य उपन्यास का अंग बना देता है। वह है इनका अपनी-अपनी परिस्थिति के वशीभूत होकर अमेरिका आना और अपनी चिकित्सा हेतु डॉ. लता के पास आना। उपन्यासकार नई-नई शिल्प विधियों का विनियोग कर सकता है; जो उसके भिन्न-भिन्न कोणों से देखने की दृष्टि को स्पष्ट करने में सहायक होती हैं। वस्तुतः उपन्यास की शिल्पविधि का निर्धारण मुख्यतः

उपन्यासकार की दृष्टि एवं दृष्टिकोण पर ही निर्भर होता है। उपन्यास रचना में जिस प्रक्रिया से लक्ष्य तथा संवेदना अनुभूति उसके तत्वों, कथानक, पात्र, वातावरण आदि में परिणत हो, वही औपन्यासिक रूप का निर्माण करते हैं और वही उसकी शिल्प विधि है।

डॉली पार्टन, सायरा बानो और रानी इन तीनों की कहानी ऐसी हैं जिन्हें तीन स्वतंत्र कहानियों के रूप में भी लिखा जा सकता है। लेकिन लेखक ने कहानियों को मिलाकर उपन्यास के रूप में बुना है तो इसका कोई-न-कोई प्रयोजन है। और मुझे लगता है इसका प्रयोजन भिन्न-भिन्न मनोवैज्ञानिक दशाओं को एक स्थान पर लाकर, उनका अध्ययन कर उनके निवारण का प्रयास है। "कई बार रोगी मानसिक विकारों से पीड़ित दिखाई देता है, यही समझा जाता है कि मानसिक रोगी है, पर यह सब अक्सर बाहरी होता है। भीतर कहीं गहरे उस विकार का संबंध कभी-कभी अतीत से होता है। ऐसे में अतीत खँगालना पड़ता है। जड़ को निकालने के लिए खोदना पड़ता है। ऐसे रोगियों के मन पर वर्षों से भार पड़ा होता है, किसी से बाँटा या साझा नहीं किया होता और बोझ निराशा में बदल जाता है। निराशा से शरीर में नकारात्मक रसायन बनने शुरू हो जाते हैं। धीरे-धीरे ये रसायन मात्रा में अधिक हो जाते हैं और मस्तिष्क का संतुलन बिगड़ जाता है।" इसका उदाहरण समीक्ष्य उपन्यास की एक प्रमुख पात्र डॉली पार्टन है। नब्बे के दशक की अमेरिकी लोक गायिका डॉली पार्टन जैसी अनन्य सुंदरी लेकिन उसने अपने शरीर और मन पर जो यातना झेली, उसने डॉली के शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक स्वास्थ्य बिगाड़ कर रख दिया।

एक अयोग्य और अपराधी प्रवृति वाले पुरुष के द्वारा किये गए विवाह निवेदन को अस्वीकार करना उसके लिए कितना भारी पड़ा था। किन्तु उसकी दृढ़ इच्छाशक्ति, सकरात्मक सोच, जीवन के प्रति आस्था और विश्वास उसे टूटने नहीं देता। वह सम्पूर्ण संभावनाओं से युक्त, अन्याय के विरुद्ध लड़ने के लिए तत्पर है। डॉली अपनी हिम्मत के सहारे और कथा नैरेटर डॉ. लता के सहयोग से न केवल मानसिक द्वंद्व से बाहर आती है वरन् सकारात्मक सोच और हिम्मत के बल पर अपने जीवन में भी सफलतापूर्वक आगे बढ़ती है।

उपन्यास में आई दूसरी कथा की प्रतिनिधि पात्र 'सायरा बानो' की कहानी डॉली पार्टन से भिन्न है। वह दिल्ली विश्वविद्यालय की मेधावी छात्रा रही। सायरा की कहानी के माध्यम से लेखिका ने मानव व्यवहार के कई बिंदुओं को स्पर्श किया है। इकलौती संतान के प्रति माता-पिता का अत्यधिक स्नेह और अतिरिक्त देखभाल किस तरह उसके व्यक्तित्व पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकती है यह भी इस कहानी में देखने को मिलता है। बालक का अहम् कई बार इतना बड़ा हो जाता है कि वह अपने आस-पास की सच्चाई भी नहीं देख पाता। इस कहानी में प्रेम, सफलता और धोखा सब कुछ है। यहाँ तक कि उसे अम्ल-घात भी झेलना पड़ता है लेकिन देखने की बात यह है कि इस सब के बीच सायरा को क्या मिला? और किस तरह बदले की भावना में उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व ही बदल गया? सायरा की कहानी में बहुत कुछ साफ-साफ कहा गया है तो वहीं बहुत कुछ सांकेतिक रूप से।

यहाँ पर सायरा का एक कथन उद्धृत है- "छोटी-छोटी बातों पर उखड़ जाती हूँ। बस दिल करता है भारत जाऊँ और उन दोनों को उनके किये की सज़ा दूँ। मैं जानती हूँ ऐसा नहीं कर सकती। मम्मी कहती हैं, ईश्वर की लाठी बेज़ुबान होती है पर पड़ती बहुत ज़ोर से है। एक दिन देखना उन पर भी पड़ेगी। बदले की भावना से मैं अपने मन की शांति हो चुकी हूँ। मेरा चैन मिट गया है हर समय बेचैन रहती हूँ।"

मनोवैज्ञानिक उपन्यास में स्व-कथन का महत्त्वपूर्ण स्थान है, किसी पात्र की ध्वनि जो हमें उसके अन्तर्मन से परिचित कराती है, बिना लेखक की व्याख्या और टीका टिप्पणी के। 'दृश्य से अदृश्य का सफ़र' सायरा का स्व-कथन उपन्यास के अंत में इसका प्रमाण बन जाता है। ऐसे उपन्यासों का आस्वाद शृंखलाबद्ध कथावस्तु वाले उपन्यासों से भिन्न होता है। ऐसे उपन्यास एक समय की अनुभूति के रूप में नहीं पढ़े जाते बल्कि असंबंद्ध क्षणों की अनुभूति के रूप में पाठक पर प्रभाव डालते हैं। चेतना के विभिन्न स्तरों का विश्लेषण फ्रायड, एडलर, युंग आदि मनोवैज्ञानिकों ने किया है। इनमें मानसिक स्थितियों की अभिव्यक्ति मात्र शब्दों में नहीं, बिम्ब और प्रतीकों में होती है। इन उपन्यासों के लेखक रूढ़िगत परम्पराओं शिल्प और शैली की प्राचीन रूढ़ियों से मुक्त होकर साहित्य का सर्जन करते हैं। हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में 'दृश्य से अदृश्य का सफ़र' एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है जो अपनी कथावस्तु एवं शैली के कारण हिन्दी के अन्य मनोवैज्ञानिक उपन्यासों से नितांत भिन्न है।

समीक्ष्य उपन्यास में तीसरी कहानी दक्षिण भारतीय लड़की रानी की है। डॉली और सायरा की तरह रानी की कहानी में भी राजनीतिक सत्ता, अहम् जैसे तत्व तो हैं ही साथ ही उत्तर-दक्षिण का भेदभाव भी उभरकर आता है। यहाँ पर रानी का एक कथन को उद्धृत करना समीचीन होगा- "उस समय मेरे नन्ना हैदराबाद की राजनीति में सक्रिय थे। सत्ता में थे। साउथ की लड़की नॉर्थ के लड़के से कैसे प्यार कर सकती है? अपनी बिरादरी, अपनी पार्टी को क्या मुँह दिखाएँगे? मैं घर में बड़ी थी, नन्ना ने अपने अहम् की तुष्टि के लिए मेरी और मेरे प्यार की बलि दे दी। मैं बकरा बनी; अम्मा बहुत रोईं, इमोशनल ब्लैकमेलिंग की, मेरी तीनों छोटी बहनों की शादी कैसे होगी? भाई मुझसे छोटा है पर वह मेरे नन्ना की कार्बन कॉपी है। और अब सत्ता में है। हमारा प्रेम सब लोगों ने मिलकर गुनाह बना दिया..शादी के बाद मैं जल्दी ही अमेरिका आ गई। इसी शहर में बड़े से घर में.... पहले दिन से इस पहनावे में बाँध दी गई, यह कह दिया गया जो सासू माँ कहती है वही करो अन्यथा घर से निकाल दी जाओगी। सोचती थी, अमरीका में आकर कोई रास्ता ढूँढ़ लूँगी पर मेरा पति और सास इतने शातिर हैं सुबह साढ़े पाँच बजे से रात दस बजे तक साँस नहीं लेने देते। फिर रात को पति को संतुष्ट करो, जैसे वह चाहे। मैं पत्नी और बहू नहीं

दासी और नौकरानी लाई गई हूँ। विरोध करूँ तो दो चार थप्पड़ जड़ दिए जाते हैं।"

यहाँ दो दृश्य उपस्थित हैं एक भारत का और एक अमेरिका का, लेकिन रानी की दशा दोनों ही जगह अच्छी नहीं, लेकिन रानी टूटती नहीं है। सकारात्मक बनी रहती है। उसका सब्र तब टूट जाता है जब उसकी अपनी बेटियाँ उससे नफरत करने लगती हैं। ये सभी तत्व मिलकर रानी के जीवन को नारकीय बना देते हैं और उसे मनोविशेषज्ञ की आवश्यकता पड़ती है। सुधा ओम ढींगरा ने अमेरिका में ब्याही भरतीय लड़कियों की दुर्दशा का चित्रण कई अन्य कहानियों में भी किया है। समीक्ष्य उपन्यास की तीनों प्रमुख स्त्री पात्र- डॉली पार्टन, सायरा बानो और रानी की विशेषता है कि वे तीनों स्त्रियाँ सशक्त हैं परिस्थितियों से हार नहीं मानती हैं और न जीवन से न परिस्थितियों से, बल्कि अपनी पूरी शक्ति और सकरात्मकता के साथ संघर्ष करती हैं। और अंतत: जीतती हैं।

जैसी सोच होती है, वैसा ही सब कुछ नज़र आता है। नेगेटिव और पॉजिटिव सोच और भावनाएँ ही दृष्टिकोण बनाती हैं; क्योंकि उन्हीं के अनुसार मानव दृश्य में देखता है और अदृश्य के बारे में सोचता है। उदाहरण के रूप में डॉ. लता का एक कथन देखते हैं – "मौसम घुसपुसा है घुटा-घुटा उदास करने वाला पर उन्हें बहुत उत्साहित करके ऊर्जा से भरपूर करने वाला महसूस हो रहा है। उन्हें लग रहा है कि मौसम में बहुत रौनक है, उदासी नहीं। वे ख़ुद ही मुस्कुरा पड़ीं। जानती है उनके मन की स्थिति ही उन्हें मौसम में दिखाई दे रही है; जबकि सच्चाई यह है मौसम फुसफुसा है, सूर्य कई दिनों से नहीं निकल नहीं रहा और बारिश होने के आसार हैं।" निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि उपन्यास के तीनों प्रमुख पात्रों की जिजीविषा, सकारात्मक दृष्टिकोण और साहस पाठक को अत्यंत प्रभावित करता है। जीवन में परिस्थितियाँ कितनी भी दुष्कर क्यों न हो उन से जीता जा सकता है। यह सन्देश देकर उपन्यास एक सकारात्मक मोड़ पर समाप्त होता है।

000

अँधेरे कोनों से रू-ब-रू

दीपक गिरकर

सुधा ओम ढींगरा का इस वर्ष सद्य: प्रकाशित उपन्यास "दृश्य से अदृश्य का सफ़र" अब तक प्रकाशित उनके कथा साहित्य से कथानक और घटनाओं की दृष्टि के साथ-साथ भावनात्मक धरातल पर कुछ अलग रंग लिए हुए है। इस कृति में कथाकार सुधा ओम ढींगरा ने कोरोना काल की ज्वलंत समस्याओं के साथ-साथ लोगों की नकारात्मक शक्तियों को सकारात्मक शक्तियों में परिवर्तन को केंद्र में रखकर कथा का ताना-बाना बुना है। इस पृथ्वी पर नकारात्मक और सकारात्मक दोनों तरह की शक्तियाँ विद्यमान हैं। लेखिका ने अमेरिका और भारत की भूमि पर इस उपन्यास को गढ़ा है। समीक्ष्य कृति में लेखिका ने अत्यंत कुशलता से नकारात्मक एवं सकारात्मक जीवन मूल्यों का सशक्त द्वंद्व अपने सजीव पात्रों और परिवेश के माध्यम से प्रस्तुत किया है। सुधा जी ने इस उपन्यास में डॉ. लता के माध्यम से अवसाद से ग्रसित स्त्रियों के मानसिक आक्रोश को प्रकट करने के साथ उनकी नकारात्मकता को सकारात्मकता में परिवर्तित कर उनकी समस्याओं का समाधान किया है।

उपन्यास की मुख्य किरदार डॉ. लता, डॉ. रवि, मिसेज़ हुड्डा, सायरा, अनाम महिला हैं क्योंकि उपन्यास का ताना-बाना इनके इर्द-गिर्द बुना गया है। कथानक का प्रारंभ इस तरह होता है कि प्रवासी भारतीय डॉ. लता और उनके पति डॉ. रवि दोनों ही पेशे से अमेरिका में चिकित्सक थे। डॉ. लता मनोचिकित्सक थी और डॉ. रवि इंफेक्शियस डिज़ीज़िस के स्पेशलिस्ट थे । दोनों ने ही अपनी नौकरी से सेवा निवृत्ति ले ली थी। कोरोना काल की पहली लहर का समय था। अमेरिका में कोविड -१९ महामारी का भयंकर प्रकोप था। सभी रिटायर्ड चिकित्सकों को कोविड - १९ के मरीज़ों के इलाज के लिए न्यूयार्क बुला लिया जाता हैं। डॉक्टर रवि को भी तत्काल न्यूयॉर्क जाना पड़ता है। डॉक्टर रवि के न्यूयॉर्क जाने के बाद डॉ. लता अपने घर में अकेली रहती हैं तो वे अपनी पुरानी डायरी खोलकर अपने मरीज़ों की केस हिस्ट्री पढ़ने लगती है। पहली केस हिस्ट्री मिसेज़ हुड्डा, दूसरी सायरा और तीसरी अनाम महिला की है। इन तीनों महिलाओं की कहानी हमें ऐसे अँधेरे कोनों से रू-ब-रू करवाती है कि हम हैरान रह जाते हैं। ये कहानियाँ पुरुष द्वारा प्रताड़ित, शोषित स्त्री की असहनीय दास्ताँ को बयान करती है। इस उपन्यास के तीनों पात्र मिसेज़ हुड्डा, सायरा और अनाम महिला अपने ही करीबी रिश्तों को परत दर परत बेपर्दा करते हैं। मिसेज़ हुड्डा, सायरा और अनाम महिला के मन की गाँठे आसानी से नहीं खुलती हैं। डॉ. लता अपने तरीके से लाचार, बेबस, पीड़ित महिलाओं की अनकही बातों को उनके मुँह से निकलवा लेती है। नारी उत्पीड़न का घोर पाशविक रूप और पुरुष की मानसिकता का विकृत रूप देखना हो तो आपको इस उपन्यास की तीनों केस हिस्ट्री को पढ़ना होगा।

इस उपन्यास को पढ़ते हुए आप डॉ. लता, डॉ. रवि, मिसेज़ हुड्डा, सायरा, अनाम महिला इत्यादि किरदारों से जुड़ जाते हैं। कथाकार ने परिवेश के अनुरूप भाषा और दृश्यों के साथ कथा को कुछ इस तरह बुना है कि कथा खुद आँखों के आगे साकार होते चली जाती है। सुधा ओम ढींगरा ने स्त्रियों की समस्याओं को बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित किया है। उपन्यास की विषयवस्तु में कथाकार का गंभीर शोध स्पष्ट लक्षित होता है। कथाकार के अनुभवों की स्पष्ट झलक भी इस उपन्यास में दिखती है। उपन्यास की कथा बहुत ही रोचक व संवेदनशील है। इस उपन्यास में संवेदनात्मक गहराई, रोचकता और पठनीयता सभी कुछ हैं। यह उपन्यास सामाजिक उत्थान की दृष्टि से शोध का विषय साबित होगा। इस कृति में लेखिका की परिपक्वता, उनका सामाजिक सरोकार स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। अगर आप एक रोचक, सकारात्मक और प्रेरक उपन्यास पढ़ना चाहते हैं तो "दृश्य से अदृश्य का सफ़र" को अवश्य पढ़ें।एक सशक्त और रोचक उपन्यास।

000

शिवना प्रकाशन तथा साहित्य संवाद का साझा आयोजन के अंतर्गत उपन्यास "दृश्य से अदृश्य का सफ़र" पर खण्डवा में परिचर्चा आयोजित की गई।

परिचर्चा संयोजक - शैलेन्द्र शरण

यह उपन्यास बाहर से भीतर की ओर की गई एक ऐसी यात्रा है जिसके मार्ग में हम स्त्री पीड़ा और प्रताड़ना की वीभत्स घटनाओं से रूबरू होते हैं। ऐसी घटनाओं की निंदा और भर्त्सना की जानी चाहिए। किताब में मनोचिकित्सक डॉ. लता द्वारा प्रस्तुत तीनों केस स्टडी को देखें तो उनमें स्त्री प्रताड़ना के नेपथ्य में राजनीति और उससे जुड़ा हुआ पुरुष वर्ग ही दिखाई पड़ता है। इसका अर्थ यह कि भारत में राजनीति का स्तर अत्यंत गिरा हुआ है। राजनेता दुष्ट प्रकृति के हैं, दबंग हैं और उन्हें किसी सत्ता का कोई भय नहीं है, यहाँ तक कि वे ईश्वर से भी नहीं डरते। इस दृष्टि से यह साहसिक लेखन है। सुधा जी के इस उपन्यास की रचना का उद्देश्य भी यही है कि वे स्पष्ट कर देना चाहती हैं कि आधुनिकता सर्वत्र फैल गई, दुनिया बदल गई किन्तु मानव की हिंसक प्रवृत्ति नहीं बदली। मानव मनोविज्ञान के अनेक पक्षों को उपन्यास उजागर करता है। **- डॉ. रश्मि दुधे**

*

यह उपन्यास आरम्भ से पाठकों को अपने से जोड़ लेता है। इसमें डॉ. लता की डायरी से ली गई तीन कहानियाँ पाठक को अद्भुत अनुभव और अनुभूति देती हैं। ये कहानियाँ विश्व में सर्वत्र व्याप्त होती जा रहीं स्त्री हिंसा के ख़िलाफ़ हमें लड़ने के लिए प्रेरित करती हैं। स्त्री प्रताड़ना की इन पीड़ाओं से लेखिका का मनोचिकित्सक स्वयं गुज़रता है और समाधान भी खोजता है। यह विडंबना ही है कि राजघराने से लेकर झोपड़ियों तक स्त्री आज भी प्रताड़ित है। यह उपन्यास स्त्री हिंसा के अँधेरे के ख़िलाफ़ मशाल उठाने की प्रेरणा देता है। कोरोना काल के समय का सही सदुपयोग लेखिका ने अपने लेखन में किया है। **-राजश्री शर्मा**

*

उपन्यास दृश्य से अदृश्य का सफ़र ऐसी कृति है जो हमें यथार्थ के एक अनुभवों से रूबरू कराता है। इस यथार्थ के भीतर अंतर्द्वंद्व है, यह अंतर्द्वंद्व अदृश्य की भयावह घटनाओं को उजागर कर हमें यथार्थ के उद्वेलित धरातल पर ला खड़ा करता है। यह उपन्यास संवेदनहीन संसार की विषमताओं के बीच डॉ. लता के माध्यम से उम्मीद की किरण बनकर हमें ढाँढस बंधाता है। **-गोविन्द गुंजन**

*

'दृश्य से अदृश्य का सफ़र' बिल्कुल अलग शैली में लिखा गया एक विशिष्ट उपन्यास है जो अमेरिका की चिकित्सकीय व्यवस्थाओं के साथ ही भारतीय परिवेश की बात करता है। मनोविज्ञान तथा मनोभावों पर यह उल्लेखनीय उपन्यास है। **-शरद जैन**

*

उपन्यास को पढ़ते हुए पाठक अपने समय की त्रासदी और मनोविज्ञान की संवेदनाओं से जुड़ता है तथा लम्बे समय तक कथा से पाठक अलग नहीं हो पाता। जिस स्त्री हिंसा की बात उपन्यास में की गई है वह सर्वत्र व्याप्त है अत: इसे उपन्यास का विषय बनाना साहसिक भी है तथा इस समय सामयिक भी है। **-श्याम सुंदर तिवारी**

*

मुख्य पात्र डॉ. लता अत्यंत संवेदनशील हैं अपने पेशे में उतनी ही ईमानदार और निष्णात भी हैं। तीनों केस स्टडी में उनकी यह विशेषज्ञता ही मरीज़ के लिए जीवनदायी तथा समस्या का सही निदान प्रदान करती है। डॉ. लता की भूमिका उल्लेखनीय तथा रेखांकित किये जाने योग्य है।

वे सिर्फ एक मनोचिकित्सक नहीं अपितु ऐसी इंसान भी हैं जो कोरोना काल में पेशे से इतर जाकर भी अपना कर्त्तव्य निभाना जानती हैं। कोरोना के बहाने, कोरोना काल में रचा गया यह उपन्यास 'दृश्य से अदृश्य का सफ़र' निश्चित ही उल्लेखनीय तथा महत्त्वपूर्ण कृति है। **-गोविंद शर्मा**

*

उपन्यास के कथानक में तीन मुख्य कथाएँ हैं। ये तीनों कथाएँ गहन संवेदनशील और उद्वेलित कर देने वाली ऐसी कहानियाँ हैं जिनमें दो देशों का परिवेश शामिल हैं। स्त्री प्रताड़ना की पराकाष्ठा इन कहानियों में दृष्टिगत होती हैं, वहीं मनोचिकित्सक की भूमिका अत्यंत सराहनीय है। मनोचिकित्सक की डायरी के माध्यम से इन कथाओं को कहा गया है। कोरोना काल के सभी चिकित्सकों, तथा पीड़ितों की स्थितियाँ और उनकी कठिनाइयों को भी इस उपन्यास 'दृश्य से अदृश्य का सफ़र' के कथानक में समेटा गया जो सराहनीय है। **-डॉ. शहजाद कुरेशी**

*

इस उपन्यास के कथानक में बड़ी संभावनाएँ निहित हैं। उपन्यास या कथा का केंद्र मर्म या संवेदनात्मक गहनता ही होती है। इस उपन्यास में मानवीय करुणा के बड़े तथ्य वर्णित हैं, मानवीय मर्म और दर्शन है। उपन्यास का शिल्प डायरी की तीन मुख्य कथाओं पर आधारित है किंतु इसमें संवेदना का स्तर अतुलनीय और सराहनीय है। यही गुण इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। इस उपन्यास में कोरोना काल में समाज में तत्समय व्याप्त मनोदशा, स्त्री हिंसा और पारिवारिक स्तर पर विघटन का सटीक चित्रण है। आधुनिक युग में मानव मनोदशा के दबे छिपे सद्‌चरित्र तथा दुश्चरित्र को उद्‌घाटित करता है अपने समय का उल्लेखनीय उपन्यास है। इसके लिए उपन्यास 'दृश्य से अदृश्य का सफ़र' की लेखिका सुधा ओम ढींगरा को हार्दिक शुभकामनाएँ। **-अरुण सातले**

*

सुधा ओम ढींगरा का यह उपन्यास बाहर से भीतर का सफ़र है। दृश्य से अदृश्य की यात्रा है। यह उपन्यास आरम्भ से अंत तक पाठक को बाँधे रखने में सफल है। इसकी तीनों मनोचिकित्सा संबंधित कहानियाँ रोचक और संवेदनशील होने के साथ ही हमें गहन पीड़ा से बाहर आने का मार्ग भी सुझाती हैं। उपन्यास कोरोना समय के अनेक पक्षों को उजागर करता है। कोरोना काल में लिखे गए इस उपन्यास का शीर्षक 'दृश्य से अदृश्य का सफ़र' भी बहुत सार्थक है। **-रघुवीर शर्मा**

*

000

केंद्र में पुस्तक

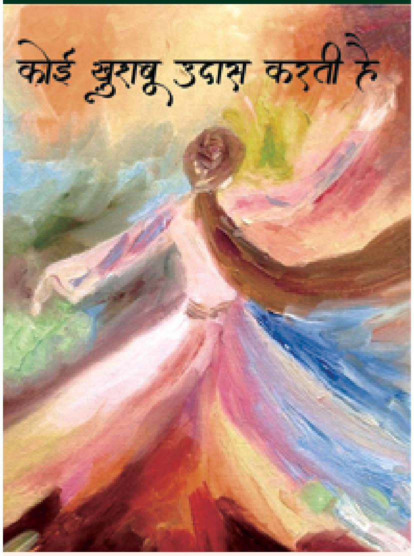

(उपन्यास)

कोई ख़ुशबू उदास करती है

समीक्षक : डॉ. फतेह सिंह भाटी, अवधेश प्रीत, वंदना बाजपेयी

लेखक : नीलिमा शर्मा

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

डॉ.फतेह सिंह भाटी
351, मोहन नगर बी, बीजेएस कॉलोनी
गली नंबर - 9, जोधपुर- 342011
मोबाइल- 9414127176

अवधेश प्रीत
सुमति पथ, रानीघाट,महेन्द्रू,
पटना -800006, बिहार

वंदना बाजपेयी
बी -125, प्रथम तल
निर्माण विहार
दिल्ली- 110092
मोबाइल- 9818350904

स्त्री विमर्श की कहानियाँ

डॉ.फतेह सिंह भाटी

लेखिका पहाड़ों से है। जिस तरह से पहाड़ों का सौंदर्य और सम्मोहन होता है, ठीक वैसे ही पहाड़ी लोगों, उनके रीति-रिवाजों, तीज-त्योहारों का आकर्षण होता है। उतराखण्ड और पंजाब की ख़ुशबू से लबालब ग्यारह कहानियाँ हैं। हरेक कहानी की अलग थीम, अलग ख़ुशबू है। लेकिन सभी कहानियों को स्त्री विमर्श की कहानियाँ कहूँ तो अनुचित नहीं होगा।

लगभग हरेक कहानी में स्त्री के विभिन्न रूप और उसकी अलग अलग तरह की पीड़ाएँ, घुटन, टूटन प्रकट होती हैं। जैसे कहानी 'कोई रिश्ता न होगा तब' कहती है कि हम कितने ही पढ़ लिख गए, हमने कितना ही विकास किया, स्पेस और चंद्रमा पर रहने के सपने देखने लगे हैं लेकिन आज भी पुत्र के मोह से मुक्त नहीं हुए। पुत्र भले ही जीते जी आग लगा दे परन्तु हमारी सोच आज भी नहीं बदली कि पुत्र के हाथ से चिता में आग बिना हमारी मुक्ति नहीं होगी। बेटी के जन्म लेते ही चेहरे पर छाई मुस्कराहट की जगह उदासी ले लेती है। इस कहानी के पात्र सीख देते हैं कि हम यूँ ही बेटियों का तिरस्कार करते रहे, तो निश्चित ही एक दिन स्त्रियों का अकाल होगा और तब पितृसत्तात्मक समाज में पुरुष अपनी दैहिक भूख के लिए सारे रिश्तों को भूलकर एक ही रिश्ता रखेगा वह होगा नर और मादा का रिश्ता। शेष कोई रिश्ता न होगा तब। ऐसी ही स्त्री पीड़ा की थीम पर लेकिन अलग कलेवर में कहानी है 'आख़िर तुम हो कौन'। जिसमें लेखिका ने अपनी कूची से पति-पत्नी के मध्य उपजी पीड़ा को उकेरा है। हम कितना ही दावा करें कि इक्कीसवीं सदी में स्त्री और पुरुष में कोई फर्क नहीं रहा। उन्हें बराबर अधिकार मिले हुए हैं बल्कि कानून और संविधान की बात करें तो स्त्री को कुछ ज़्यादा ही अधिकार मिले हुए हैं। लेकिन अगर व्यवहार में देखें तो पति-पत्नी के प्रत्येक क्रिया कलाप से महसूस होता है कि स्त्री का स्थान दोयम दर्जे का है। यह दोयम दर्जा सिर्फ ससुराल में या पति के सामने हो ऐसा भी नहीं है। स्त्री पुरुष का यह भेदभाव पीहर में या उसके बचपन में ही नहीं बल्कि उससे भी पूर्व जब वह

गर्भ में होती है तब से ही शुरू हो जाता है। कहानी 'मनका कोना' में भाई-बहन के मध्य जन्म से पूर्व यानि गर्भावस्था से लेकर मृत्यु तक बहन के साथ रहने वाली पीड़ा की अभिव्यक्ति है।

पितृसत्तात्मक समाज में अक्सर स्त्री की पीड़ा का कारण पुरुष बनता है। कभी वह असुर होकर भी छद्म देवता का रूप धर कर निकृष्ट हरकतों से किसी मासूम को इस तरह मार देता है कि भोगी जाने वाली के सिवाय उसके इस बहुरूपिया स्वरूप को कोई नहीं जानता। अवसर आने पर वह ज़िंदा लाश उसकी मौत का भी 'उत्सव' मनाने लगती है। स्कूल-कॉलेज में अध्यापक-विद्यार्थी के रिश्ते हो या कार्यस्थल पर महिला उत्पीड़न के मामले हो, हर दिन अख़बारों की सुर्खियाँ होते हैं। ये सब तो घर के बाहर के संबंध है। लेकिन जब से सोशल मीडिया पर स्त्रियों ने थोड़े साहस के साथ लिखना शुरू किया है तब से ऐसा लगता है कि अब तो घर के भीतर भी कोई रिश्ता नहीं बचा जिसने स्त्री को भोग का सामान समझकर उसके जीवन में ज़हर नहीं बोया हो। ऐसे बहुरूपियों के मध्य सशंकित स्त्री दुनिया के किसी भी पुरुष पर कैसे विश्वास करे ? ऐसी ही परिस्थितियों से उपजी पीड़ा की अभिव्यक्ति 'उत्सव' में है तो कहानी 'अंतिम यात्रा और अंतर्यात्रा' में पुरुष की पीड़ा आँसुओं के रूप में निकलती हैं। अपनी ही पत्नी को प्रताड़ित करने से उपजी पीड़ा। जीवन भर पौरुषीय दंभ से भरा पति पत्नी को उपेक्षित करता रहता है लेकिन पत्नी की शेष बची आख़िरी साँसों के समय अंतर्यात्रा करते हुए उसे महसूस होता है कि पत्नी के बिना तो उसका जीवन निरर्थक हो जाएगा, शून्य हो जाएगा। उसका जो कुछ था, पत्नी के होने से ही तो था, तब वह प्रार्थना करता है कि काश ! विदा होती हुई पत्नी लौट आए तो वह प्रायश्चित भी करे और उसके साथ जिए भी। लेकिन निर्मोही नियति ऐसे मन चाहे अवसर किसी को नहीं देती है। जीवन कोई कम्प्यूटर गेम्स नहीं कि जब मन चाहा हम उसे रिसेट कर लें। हमने जो अपराध किए हैं उसकी सजा तो हमें भुगतनी ही होती है।

ख़ुशी की तलाश हरेक जीव को होती है। पुरुष अक्सर घर से बाहर अपने कार्यस्थल या मित्रों के साथ ख़ुश रहता है तो स्त्री अक्सर घर में ही अपनी ख़ुशी ढूँढ़ती है। ख़ासकर घर की चारदीवारी में बंद रहने वाली स्त्री। उसके लिए अपना परिवार और पति ही उसका जीवन होता है। धीरे धीरे पति-पत्नी के बीच बच्चे अपना स्थान बनाने लगते हैं। पत्नी बच्चों में व्यस्त रहने लगती है और पति कार्य में। इन बढ़ती ज़िम्मेदारियों के साथ जीवन सुर्ख होता जाता है। जीवन की दुश्वारियों के बीच प्रेम और रोमांस तो लगभग ख़त्म ही हो जाते हैं। बच्चे भी जब बड़े होकर स्वयं में या अपने मित्रों में व्यस्त रहने लगते हैं तब प्रेम उत्साह और उमंग की नमी के अभाव में स्त्री का जीवन तिड़कने लगता है। उसके जीवन में अक्सर रेगिस्तान-सी सूनियाँण हो जाती है, न कोई उत्साह, न कोई उमंग, न कोई तरंग। यह स्त्री की ही कूवत है कि 'इत्ती सी ख़ुशी' यानि हवा का एकाध झोंका भी फुहार लेकर आये तो उसके भीतर का सब कुछ हरा होकर लहराने लगता है।

'कोई ख़ुशबू उदास करती है' अगर कहूँ कि यह कहानी इस संग्रह कि 'आत्मा' है तो कुछ ग़लत नहीं होगा। प्रेम में कितने एंगल हैं, ये महत्त्वपूर्ण नहीं है। महत्त्वपूर्ण है, कितने हृदय टूटे, बिखरे या जलकर राख हुए। किसने कितनी पीड़ा भोगी, किसने सुख का आचमन किया, किसने दु:ख में भस्मी किया। किस पर क्या बीती उसी से तय होगा कि कोई ख़ुशबू उदास करेगी या उमंग भरेगी। ऐसे ही प्रेम की दुविधा से बिखरते जीवन की एक और कहानी है 'मायका'। जीवन बिखरने के अनेक कारण होते हैं, आज के समय में उनमें से एक महत्त्वपूर्ण कारण हैं 'अवैध संबंध'। 'लम्हों ने खता की' उसी पल भर के सुख और सदियों के दु:ख की कहानी है। आदमी पल भर के इस सुख के लिए कितने ही तर्क गढ़ता है, उचित साबित करता है, ज़रूरत बताता है। अब तो कानून भी बदल गया है वयस्क स्त्री और पुरुष ही नहीं, स्त्री-स्त्री या पुरुष-पुरुष के मध्य के संबंध भी अपराध नहीं है लेकिनजब तक समाज की मन:स्थिति ऐसी रहेगी तब तक इन रिश्तों को तर्कों से या कानून से कितना ही उचित या जायज़ ठहराया जाए, अंतत: वे दु:ख ही देते हैं और देते रहेंगे।

कोई भी कहानी संग्रह हो या उपन्यास हो वह अपने समय का ऐतिहासिक दस्तावेज़ होता है। उस समय के जीवन के तौर-तरीके, रीति-रिवाज, परम्पराएँ वे सब उसमें दर्ज होते हैं। लेकिन पिछले दो वर्ष असामान्य थे। कोरोना जैसी महामारी सदियों में एकाध बार आती है। ऐसे में लेखिका उस समय को कैसे भूल जाती ? 'टुकड़ा टुकड़ा ज़िंदगी' उसी समय का दस्तावेज़ है। दो वर्षों के इस खौफनाक समय ने मनुष्य हो या प्रकृति सभी में भरपूर बदलाव किए हैं। इस कहानी के माध्यम से नीलिमा शर्मा ने अभिव्यक्त किया है कि कोरोना में क्वारेन्टाइन किये जाने पर अकेलापन और पल-पल निकट आती मौत का भय इंसान की सोच और उसके व्यक्तित्व को किस तरह से बदल देता है।

संग्रह की अंतिम कहानी 'उधार प्रेम की कैंची है' छलकते आँसुओं और तड़पते दो दिलों से निकली आह है जो कहती है कि चाहना और भाग्य अक्सर विरोधाभासी होते हैं। आदमी के चाहने से कुछ नहीं होता है। कोई तो आदमी से समर्थ परमसत्ता है जो उसे विवश करती है अपनी कूची से उसके ललाट पर लिखे लेखों के अनुसार चलने को। कोई तो है जिसके द्वारा हाथों पर उकेरी लकीरें आदमी के जीवन की राहें तय करती हैं।

000

स्त्री केंद्रित कहानियाँ

अवधेश प्रीत

कोई ख़ुशबू उदास करती है नीलिमा शर्मा का पहला कहानी संग्रह है। ग्यारह कहानियों के इस संग्रह में ज़्यादातर कहानियाँ स्त्री केंद्रित हैं। लेकिन प्रकारान्तर से ये प्रेम, दांपत्य और हमारी सामाजिक संरचना की जाटिलताओं में व्याप्त जीवन और जिजीविषा की कहानियाँ हैं। इन कहानियों के केंद्र में स्त्रियाँ हैं और उनका गोपन है। वैवाहिक जीवन है और उस जीवन से पूर्व का भी उनका जीवन है। एक ऐसा अतीत है, जिसमें वह एक

स्वतंत्र इकाई है,जिसके अपने राग- अनुराग हैं, जो उसका वर्तमान है, उसमें उसका आगत नहीं है, ज़ाहिर है जो आगत है, वह उसका दांपत्य जीवन है। इस तरह एक स्त्री का जीवन आजन्म दोधारी तलवार पर ख़ुद को साधने का उपक्रम है। नीलिमा शर्मा की ये कहानियाँ स्त्रियों के इसी जटिल जीवन और उनके अंतर्मन के आर पार देखने-झाँकने की कोशिश करती हैं। संग्रह की पहली कहानी 'टुकड़ा टुकड़ा ज़िन्दगी' अपने अद्भुत कथ्य और ट्रीटमेंट से चकित करती है। लॉकडाउन के दौरान उपजे हालात और लोगों की सोच पर पड़े प्रभाव को बेहद बारीकी से देखती इस कहानी में नीलिमा शर्मा के कथाकार का उत्कर्ष देखा जा सकता है। दुबई से दिल्ली लौटी उर्वशी को एयरपोर्ट पर कोविड जाँच के बाद अन्य यात्रियों के साथ सरकारी कैम्प में कोरंटाइन कर दिया जाता है। उसके फ्लैट में उसकी मैड नैस उर्फ़ नसरीन है। इस कोरंटाइन अवधि में उर्वशी अपने फ्लैट में लगे सी सी टी वी के ज़रिये अपने मोबाइल पर नैस को देखती है। उसकी अनुपस्थिति में नैस उसके कपड़ों, मेकअप आदि से लेकर खाने-पीने तक को उसी तरह एन्जॉय करती दिखती है, जिस तरह उर्वशी किया करती थी। नैस सोचती है,'अब घर भर में उसका साम्राज्य है, जैसे चाहे घूमे, जो मर्ज़ी खाए, जहाँ मर्ज़ी सोये।' इस उन्मुक्तता में जहाँ नैस के आवगुंठन खुलते हैं, वहीं इस अप्रत्याशित मिले अकेलेपन में उर्वशी महसूस करती है कि अकेलापन कितना त्रासद होता है, उसे काटना कितना कठिन। नैस भी उसके फ्लैट में अकेली थी और उसने उसकी अनुपस्थिति में जो किया था, वही उसके अकेलेपन को काटने का उपक्रम था। चौदह दिन का कोरंटाइन मतलब एक हताश, उदास और तन्हा अवधि में ख़ुद को बचा लेने की ज़द्दोजहद। नए कथ्य और दिलचस्प ट्रीटमेंट से ये कहानी प्रभावी बन पड़ी है। 'इत्ती सी ख़ुशी' एक ऐसी स्त्री की कहानी है, जिसका दांपत्य जीवन पति की उपेक्षा से बेजार है। उसकी ज़िंदगी में अचानक एक दिन उसकी बेटी की दोस्त अपने पिता के साथ उसके घर आती है। बेटी की दोस्त के ये पिता उस स्त्री के पुराने दोस्त निकलते हैं। उनके आगमन से इस बेज़ार स्त्री में अद्भुत बदलाव आता है। वह उत्साह और उल्लास से भर जाती है। इस बदलाव को उसका पति लक्ष्य करता है। उस आगन्तुक के जाने के बाद पति को अहसास होता है कि उसकी पत्नी की ज़िन्दगी से क्या मिसिंग था। इसी रियलाइजेशन की कहानी है 'अंतिम यात्रा और अंतर्यात्रा' यह एक टिपिकल भारतीय पति-पत्नी की ऐसी इंटेंस कहानी है, जिसमें वैवाहिक जीवन में व्याप्त मर्दवादी मानसिकता है, तो प्रताड़ित पत्नी को पति परमेश्वर मानते रहने में जीवन की सार्थकता समझने की कंडीशनिंग है। पत्नी अस्पताल में मरणासन्न है और उम्र के इस आख़िरी पड़ाव पर पति का अफ़सोस है, पछतावा है, 'जा शारदा, अब कभी मत आना मेरी ज़िंदगी में। मैं तुझे कभी कुछ नहीं दे पाया, लेकिन तू जाते-जाते भी यादों से मुझे भर गई।' यह अफ़सोस, यह रियलाइजेशन पाठकों में क्षोभ पैदा करता है। और यही इस सामान्य कथ्य की विशेषता बन जाता है। एक कहानी के लिखे जाने का यही मक़सद भी होता है। इस संग्रह में कई कहानियाँ ऐसी हैं, जिनमें शादीशुदा स्त्री के अतीत में छूटा हुआ प्रेम है। 'कोई ख़ुशबू उदास करती है', 'उधार प्रेम की कैंची है', 'आख़िर तुम हो कौन' कुछ ऐसी ही कहानियाँ हैं। इन कहानियों में स्त्री का अतीत है, उसका एकांत है और उसमें घटा उसका पहला प्रेम है। इस कथ्य की कहानियों को नीलिमा शर्मा ने निहायत शिद्दत और शाइस्तगी से रचा है। आमतौर पर ऐसे नाज़ुक विषय से हिन्दी में बचकर निकल जाने की प्रवृति आम रही है। लेकिन नीलिमा शर्मा इस ज़ोखिम को उठाती हैं और बताती हैं कि स्त्री का अतीत महज़ कोरा पन्ना नहीं। हाँ,लेखिका ने बड़े कौशल से इन कहानियों में कथ्य की विविधता और कहन को साधा है। इस लिहाज़ से 'उधार प्रेम की कैंची है' एक बेहद ख़ूबसूरत कहानी है, जिसमें अतीत में छूटा प्रेम है, उसकी अनभूली यादें हैं, वादे हैं, कसक़ है और एक उम्र बीतने के बाद उससे रू-ब- रू होने का इत्तेफ़ाक़ है। इतना सबकुछ एक कहानी में समेटना, साधना और उसे सार्थक उत्कर्ष तक पहुँचाना आसान नहीं, लेकिन नीलिमा शर्मा ने इसे अपने स्पर्श से स्मृति में देर तक बनी रहनेवाली कहानी बना दिया है। संग्रह की हर कहानी एक त्रासदी से गुज़रती है, जिसमें जीवन का राग है... घात-प्रतिघात है, रिश्तों का रचाव है और आम भारतीय जीवन में व्याप्त अंतर्विरोध हैं, जिनसे मिलकर बना है घर परिवार। ये कहानियाँ इन्हीं घरों परिवारों से निकली हैं। इन्हें पढ़ना ख़ुद को पढ़ने जैसा है और ये ताज़्जुब करने जैसा है कि हम ख़ुद से भी कितने बेगाने हैं।

नीलिमा शर्मा का ये पहला कहानी संग्रह है, ज़ाहिरन उसकी सीमाएँ भी हैं, लेकिन इन कहानियों की बनावट, बुनावट आश्वस्त करती है कि लेखिका में कहानी को कहने और बरतने की सालाहियत है।

'कोई ख़ुशबू उदास करती है' संग्रह की कहानियाँ पढ़ते हुए पाठक कतई उदास नहीं होता, क्योंकि ये कहानियाँ निराश.. हताश नहीं करतीं।

000

किस्सागोई का ताना -बाना

वन्दना वाजपेयी

स्मृतियाँ भी कितनी अजीब होती हैं। हमारी स्वीकृति का इंतज़ार किये बिना जब मर्जी अतीत का दरवाज़ा खोल कर वर्तमान पर आकर छा जाती है। जैसे प्रबल वायु संग उड़ता हुआ मेघ अचानक से धूप को रोक ले। और हम अतीत की उन पगडंडियों पर वर्तमान से बेखबर चल पड़ते हैं। वहाँ का मौसम हमारे वर्तमान के मौसम को अपने अधिकार में ले लेता है। दुख, सुख में बदल सकता है और सुख, दुख में ..पर ये दोनों साथ साथ आए तो? कोई ख़ुशबू उदास कर जाए तो ..... तो आज हम बात करते है कोई ख़ुशबू उदास करती है कहानी संग्रह पर।

संग्रह के नाम पर आधारित कहानी "कोई ख़ुशबू उदास करती है" एक मासूम सी प्रेम कहानी है। जिसमें माशूका को अपने आशिक के प्रेम का पता तब चलता है, जब दोनों अपनी ज़िंदगी में आगे बढ़ गए होते हैं। और

एक की ज़िंदगी की फिल्म काल से परदे से बस उतरने ही वाली होती है। एक गहन प्रेम का अहसास कराती ये कहानी पाठक को हक़ीक़त और फ़साने के बीच किसी ऐसी अँधेरी गुफा में ले जाती है ....जहाँ पहले प्रेम की ख़ुशबू उदास कर जाती है।

"आख़िर कौन हो तुम" मानवीय स्वभाव के एक महत्त्वपूर्ण तथ्य की गहन पड़ताल करती है। कहानी अपनी पूरी किसागोई के साथ मनोविज्ञान के उस महत्त्वपूर्ण पाठ पर अँगुली रखती है कि अगर कोई व्यक्ति किसी व्यवहार के एक ध्रुव पर खड़ा है तो दूसरा ध्रुव भी उसी में दिखाई देगा। जो आज बहुत ही दीनता का रोना रो रहा है, वही परिस्थिति बदलने पर शोषक होगा। जो आज मज़े करने वालों की हद से ज़्यादा बुराई कर रहा है वो समय आने पर ख़ुद वैसा ही होगा और जो इंफीरिऑरिटी कॉम्प्लेक्स से ग्रस्त है वो ही सुपीरिऑरिटी कॉम्प्लेक्स से ग्रस्त होगा।

कहानी में इस कॉम्प्लेक्स परिस्थिति को दर्शाने के लिए नायक और नायिका कविता और अविनाश हैं। पति के शक का बोझ ढोती कविता जो लंबे अरसे तक मायके भी नहीं जाती, जिसके मन में खिले प्रेम के गुलाबों को अक्सर तानों का तेज़ाब डालकर झुलसा दिया जाता है। यहाँ दांपत्य पूरी तरह बिखरा हुआ नहीं हैं बस एक तपिश है, खलिश है, कसक है जो बार -बार प्रेम के मौसम को घेर लेती है। बरसों बाद अचानक मायके जाने पर ऐसा क्या होता है कि उसे अपने पति अविनाश का बिल्कुल एक नया चेहरा नज़र आता है ? अंत में कहानी झकझोरती है और एक बार फिर पाठक कविता के पक्ष में खड़ा हो जाता है। वो कविता जो अपने पति के दो रूपों में से पहचानने की असफल कोशिश कर रही है कि "आख़िर कौन हो तुम" प्रभावशाली शिल्प, शानदार कथ्य और रहस्य के साथ आगे बढ़ती एक अच्छी कहानी।

"इत्ती सी खुशी" एक प्रौढ़ होती स्त्री के सपनों का मानचित्र है। जहाँ एक कठोर दिनचर्या में ज़िंदगी की सारी उमंगें सारा उत्साह होम हो जाता है। दांपत्य में प्रेम भी जीवन के कैटलॉग का एक हिस्सा बन जाता है। आख़िर उम्र के इस पड़ाव में अपने साथी से स्त्री चाहती क्या है ? बाहर से आई एक हवा का झौंका जब उस तरन्नुम को फिर से छेड़ देता है तो अहसासों की नदी फिर से बहने लगती है। एक सुखद दांपत्य के लिए इस उम्र में बात बात में मूड स्विंगस, अवसाद, खीजन, अनमनेपन से गुज़रती स्त्री के मन को पढ़ने वाला साथी इत्ती सी नहीं बहुत सी खुशी दे सकता है।

"उधार प्रेम की कैंची है" एक अलग रंग लिए हुए प्रेम कहानी है। मिलने -बिछुड़ने से परे एक अलग अहसास जगाती हुई जिसमें पंजाबी भाषा व गीतों का तड़का प्रभावित करता है। "हीर आख़िरी वे जोगिया वे झूठ बोलें, वे कौन रूठठे यार मनावंदा ई

वे ऐसा कोई न मिलिया वे मैं ढूँढ़ थकी, हाँ

वर्जित संबंध जिन्हें पाप की दृष्टि से देखा जाता है ....फिर भी बन जाते हैं। अक्सर कहानियाँ इनके बन जाने की परिस्थितियों पर बात करती हैं। पर नीलिमा जी इसके वीभत्स परिणाम से पर्दा उठाती है और अपनी कहानी "लम्हों ने ख़ता की" के माध्यम से इसके दुष्परिणामों के प्रति सचेत करती हैं।

"अंतिम यात्रा और अंतरयात्रा" कहानी एक ऐसी वृद्धा की कहानी है जिसका वेंटीलेटर हटाया जाना है। इस अंतिम यात्रा की तैयारी के साथ उसके पति के मन में अंतरयात्रा भी चल रही है। जहाँ उसके पौरुष का दंभ पिघल रहा है और मन अपनी ही पत्नी के प्रति किये गए अपराधों के कारण लज्जित है। इस मार्मिक कहानी में भावनाओं संग डूबते उतराते अपनी माँ, दादी, मामी, चाची जिन्हें भी खोया है पाठक को ज़रूर याद आएँगी।

चाइल्ड अब्यूज़ पर आधारित कहानी "उत्सव" व कन्या भ्रूण हत्या पर आधारित कहानी "कोई रिश्ता ना होगा तब" मुद्दे आधारित सशक्त कहानियाँ हैं।

"मन का कोना" लिंग के आधार पर बच्चों से भेदभाव करते परिवार की एक मासूम बच्ची का दर्द हैं तो "टुकड़ा -टुकड़ा ज़िंदगी" में कोरोनाकाल एक पल बनता है मालिक की बेटी और घर में काम करने वाली उसकी हम उम्र नसरीन के मध्य।

अंत में यही कहूँगी की नीलिमा जी की कहानियों के मुख्य पात्र मुख्यत : स्त्री पात्र है। जिनके मन को वो आसानी से पढ़ भी लेती है और चित्रित भी कर देती हैं। उनकी कहानियाँ हमारे-आपके घरों के आस -पास के पात्रों को उठाती है और सहजता से किस्सागोई का ताना -बाना बुनते हुए उनकी बात कहती हैं। उनकी कहानियाँ वर्णात्मक शैली में अपनी बात रखती हैं और संवाद का प्रयोग कम और जरूरी होने पर ही करती हैं पर सहजता से बिना किसी लाग -लपेट के पाठक के साथ संवाद स्थापित करती हैं। जहाँ "आख़िर कौन हो तुम" और "अंतिम यात्रा और अंतरयात्रा" मन की सीवन को उधेड़ती है तो "टुकड़ा -टुकड़ा ज़िंदगी" कोरोनाकाल के बाद जीवन को नए सिरे से समझने की कोशिश करती है।

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित १४४ पेज के इस कहानी संग्रह में ११ कहानियाँ हैं, जिसका मूल्य १५० रुपये है। कवर पेज आकर्षक जीवंतता से भरपूर है। अगर आप जीवन को सहजता से थोड़ा गहरे उतर कर देखना चाहते हैं तो यह संग्रह आपके लिए मुफीद है।

000

लेखकों से अनुरोध

सभी सम्माननीय लेखकों से संपादक मंडल का विनम्र अनुरोध है कि पत्रिका में प्रकाशन हेतु केवल अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। वह रचनाएँ जो सोशल मीडिया के किसी मंच जैसे फ़ेसबुक, व्हाट्सएप आदि पर प्रकाशित हो चुकी हैं, उन्हें पत्रिका में प्रकाशन हेतु नहीं भेजें। इस प्रकार की रचनाओं को हम प्रकाशित नहीं करेंगे। साथ ही यह भी देखा गया है कि कुछ रचनाकार अपनी पूर्व में अन्य किसी पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ भी विभोम-स्वर में प्रकाशन के लिए भेज रहे हैं, इस प्रकार की रचनाएँ न भेजें। अपनी मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ ही पत्रिका में प्रकाशन के लिए भेजें। आपका सहयोग हमें पत्रिका को और बेहतर बनाने में मदद करेगा, धन्यवाद।

-सादर संपादक मंडल

पुस्तक समीक्षा

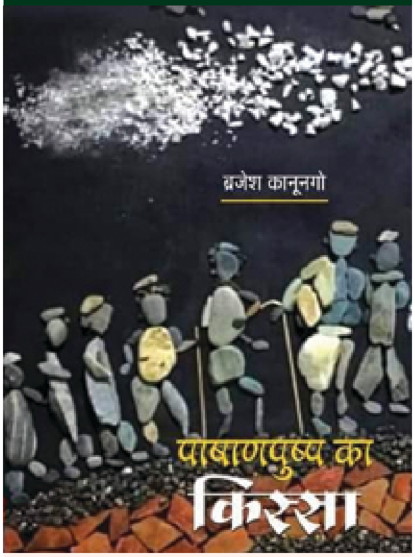

(व्यंग्य संग्रह)

पाषाणपुष्प का किस्सा

समीक्षक : डॉ. स्नेहलता पाठक

लेखक : ब्रजेश कानूनगो

प्रकाशक : बोधि प्रकाशन,जयपुर

ब्रजेश कानूनगो का चौथा संग्रह 'पाषाणपुष्प का किस्सा' पुस्तक दो विभिन्न शैलियों में बाँटी गई है। पहले भाग में जहाँ कथात्मक व फैंटेसी शैली में लिखी गई व्यंग्य रचनाएँ हैं वहीं दूसरे भाग में वर्तमान शैली में लिखे गए व्यंग्य लेख व कुछ कथाएँ शामिल हैं।

पहला भाग जिसमें कल्पना की दुनिया रची गई है, तमाम पात्र और घटनाएँ सभी काल्पनिक होते हुए भी आज के ही लगते हैं। यह शैली हिन्दी साहित्य में नई नहीं है। फैंटेसी शैली में लिखा 'चंद्रकांता संतति' देवकी नंदन खत्री का बहुचर्चित उपन्यास है, उसी तरह यह किस्सा भी भले ही आज की लेखन शैली से थोड़ा अलग है मगर व्यंग्य की दृष्टि से देखा जाए तो उसमें भी वही प्रवृत्तियाँ हैं जो आज विद्यमान हैं। वर्तमान राजनीति में जिस तरह आत्मलिप्सा प्रमुख हो गई है, अतीत में भी यही लिप्सा विद्यमान थी। तभी तो स्वयं की स्तुति सुनने के आदी राजा अपने राजकवि की मृत्यु होने से बीमार पड़ जाते हैं। न जाने क्यों आज भी देश के हालात बताते हैं कि स्वार्थलिप्सा के बिना बड़ा से बड़ा सेवक भी देश सेवा में असमर्थ है। एक तथाकथित देश सेवक से यही प्रश्न पूछा गया तो उसने कहा कि - पदप्रतिष्ठा, बधाई, स्तुतिगान यही हमारा भोजन पानी है। इसे सुने बिना हमारे भीतर देशसेवा के कीटाणु जाग्रत ही नहीं हो पाते...यदि आप राजा को देश सेवा के बदले इतना भी नहीं दे सकते तो देशद्रोही कहलाओगे।

संग्रह की रचना "कुत्ते की समाधि और बारिश में भीगती बकरी" आज के इसी लोकतंत्र का दर्पण है। यहाँ पैसा और चाटुकारिता इन दोनों का ही बोलबाला है। कुत्ता राजा का है इसलिए मरने के बाद भी मान सम्मान पा रहा है, बकरी जनता की प्रतीक है, इसलिए उपेक्षित भीड़ का हिस्सा है। देश के प्रति दोहरी मानसिकता ही राजा को ऊँचा उठाती है। यही मानसिकता लोकतंत्र का प्राणतत्व होती है। कहने को हम लोकतंत्र में जी रहे हैं मगर देश की जनता आज भी वहीं खड़ी है। पानी में भीगती हुई... क्योंकि वह कुत्ते की तरह राजा के लिए भौंक नहीं पाती। वह चुपचाप अपने पौष्टिक दूध से देश का भविष्य सँवारती है। मगर शिकायत नहीं करती। यह बात उजागर है कि मजबूर की चुप्पी घुप्प अँधेरा होती है जहाँ न सुनाई देता है न दिखाई। भले ही आप कितना ही मिमयाते रहिये।

संग्रह के द्वितीय भाग की अन्य व्यंग्य रचनाओं में 'लहरों पर सवार हंस' आज के नेताओं की चाहत, स्वार्थीपन व अवसरवादिता को उजागर करती रचना है। लेखक ने आज के अवसरवादी नेताओं की तुलना राजहंस से की है। उन्हें देश की उतनी ही चिंता होती है जितनी हंसों को सागर की लहरों से। केवल अपने सुख के लिए। देश में महामारी फैली हो, सूखा पड़ा हो,कृषि सूख रही हो,लोग मर रहे हों,मगर लहरों के आदम हंसों को चिंता होती है केवल अपनी तिजौरी की। उन्हें क्या परवाह जो वे जनता के दुख दर्दों की चिंता करें।

इस संग्रह की विशेषता है कि रचनाकार लगातार प्राचीन और वर्तमान विसंगतियों की तुलना करता चलता है।"शिकायत है तो घंटा बजाइये" शीर्षक रचना में इसी बात को उजागर किया गया है कि शासन की सोच तब भी वही थी जो आज है। भले ही दुखी जनता तब की तरह आज भी घंटा बजाकर अपनी तकलीफ बयान करती है मगर हासिल हमेशा की तरह कुछ नहीं होता, फरियाद अनसुनी ही रह जाती है। यद्यपि कहा यही जाता है कि लोकतंत्र हो तो हिंदोस्तान जैसा हो वरना न हो। वैसे लोकतंत्र है बहुत पाक साफ और कल्याणकारी व्यवस्था। इसमें जनता को कुछ नहीं करना होता। जो भी करता है नेता ही करता है। जनता को तो केवल नेता का जयकारा लगाना होता है।इस दिशा में प्रणम्य है टी वी के वे एंकर जो नेता की ग़लत नीतियों को भी गुणों में बदलकर नेता के पक्ष में घसीट ले जाते हैं। हमारे देश के लोकतंत्र में यही तो विशेषता है। है किसी देश के एंकर में इतना दम।

इस तरह इस संग्रह के द्वितीय खंड की रचनाएँ कुछ न कुछ महत्त्वपूर्ण संदेश देते हुए अपनी सार्थकता सिद्ध करती है। जैसे मुक्तिमार्ग का महात्म्य, पतली समझ में मोटा चिंतन, सहीराम हिंदुस्तान का बयान और समय के दर्द पर किस्सों का मरहम आदि प्रभावित करती हैं।

000

डॉ. स्नेहलता पाठक
मेसनेट 44, शंकर नगर
रायपुर, छग- 492001
मोबाइल- 9406351567

पुस्तक समीक्षा

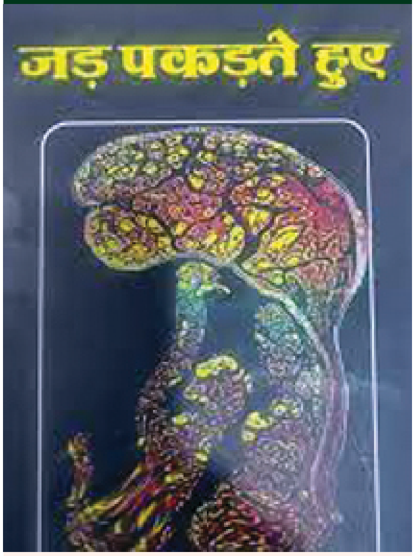

(कविता संग्रह)

जड़ पकड़ते हुए

समीक्षक : तरसेम गुजराल

लेखक : राकेश प्रेम

प्रकाशक : बिम्ब-प्रतिबिम्ब प्रकाशन, पंजाब

'जड़ पकड़ते हुए' राकेश प्रेम का इधर का प्रकाशित कविता-संग्रह है। कविता की ज़मीन से जुड़ा हुआ एक सार्थक संग्रह जिसमें कवि की सुविचारित जीवन-दृष्टि का परिचय हमें मिलता है। भाषा को चीज़ों के बीच से पकड़ने का काम करती हुई कविताएँ, विचार और विरोधाभास के अन्तराल को थामती हुईं, कविता से जुड़े हुए अच्छे पलों का अहसास हमें कराती हैं।

ये कविताएँ वैचारिकता और जीवन- अनुभवों से हमें जोड़ती हैं। कवि राकेश प्रेम की सक्रिय मानसिकता कविता के माध्यम से जीवन की संवेदनशीलता से जुड़े हुए कोमल पलों का अहसास कराती हुई, हमें अपने अनुभव- संसार का हिस्सा बना लेती है और हम विचार तथा चिन्तन से जुडी़ हुई काव्य - दृष्टि से जुड़ पाते हैं।

संग्रह की ' ज़मीन, बीज, पेड़, रंग, और सपने' जैसी शुरुआत की कविताएँ ही हमें विचार, चिन्तन तथा वास्तविकता से जोड़ती हैं जैसे- ' अस्तित्व को जीना / लड़ाई के लिए तैयार होने का / पहला कदम है '

'बीज' कविता में यह वैचारिक संघर्ष और अधिक मुखर होता है जब, ' धरती का सीना फोड़ कर अंकुरित होने वाला बीज विद्रोही पंक्ति का सैनिक बन कर सामने आता है- "बीज अब / पेड़ बन गया है / विद्रोही पंक्ति का / एक और सैनिक !!'

कवि की वैचारिकता हमें संवेदनशीलता से जोड़ती हुई, जीवन की सार्थकता से जुड़ने का सन्देश देती है :-

'फैलो जड़ों में/ फलो ख़ुश्बू बन कर।'

संग्रह की प्राकृतिक सौन्दर्य से जुड़ी कविताएँ भी हमें अपनी ओर खींचती हैं जैसे ' धूप' 'बादल', 'संस्पर्श' और 'चाँदनी' जैसी कविताएँ जिनमें प्रकृति की सुन्दरता के साथ लालित्य की छटा है तथा कवि का यह सन्देश भी- मौसम/ मन का ही होता है, / रंगों का / नहीं होता कोई मौसम !

राकेश प्रेम का मन लोकरीति की भेड़ियाधसान का सांकेतिक उल्लेख भी करता है। यह कहता हुआ कि हमें एक ही ज़िंदगी मिलती है जिसे कि हम दोहरे चरित्र के साथ जीते हैं क्योंकि "सच है सबका अपना/ और/ दर्पण भी / जिसमें / हम देखते हैं / अपने-अपने / सच की छवि!"

व्यवस्था के नाम पर अव्यवस्थित होना अब रोज़मर्रा के जीवन का अंग बन गया है और, "न चाहते हुए भी/ अव्यवस्थित हो जाना/ व्यवस्था के नाम पर !" ज़िंदगी 'इन दिनों ' कुछ ठहर सी गई है और 'साँस को / फूँक फूँक कर रखना' विवशता बन गई है किन्तु कवि की 'चाहत' है कि वह समाज से कटे नहीं बल्कि लोगों के साथ जुड़े- अपने आस- पास की दुनिया को / अब फिर से / देखना चाहता हूँ / खुली आँख से !!

विचार और चिन्तन हमें जीवन को जीने की दिशा देते हैं किन्तु हमारे पूर्वाग्रह याकि जड़ मानसिकता हमारा पाँव पीछे की ओर खींचती है जिससे हम नई दिशा से जुड़ पाने में असमर्थ बने रहते हैं, 'सिद्धार्थ' की तरह अपने प्रश्नों के उत्तर नहीं ढूँढ़ पाते। किन्तु, बँधी-बँधाई लीक पर चल कर जिज्ञासा का समाधान संभव नहीं है, क्योंकि- उत्तर हमें ही होना है / अपने प्रश्नों का / हमें ही करना है / दीक्षित स्वयं को।

विचार और विरोधाभास के अन्तराल को थामती हुई ये कविताएँ कविता के अच्छे क्षणों को पकड़ पाती हैं इसलिए इनका स्वागत है।

000

तरसेम गुजराल
444-ए, राजा गार्डन, डाक खाना, बस्ती बावाखेल, जालन्धर 144021, पंजाब
मोबाइल- 9463632855

पुस्तक समीक्षा

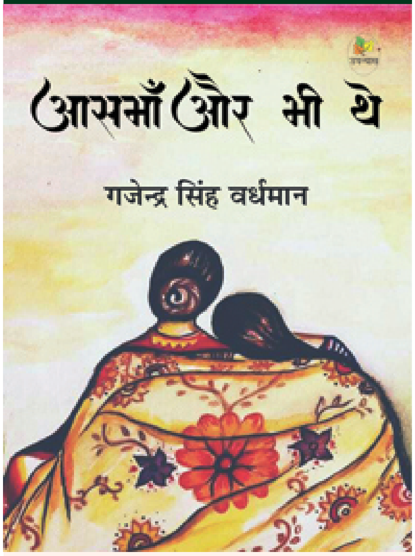

(उपन्यास)

आसमाँ और भी थे

समीक्षक : शैलेन्द्र शरण

लेखक : गजेन्द्र सिंह वर्धमान

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर

कथावस्तु, पात्र, कथोपकथन, देशकाल वातावरण, भाषा शैली, उद्‌देश्य किसी भी कथा या उपन्यास के यह पाँच अनिवार्य तत्व हैं। क्या उपरोक्त सारे तत्वों का शामिल होना ही एक उपन्यास के लिये पर्याप्त है ? उपन्यास जब अपने समय से जुड़ता है, समय की पड़ताल करता चलता है, समय की दुखती रग पर उँगलियाँ रखता है तभी वह सार्थक होता है, तभी पठनीय होता है, तभी उपन्यास साहित्यिक दृष्टि से मान्य किया जाता है। कथोपकथन और भाषा शैली अन्य महत्त्वपूर्ण तत्व हैं जो किसी उपन्यास की सार्थकता को निर्धारित करते हैं।

वस्तुत: उपन्यास का फलक बड़ा है। उपन्यास में कई पात्र होते हैं और इन सभी पात्रों का अपना अलग अस्तिव होता है। अपना जीवन, जीवन-चरित्र होता है। उपन्यास में प्रत्येक पात्र की अपनी कथा हो सकती है। जबकि उपन्यासिका में दो-तीन प्रमुख पात्र या एक परिवार और उसके हिस्से होते हैं और उन्हीं इर्द-गिर्द कहानी चलती रहती है। प्रत्येक अध्याय में घूम-फिरकर प्रमुख पात्र सामने आते रहते हैं।

गजेन्द्र सिंह वर्धमान का यह उपन्यास एक परिवार पर आधारित है। अंचल के दो-चार गाँव की प्रष्ठभूमि, चुनिन्दा पात्र और उनके जीवन से जुड़ते हुए दीगर पात्र का शमावेश वातावरण के साथ चलता रहता है। कहानी से ही दूसरी कहानी स्वत: जुड़ती चलती है। माता-पिता और उनकी संतानें, संतानों का जीवन और उनसे जुडकर कथानक से आगे बढती हुई कहानियाँ। मुख्य कहानी तथा पूरक कहानियों में दो पीढ़ियों का काल-खंड है जो एक दूसरे से जुड़ा हुआ है। बतकही शैली में उपन्यास के पात्रों के जीवन को कहा गया है। एक गाँव के निवासी नंदराम, यशोदा, और उनकी तीन बेटियों की कहानी इस उपन्यास की विषय-वस्तु है। हालाँकि नंदराम और यशोदा के दो बेटे भी हैं किन्तु ये कहानी से लगभग दूर हैं। गाँव के चार घर और कुछ पात्रों के लिये कही गई इस उपन्यासिका की कोई मुख्य कथा है ही नहीं। कुछ पात्र बेटियों के बड़े होने और उनके विवाह के परिणामस्वरूप स्वत: ही जुड़ते चलते हैं। उपन्यास का देशकाल सदियों पुराना है जब रूढियाँ और परम्पराएँ समाज के विभिन्न तबकों के जीवन को कठिनतम किये हुए थीं। समस्यायं समाधान का मार्ग खोज रहीं थीं। प्राचीन दकियानुसी परम्पराओं, रुढियों, प्रथाओं और मान्यताओं से जुड़े प्रश्नों को उठाना इस उपन्यास का प्रमुख उद्‌देश्य है। यह ज़रूर है जिन समस्याओं को लेकर प्रश्न उठाये गए हैं उनमें से अधिकतर समस्याओं का निदान हो चुका है।

इस उपन्यासिका के संवाद या कथोपकथन रोचक हैं। मालवी मिश्रित भाषा का प्रयोग है। संवाद वाक्यों के बीच में हिन्दी के सीधे शब्द भी आ आ जाते हैं अर्थात मालवी पर लेखक की पकड़ मजबूत नहीं हैं। एक खासियत है इस उपन्यास में कि इसके दोष खोजने जाओ तो सामान्य तौर पर दिखाई नहीं देते, पढ़ते जाइये और समाप्त कर लीजिए। कहीं कोई अड़चन नहीं आती। यह उपन्यास आपको विचारों में भी नहीं उलझाता। चूँकि परिवेश पुराना और जाना पहचाना है, समस्याएँ पढ़ी-सुनी सी लगती हैं। रोचकता बनी हुई है अत: पठनीय है। इस उपन्यास की कहानियों का दु:ख बौछारें बनकर बरसता है, आषाड के मेघों की तरह टूटकर नहीं गिरता। यह उपन्यास धूप-छाँव का उपन्यास है, तेज़ धूप में पगडण्डी पर पैदल यात्रा करते हुए जब बादल का कोई टुकड़ा सूरज की रौशनी को ढक लेता है तो सुकून देता है, इस उपन्यास की घटनाएँ भी धूप-छाँव की तरह हम पर से गुज़रती हैं।

कुल मिलकर उपन्यास समाधानपरक है, कठिनाइयाँ सामने आती हैं तो समाधान भी साथ साथ चला आता है। विषमताएँ दिखाई पड़ती हैं तो उनका तोड़ भी अगली कुछ पंक्तियों में दिखाई दे जाता है। सामान्य ग्रामीणजन-जीवन का यह उपन्यास भले ही प्राचीन कथानक पर आधारित है किन्तु कहन के स्तर साधारण है किन्तु उसका अंचल के ग्रामीण जीवन से साम्य बैठ जाता है। उपन्यास लिखना ही एक विशेष कार्य है, जो पर्याप्त समय भी लेता है। लेखक के जीवन के साथ गुज़रते वक्त का लेखन पर प्रभाव पड़ता ही है। लेखक की विद्वता के साथ-साथ कोई भी उपन्यास उसके बीते समय से भी हमारा परिचय करा देता है।

000

शैलेन्द्र शरण
79, रेल्वे कॉलोनी आनंद नगर खण्डवा, मप्र 450001
मोबाइल- 8989423676,
ईमेल- ss180258@gmail.com

पुस्तक समीक्षा

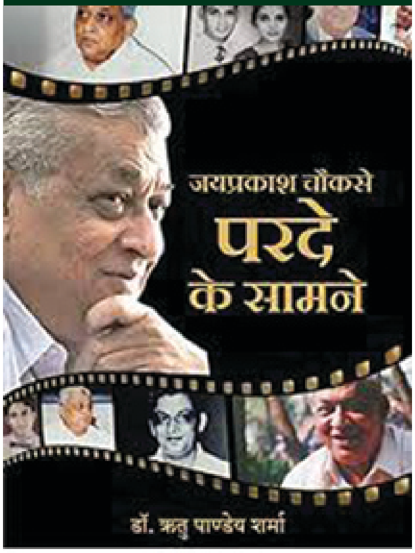

(रिपोर्ताज)

जयप्रकाश चौकसे, पर्दे के सामने

समीक्षक : ब्रजेश राजपूत

लेखक : रितु पांडेय

प्रकाशक : इंद्र पब्लिशिंग हाउस, भोपाल

जेपी चौकसे के परदे के सामने की कहानी, पिछले पच्चीस सालों से अख़बार दैनिक भास्कर में हर रोज़ फिल्मों पर लिख रहे लोकप्रिय स्तंभकार जयप्रकाश चौकसे पर लिखी किताब परदे के सामने पढ़ते वक्त हमेशा ऐसा ही लगता है कि आप उनका लोकप्रिय कालम पर्दे के पीछे ही विस्तार से पढ़ रहे हों। कई सालों से लगातार छप रहे इस कालम को पढ़ कर कभी हैरत भी होती है कि कोई कैसे बिना रुके इतना रोज़ लिख सकता है। लिखने के लिये कितना खाद पानी चाहिए ये लिखने वाले ही जानते हैं, मगर पाठक तो उस कालम को रोज़ की आदत के मुताबिक पढ़ते हैं। वो नहीं जानते कि हर दिन बेहतर नए-नए विषयों पर लिखना कितना कठिन श्रम और अनुशासन माँगता है। लगातार अच्छा पढ़ना और लिखने की आदत की दम पर कैसे मध्यप्रदेश के एक छोटे से कस्बे बुरहानपुर का युवक इस मुकाम पर पहुँचा, ये इस किताब के माध्यम से जाना जा सकता है। जयप्रकाश चौकसे की इस आत्मकथात्मक किताब को भोपाल की पत्रकार डॉ. रितु पांडेय शर्मा ने लिखा है। किताब में चौकसे जी की कहानी को शब्द देने के साथ-साथ चौकसे के दोस्त और उनके प्रशंसकों से भी लिखवाया गया है। बुरहानपुर के लकड़ी व्यवसायी परिवार के बेटे से लेकर पढ़ने-पढ़ाने के शौक में चौकसे ऐसे रमे कि क्रिकेट खेलने के साथ शहर से पाक्षिक अख़बार संगम भी निकाला। इंटर कॉलेज पढ़ने सागर विश्वविद्यालय गए तो बिठ्ठल भाई पटेल से ज़िंदगी भर की दोस्ती कर ली और फिल्म में काम करने वाले लोगों से संपर्क का सिलसिला ऐसा शुरू हुआ कि राजकपूर और सलीम खान के पारिवारिक मित्र बन गए। इंदौर के होलकर कॉलेज में हिन्दी पढ़ने गए और जगह ना मिली तो अंग्रेजी से एमए कर कालेज में ऐसा पढ़ाया कि उनके छात्र आज भी फिल्मों में पगी उनकी तकरीरों को याद करते हैं। चौकसे ने इंदौर से मुंबई तक फिल्म से जुड़े अनेक काम किये। फिल्में बनाई फिल्मों की कहानियाँ, संवाद और पटकथा लिखीं, फिल्म का डिस्ट्रीब्यूशन किया। टीवी सीरियल्स लिखे। कहानियाँ उपन्यास और अब कॉलम लिख रहे हैं।

फिल्म एक ऐसा व्यवसाय है जिसमें उतार चढ़ाव आते हैं, तो जीवन के उन बुरे दिनों को भी चौकसे जी ने ईमानदारी से याद किया है। फिल्म वितरण में भारी घाटा होने पर कैसे सलीम खान और मनमोहन शेट्टी ने मदद की और फिर कैसे उससे उबरे किताब में बेहतर तरीके से बताया गया है। जयप्रकाश चौकसे को पहचान उनके कॉलम लेखन के चलते मिली है। ये ज़िम्मेदारी उनको जब दी गई तो बड़े बेमन से उन्होंने स्वीकार की। उस दौर के संपादक श्रवण गर्ग ने तब उनसे कहा था कि इस कालम में तीन चीज़ें ही होंगी, एंटरटेनमेंट, इनफारमेशन और एनलाइटमेंट। मगर इतने सालों में ये कालम इससे बहुत आगे निकल कर लाखों पाठकों का प्रिय बन गया है। उधर चौकसे जी भी इस कालम को गंभीर बीमारी या अन्य कोई भी मुश्किल घड़ी में कभी लिखना नहीं छोडते। पच्चीस सालों से वो लगातार लिखे जा रहे हैं। उनके कालम में उनकी पढ़ाई की रेंज झलकती है। फिल्मों से लेकर हिन्दी, अंग्रेज़ी साहित्य की बातें तो होती ही हैं मगर बात फिल्मों की करते करते वो कब ज़िंदगी की उलझनों और उनके सुलझाने के नुस्खे गिना देते हैं पाठक को पता ही नहीं चलता। यही उनके कालम के लोकप्रियता की वजह है। भास्कर के लाखों पाठक की आदत है उनका कालम परदे के पीछे। इस कॉलम में लिखने के कारण उनको अनेक बार विरोध का सामना भी करना पड़ा मगर लिखना जारी रहा।

चौकसे मानते हैं कि वो नेहरूवादी विचारधारा से प्रभावित रहे और राज कपूर से उनकी गहरी छनने की वजह भी यही रही। राजकपूर की टीम में आज़ादी के बाद के अनेक आदर्शवादी लेखक कवि कथाकार और कलाकार थे जिनमें चौकसे ने भी अपना अलग स्थान बनाया। इस किताब की वजह से चौकसे जी को उनके कालम के सहारे जानने वाले पाठकों को उनके घर परिवार पत्नी उषा जी और बच्चों की बातें भी पढ़ने मिलेंगी। साथ ही उनके दोस्त यार और प्रशंसक अपने जेपी के बारे में क्या सोचते हैं इसे भी लेखक ने बड़ी मेहनत से इस किताब में संजोया है।

000

ब्रजेश राजपूत
ई-109/30
शिवाजी नगर, भोपाल, 462016, मप्र
मोबाइल- 9425016025
ईमेल- brajeshrajputbhopal@gmail.com

पुस्तक समीक्षा

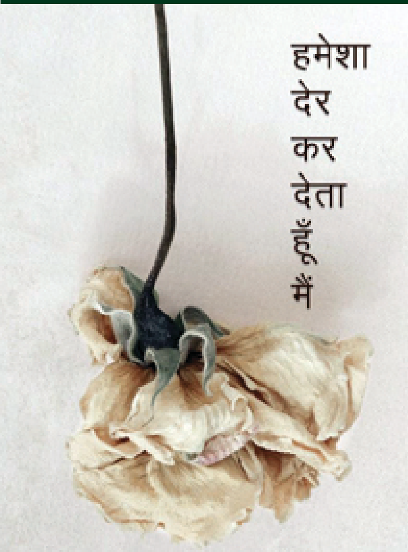

(कहानी संग्रह)

हमेशा देर कर देता हूँ मैं

समीक्षक : प्रज्ञा

लेखक : पंकज सुबीर

प्रकाशक : राजपाल एण्ड संज़, नई दिल्ली

द्वंद्व, असमंजस, करूँ या न करूँ के बीच ज़रा सी देरी कब फ़ासला बन जाती है। फ़ासला कब जानलेवा हो जाता है। जानलेवा फ़ासले पाप-पुण्य, नैतिकता के प्रतिमानों के परे कुछ फलसफे गढ़ने लगते हैं-पंकज सुबीर की कहानी इन्हीं के इर्द गिर्द जीवन को रचती है। लम्बी चाची के जीवन का सूना कोना, मन्नी के भीतर के मनीष की मन्नी से टकराहट बुनती कहानी है 'हमेशा देर कर देता हूँ मैं'। पंकज जी की कहानी कला का महत्त्वपूर्ण बिंदु उनका दृश्य को पूरी तन्मयता से रचना है। जहाँ नदी है, आसपास के पेड़-पौधे हैं, नदी में नहाते किशोर हैं और अचानक जैसे कथाकार के हाथ का कैमरा नदी के जल में एड़ियाँ रगड़ती लम्बी चाची पर फोकस हो जाता है। कहानी में वर्णित मुनीर नियाज़ी की नज़्म पूरे माहौल को शब्द देती है।

कथन में पढ़ी थी खोद खोद मरे ऊँदरा बैठे आन, सरकारी योजनाएँ जो किसान हित के लिए घोषित होती हैं उनका लाभ किसान को मिलने से पूर्व कैसे पूरा गिद्ध तंत्र नोच खसोट में लग जाता है। योजना के बहाने सारे जोड़ तोड़ फिट कर लिए जाते हैं और सबकी चाँदी होती है, अकेले उस किसान को छोड़कर जिसे इस योजना का लाभ मिलना है। पंकज जी की कहानी अपने शीर्षक और कहानी की शुरुआत से पहले एक टिप्पणी से ध्यान खींचती है। किसान की सहायता का छद्म किस तरह का विद्रूप रचता है कहानी को पढ़कर जाना जा सकता है। घटनाओं की रवानगी और पठनीयता के क्रम में आप कहानी के साँपों की शिनाख्त करते हैं और अंततः उन श्रमिक चूहों पर नज़र जाती है जिन्होंने बिल खोदे और साँप उनमें बस गए। 'वेताल का जीवन कितना एकाकी है'-कहानी कॉमिक्स करेक्टर वेताल के बहाने सुविधाओं के लिये अंधी दौड़ लगाने वाले समाज की खोखली उपलब्धियों का जायज़ा लेती है। वेताल का पूरा रूपक आज की जीवन शैली पर घटाया गया है। यही नहीं धनंजय और संदीप- दो पीढ़ियों को आमने-सामने रखकर दोनों की अपेक्षाओं को समझना और दोनों के भीतर रिश्तों की नमी खोज निकालना कहानी का मूल है। इस कार्य को वेताल, धनंजय शर्माऔर संदीप के पिता तीनों को एक से दूसरे और दूसरे से तीसरे में ट्रांसफॉर्म कराते हुए कहानी अपने अंत पर आती है। दृश्यांकन और वर्णन के चितेरे पंकज जी संवादों से, वेताल के अकेलेपन, ग्लोबल दुनिया में नितांत अकेली छोड़ दी गई बुज़ुर्ग पीढ़ी को चिन्हित करते हैं। कहानी का सकारात्मक अंत वास्तव में पत्थर हो जाने से पहले उसके भीतर की नमी निकाल लाता है। शर्त भी यही है मनुष्य के भीतर की मनुष्यता रूपी नमी सूख न चली हो। सकारात्मक अंत ही पहचान है कि वेताल अब एकाकी जीवन भोगने को अभिशप्त नहीं रहेगा। पंकज सुबीर की कहानी 'चर्च-ए-गुम 'अपनी बारीक डिटेलिंग के साथ पूँजी और धर्म के गठजोड़ को चर्च की ज़मीन हड़पकर शिवमंदिर की स्थापना और मिठाई की दुकान-व्यापार बचाने की सभी तीखी कवायदों को सामने लाती है।

इलोई इलोई लामा सबाख़्तानी कहानी विशिष्ट है। कहानियाँ, किस्सों की शक्ल में समाजशास्त्रीय अध्ययन का अनुषंग भी हैं और अधिगम की एक बेहतर कार्यशालाएँ भी। वे कलात्मक रूप से संस्कृति, इतिहास, अर्थतंत्र, पर्यावरण जैसे विषय को साधती हैं। ये विषय समाजशास्त्रीय छाते के नीचे एकअन्तरलय के साथ आते हैं। कुशल कथाकार इस अन्तरलय को कलात्मकता के साथ प्रस्तुत करता है। जिस इतिहास पर धूल पड़ चुकी है उस पर निगाह जाना उसकी धूल झाड़कर, उसे किस्सागोई में ढालकर एक सामाजिक सरोकार से जोड़ना साहित्य को व्यापकता देता है। पंकज सुबीर जैसा मंझा हुआ कथाकार इस बार ऐसी ही कहानी लेकर आया है। कहानी एक साथ अनेक कई धरातल पर सक्रिय रहती है। एक ओर इतिहास है, एक ओर नानी की कहानी है और एक ओर वर्तमान है। कहानी कड़ियाँ जोड़ती हुई एक भयावह क्रूरता को सामने लाती है। इस कहानी की नानी एक भीतर से एक संकल्प चेतना से भरी है पर साथ ही शुभांगी से कथा को अपनी मृत्यु तक छिपाए रखना नानी के भीतर पितृसत्ता के आतंक का भी खुलासा करती है। निजी प्रगतिशीलता और सार्वजनिक स्तर पर बने भयों से ग्रस्त ये नानी नौजवान पीढ़ी को एक नई धरोहर सौंपती है जिसमें ऐसा अंतर्विरोध न हो।

000

प्रो. प्रज्ञा
किरोड़ीमल कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली -7
मोबाइल- 9811585399

पुस्तक समीक्षा

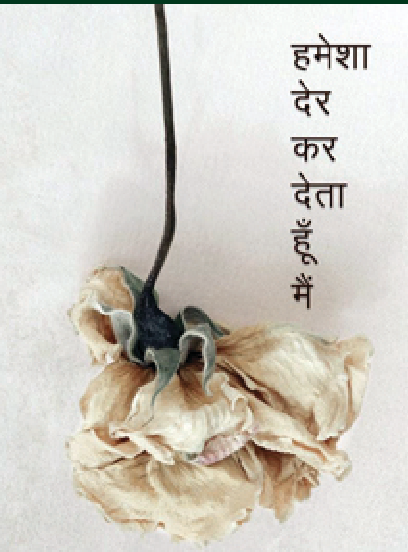

(कहानी संग्रह)

हमेशा देर कर देता हूँ मैं

समीक्षक : प्रमोद त्रिवेदी

लेखक : पंकज सुबीर

प्रकाशक : राजपाल एण्ड संज़, नई दिल्ली

"हमेशा देर कर देता हूँ मैं" की कहानियों के साथ होना, पंकज सुबीर के साथ होने जैसा ही लगा। इन कहानियों के साथ पंकज सुबीर का नाम चस्पा न हो तब भी सजग पाठक इन्हें- पंकज सुबीर की कहानियाँ ही मानेंगे और वे ग़लत भी नहीं होंगे। पंकज सुबीर कहानियाँ लिखते नहीं, सिरजते हैं। कहानियाँ तो आपके सामने होती हैं आँखों देखीं। परिदृश्य बहुत गहरा और व्यापक होता है उसी व्याप्ति में जब पंकज सुबीर अपने कथा-पात्रों को सिरजते हैं तो लगता है-मानों इन्हीं कहानियों के लिए वे अवतरित हैं।

इस नई सदी में कृषि-सभ्यता और ग्राम्य जीवन में जो बदलाव आए हैं, उसके दुष्परिणाम अब सामने आ रहे हैं। प्रेमचन्द की कहानियों में जो संकेत मिल रहे थे उनका व्यापक और वीभत्स रूप और उसका असर साफ-साफ नज़र आ रहा है। पंकज सुबीर अपनी कहानियों को पाठक से पढ़वाते ही नहीं हैं- उन्हें दिखलाते भी हैं ! जो सतह पर है, वह सब और सतहों के नीचे हैं, वह सब भी बल्कि यह कहानियाँ सतह से नीचे अपनी जड़ों में ज़्यादा जगह बनती है। यही नहीं, इन कहानियों की अनुगूँज संवेदनशील पाठक को विचलित करती है।

इस संकलन की पहली कहानी- "हमेशा देर कर देता हूँ मैं" जिस तरह शुरू होती है, उसमें कहानी का खुलासा एकदम नहीं होता है। हाँ, जिज्ञासा शब्द-दर-शब्द, पंक्ति-दर-पंक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। इसीलिए पाठक पर गिरफ्त मज़बूत ज़रूर होती जाती है। पुस्तक में पृष्ठ-५ से कहानी आरम्भ होती है पर पृष्ठ १३ तक तो आप सतह पर पाठक को सैर करवाते हैं। यह भी कम रोचक नहीं है। जैसे सिद्ध शास्त्रीय गायक अपने आलाप से राग के स्वरूप को उकेरता है। कथा का पूर्व-राग भी कुछ ऐसा ही है। पृष्ठ-१३ से फ्लेश-बैक कथारंभ। इन पृष्ठों में शायर मुनीर नियाज़ी के शब्दों का असर बाँधता है। ये शब्द सीधे दिल को छूते हैं। गहरे रोमांटिसिज़्म में कहानी शनै-शनै आगे बढ़ती है-सहज पके सो मिठा। भारत और पाकिस्तान के बीच चाहे कितनी ही समस्या हो, विद्वेश-नफरत हों, जटिल मसले हों, पर शायर के कलाम को सरहद पार करने और अपना असर पैदा करने के लिए किसी पॉसपोर्ट-वीज़ा की ज़रूरत नहीं होती। शब्द सरहदों का ही नहीं, काल का अतिक्रमण कर जाते हैं। यह सब भी मूल कहानी का बेकड्राप ही है। पूर्व राग समाप्त !

अब कहानी में लम्बी चाची का प्रवेश। गाँव, नदी, जंगल-हर प्रेम में लम्बी चाची की उपस्थिति। और अपने यार-दोस्तों के साथ मन्नो ! यार-दोस्त अर्थात किशोर में घिरती-घेरती स्वाभाविक जिज्ञासाएँ। एक विकल अकुलाहट। इधर लम्बी चाची और परसोत्तम चाचा। क्या यह "परसोत्तम" संज्ञा लम्बी चाची के पति के लिए सहज ही प्रयुक्त हो गइई या आपने सोच समझकर इसका प्रयोग लम्बी चाची के लिए किया? वे "पुरूषोत्तम" तो कितने- "पुरुषोत्तम"? लम्बी चाची के लिए कितने उपयुक्त ? एक पहाड़ी नदी को वश में करना उनके वश में नहीं था। इसका उद्गम प्रवाह किसी मर्यादा को नहीं मान रहा था। तब मन्नो ही एकमात्र समाधान था, जब कि मन्नो तैयार ही नहीं था मानसिक रूप से। स्त्री किस हद तक जा सकती है अपनी पूर्णता से रू-ब-रू होने के लिए और विफल होने पर कितना अकारथ लगता है सबकुछ अपना जीवन भी। ख़ूबी यह कि इसमें सब कुछ होने या होने की सारी संभावनाओं के बावजूद यह कहानी एक गहरी करूणा जगाती है। "खोद-खोद मरे ऊँदरा, बैठे आन भुजंग उर्फ भावान्तर" प्रेमचन्द जिस- "महाजनी" सभ्यता से दुखी रहे यह कहानी हमारी इस सदी उसी महाजनी सभ्यता का क्रूर और वीभत्स संस्करण है। प्रेमचन्द यदि आज होते तो (क्यों होते ?) वे भी इसी भूमि पर कोई कहानी अवश्य लिखते। ख़ुशी है- मालवी और मालवा पंकज सुबीर में बराबर सक्रिय है। यदि बीजों को सही ज़मीन मिल गई तो वह एक दिन आकाश को पेड़ की शक्ल में आकाश तो छूही लेगा। "वेताल का जीवन कितना एकाकी" में मिस्टिक तत्त्व गहरा है। शायद अब यह एकाकीपन हमारे समय की सब से बड़ी सच्चाई है। एक क्रूर अभिशाप। नई पीढ़ी में पद और पैकेज का आकर्षण सात समंदर पार का आकर्षण। मुझे लगा अरे, यह तो मेरी कहानी लिख दी लेखक ने !

000

प्रमोद त्रिवेदी
"मन्वन्तर", 205, सेठीनगर, उज्जैन, मप्र, 456010
मोबाइल- 9755160197

पुस्तक समीक्षा

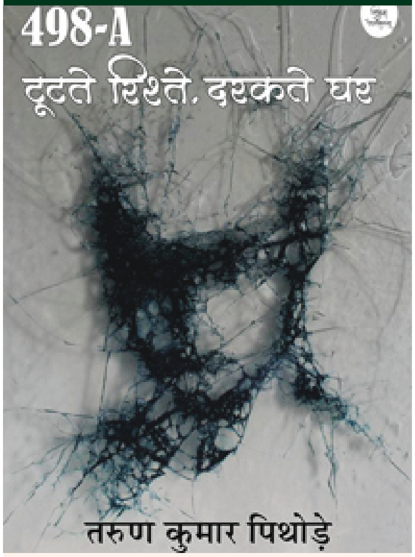

(उपन्यास)

टूटते रिश्ते-दरकते घर

समीक्षक : दीपक गिरकर

लेखक : तरुण पिथोड़े

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

"टूटते रिश्ते, दरकते घर" पारिवारिक संबंधों पर आधारित एक सामाजिक उपन्यास है। इस लघु उपन्यास में पुरुष पात्रों के सांसारिक संघर्ष की कहानी रची गई है। इस कृति में ज़मीनी सच्चाइयों का अंकन है। दहेज प्रथा हमारे समाज में लगा एक ऐसा कोढ़ है जिसके कारण हर साल कई औरतों के ऊपर जुल्म होता है और कई बार तो उन्हें अपनी जान से हाथ भी धो लेना पड़ता है। इस बात में कोई दो राय नहीं है कई लड़कियों की ज़िंदगी इस कारण जहन्नुम बन चुकी है। परन्तु दुनिया में हर बात के दो पहलू होते हैं और अक्सर हम एक ही पहलू देखते हैं। जब हम किसी दहेज़ के मामले से जुड़ी ख़बर सुनते हैं तो ससुराल वालों के ख़िलाफ़ पहले ही अपनी राय बना लेते हैं। लेकिन इस बात में भी सच्चाई है कि कई बार दहेज उत्पीड़न के ये मामले झूठे भी होते हैं। दहेज के कई झूठे मामलों में निर्दोष ससुराल वालों को हर साल फँसाया जाता है। इस कृति में भी पूजा द्वारा अपने पति सौरभ और उसके परिवार वालों को दहेज़ के झूठे प्रकरण में फँसाया जाता है। उपन्यास का कथानक अनेक घटनाओं और नाटकीयता से धीरे-धीरे आगे बढ़ता है। उपन्यास के केंद्र में तुषार, सौरभ और पूजा की मुख्य भूमिका है जिनके इर्द-गिर्द ही उपन्यास की कहानी चलती है। यह उपन्यास तुषार, सौरभ, तुषार और सौरभ के पिता साधु इत्यादि पात्रों के जीवन, उनके सुख-दु:ख को बयाँ करता है। इनके अलावा इस उपन्यास में करीना, शक्ति, संगीता, मदन, विराट, आशीष, धर्मेंद्र, मोहन, रितिक, कल्पेश, वरुण, करुणा, रमेश, बलराम के अलावा भी कुछ चरित्र है, जिनकी अलग-अलग गरिमा है। उपन्यास के पात्र गढ़े हुए नहीं लगते हैं, सभी पात्र जीवंत लगते हैं। पूजा और कोई नहीं बल्कि तुषार की पत्नी करीना की चचेरी बहन ही थी। सौरभ, तुषार और सौरभ व तुषार के माता-पिता पूजा के झूठे प्रकरण की वजह से मानसिक त्रासदियों से गुज़रते हैं। तुषार एक आईएएस अधिकारी है और तुषार भोपाल में ज़िला कलेक्टर के पद पर पदस्थ है। पूजा सौरभ, तुषार और उनके परिवार के ख़िलाफ़ दहेज़ का झूठा प्रकरण दर्ज करने के पश्चात समाचार पत्रों में इस प्रकरण को लेकर तुषार का नाम उछालती है जिससे तुषार बहुत अधिक तनाव में आ जाता है। उपन्यास में कथाकार ने तुषार के द्वंद्व का सजीव चित्रण किया है।

उपन्यास के कथानक में मौलिकता और स्वाभाविकता है। भाषा सरल और सहज है। लेखक ने पात्रों के मनोविज्ञान को भली-भाँति निरूपित किया है और साथ ही उनके स्वभाव को भी रूपायित किया है। लेखक ने इस कृति में सामाजिक यथार्थ और परिस्थितियों का सटीक शब्दांकन किया है। कथाकार ने मुखर होकर अपने समाज और अपने समय की सच्चाइयों का वास्तविक चित्र प्रस्तुत किया हैं। स्त्री की मानसिकता का विकृत रूप देखना हो तो आपको इस उपन्यास को पढ़ना होगा। इस कृति में यथार्थवादी जीवन, दोगलापन, रिश्तों का स्वार्थ, रिश्तों का विद्रूप चेहरा, विवाहपूर्व प्रेम, गिरती नैतिकता, माता-पिता का तनाव, असंतुष्ट दाम्पत्य जीवन, मन की हीन ग्रंथियाँ आदि का चित्रण मिलता है। कथाकार ने इस पुस्तक में बेहिचक सत्य को उद्घाटित किया है। उपन्यासकार ने कथावस्तु को गति देने के लिए कथोपकथन शैली का सहारा लिया है। कुछ संवादों द्वारा पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं पर भी प्रकाश डाला है। पात्रों का चरित्र चित्रण, व्यवहार स्वाभाविक है। सहज सी लगने वाली प्रवाहपूर्ण शैली में लेखक ने अपनी बात रखी है। उपन्यास का शीर्षक कथानक के अनुसार है और शीर्षक कलात्मक भी है। कथानक में सहजता है। इस उपन्यास को पढ़ने वाले की उत्सुकता बराबर बनी रहती है वह चाहकर भी उपन्यास को बीच में नहीं छोड़ सकता। उपन्यास की कहानी में प्रवाह है, अंत तक रोचकता बनी रहती है। "टूटते रिश्ते, दरकते घर" एक सशक्त उपन्यास है जिसमें दहेज़ के नाम पर एक स्त्री द्वारा अपने पति और ससुराल वालों की जो मानसिक प्रताड़ना की गई है उसे कथाकार ने जीवंतता के साथ उद्घाटित किया है। इस उपन्यास को पढ़ते हुए एक ज़िम्मेदार लेखक के सामाजिक सरोकार स्पष्ट होते है। तरुण कुमार पिथोड़े सशक्त उपन्यास लिखने के लिए बधाई के पात्र है।

000

दीपक गिरकर
28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- 452016
मोबाइल- 9425067036
ईमेल- deepakgirkar2016@gmail.com

पुस्तक समीक्षा

(रिपोर्ताज)

अनसोशल नेटवर्क

समीक्षक : ब्रजेश राजपूत

लेखक : दिलीप मंडल, गीता यादव

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

ब्रजेश राजपूत
ई-109/30
शिवाजी नगर, भोपाल, 462016, मप्र
मोबाइल- 9425016025
ईमेल- brajeshrajputbhopal@gmail.com

कुछ किताबें आपको पढ़ने के बाद बेचैन और लिखने के लिये विवश कर देती हैं ऐसी ही किताब है दिलीप मंडल और गीता यादव की अन सोशल नेटवर्क। आज आप हम सब सोशल मीडिया से जुड़े हैं और इस बात पर गर्व भी करते हैं कि हम सोशल मीडिया पर कितने फॉलोवर रखे हैं और कितना ज़्यादा समय इसे देते हैं। और ये सब बताकर हम ये जताने की कोशिश करते हैं कि हम कितने आधुनिक और कितने सोशल हैं। मगर इस किताब को पढ़ने के बाद आपके जाले साफ हो जाएँगे और आप समझने लगेंगे कि सोशल के नाम पर ये नेटवर्क कितने अनसोशल बनाते जा रहे हैं आपको। हालाँकि अनसोशल होने की परवाह नहीं कर आपको सोशल मीडिया के इनफ़्लुयेसर भी बनना है तो इस किताब में उसके भी नुस्खे हैं। फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम और वाट्सअप के करोड़ों यूज़र देश दुनिया में हैं मगर ये सारे यूज़र वहाँ सोशल बनने, अपना दायरा बढ़ाने और अपनी बात कहने जाते हैं। मगर इन सारे सोशल मीडिया प्लेटफार्म का एलगोरिदम ऐसा है कि वो अपने सारे यूजर को पढ़ता और गुनता है उसकी रुचि पसंद नापसंद परखता है और फिर उसे उसकी पसंद के लोगों के बीच ही खड़ा कर देता है। बिग डाटा एनालिसिस की सुविधा के कारण अब ये जानना बहुत आसान हो गया है कि यूज़र चाहता क्या है। इसके बाद एक ऐसा इको चैंबर उसके आस पास विकसित हो जाता है कि उसे अपनी रुचि के अनुसार ही विचार फोटो और उसकी जैसी सोच रखने वाले ही लोग मिलें। जिससे कि वो ज़्यादा से ज़्यादा समय सोशल मीडिया में खर्च करे। जिससे सोशल मीडिया की कंपनी का डाटा तैयार होता है जिसे बेचकर वो कंपनी पैसा कमाती है। आमतौर पर आदर्श स्थिति ये है कि हमें अपने विचार के साथ दूसरे के विचार की जानकारी भी आसानी से मिले, जिससे हम अपने विचारों को परखें, उनको दूसरों के मुकाबले तौले। मगर ऐसा होता नहीं है, इससे यूजर अपने विचारों को लेकर बेहद सख्त हो जाता है उसे ये जानकर अच्छा लगता है कि उस जैसा सोचने वाले बहुत सारे हैं, वो ऐसा सोचने वाला अकेला ही नहीं है। फिर ये विचारों की दृढ़ता उसके व्यवहार में उग्रता लाती है। जो कट्टरपंथी बनाने में देर नहीं करतीं। इसलिये इस किताब में बताया है कि सोशल मीडिया पर आपको होना ही आपको उग्र और आक्रामक बनाने को काफी है। विचारों की उग्रता की समस्या को दुनिया भर के देशों में उग्र राजनीतिक दलों के उभार ने भी बढ़ा दिया है। इसलिये आप देखेंगे कि इन दिनों सोशल मीडिया पर भड़काऊ तीखी पोस्टों की भरमार हो गई है। अब तो लोग एक दूसरे को मारने काटने की धमकियाँ भी सोशल मीडिया प्लेटफार्म पर देने लगे हैं, बिना इस बात की परवाह किये कि यहाँ लिखा गया एक-एक शब्द साक्ष्य होता है। मगर उग्रता सब भुला देती है। मज़े की बात ये है कि गंदी अश्लील और धमकाने वाली पोस्टों को भी वाहवाही मिलती है। जिससे लिखने वाले का हौसला ही बढ़ता है। संतुलित नज़रिए रखने वाले सोशल मीडिया पर जल्दी ही हाशिये पर चले जाते हैं। उदारवादी या मध्यमार्गी सोच रखने वालों की गुंजाइश इन दिनों सोशल मीडिया में कम है। ये भी इस किताब में बताया है। मगर सोशल मीडिया की सबसे बड़ी दिक्कत विश्वसनीयता की कमी है। सोशल मीडिया के सारे प्लेटफार्म का उपयोग दल और संगठनों से जुड़े लोग अपनी विचारधारा फैलाने और विरोधियों को बदनाम करने में लगातार करते हैं। जिस पर सोशल मीडिया का कंट्रोल नहीं है। वैसे भारत वो देश है जहाँ सबसे ज़्यादा सोशल मीडिया की पोस्ट सरकारी की तरफ से हटाई जाती हैं। ये सोशल मीडिया सामाजिक और आपसी रिश्तों में भी उथल-पुथल मचा रहा है। छोटी छोटी व्यक्तिगत पोस्ट से रिश्ते टूटने की कगार पर आ जाते हैं। वैचारिक पोस्ट घरों में दूरियाँ पैदा कर रही हैं और आपसी दूरियाँ बढ़ा रहीं है। इस सबके बावजूद सोशल मीडिया नए ज़माने में बड़ी ताक़त है। अपना विचार कम खर्च में हज़ोरों लाखों लोगों के बीच एक साथ फैलाने के लिए। मगर जब हम इसकी कमज़ोरियाँ, क्षमताएँ और सोशल मीडिया प्लेटफार्म चलाने वालों की बदमाशियाँ समझेंगे, तब इस नए ज़माने के मीडियम का संभलकर सतर्कता से उपयोग कर पाएँगे। एक अच्छी बेहतर किताब देने के लिये दिलीप मंडल और गीता यादव का धन्यवाद।

000

पुस्तक समीक्षा

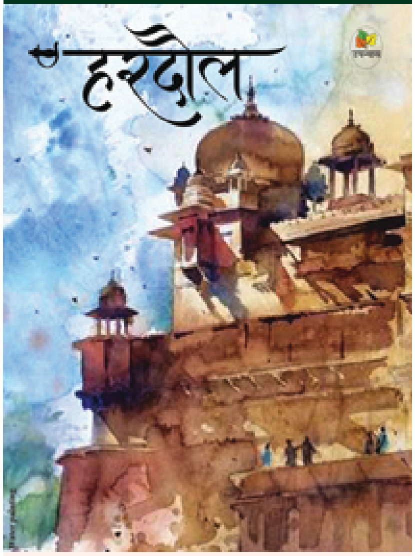

(उपन्यास)

हरदौल

समीक्षक : अशआर अली

लेखक : वंदना अवस्थी दुबे

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

ओरछा राजकुमार लाला हरदौल की कहानी को विभिन्न मंचों पर कई बार सुनाया गया है, लेकिन जिस तरह से वंदना अवस्थी दुबे ने इसे प्रस्तुत किया, सुनाया, इस कथा को पाठक के हृदय और विचारों में सदा के लिए स्थापित कर दिया है। कुछ ऐसा ही अनुभव उपन्यास "हरदौल" के शुरुआती चरण को पढ़ते ही मुझे हो गया था। हालाँकि इस बात से मैं इतना अचंभित नहीं था। मंत्रमुग्धता के चरम स्तर को छूने के लिए लिखी गई, इस ऐतिहासिक कहानी की भावनात्मक अपील, मेरे सहित अन्य पाठकों को भी प्रेरित कर रही है, इसका मुझको पूरा विश्वास है। यह उपन्यास अपने आप में एक जीवंत उदाहरण है कि वंदना अवस्थी दुबे के पास कहानी और उपन्यास लेखन की एक अनूठी और बेहतरीन तकनीक है। वास्तव में, उनका कथन भी उनके लेखन की तरह ही अच्छा है। इस कहानी को जिस तरह से वंदना अवस्थी दुबे द्वारा उपन्यास के रूप में निष्पादित किया गया है, वह एक चित्रमय प्रतिनिधित्व के लायक है। कहने का तात्पर्य यह है कि कहानी कहने के कौशल में वह शक्ति और प्रभाव है जो पाठक को वास्तव में पूरे दृश्य की कल्पना करने की अनुमति देता है। किस तरह एक निर्दोष व्यक्ति पर आरोप लगाया गया, कितनी निष्ठुरता से..कोई अनुकंपा नहीं...एक ऐसा व्यक्ति जिसने अपनी भाभी की पूजा एक माँ की तरह की, उसे दिए गए विष को दण्ड के रूप में स्वेच्छा से स्वीकार कर लिया, यह कुछ दृश्य इस तरह से निष्पादित किए गए कि इन्होंने सचमुच पढ़ते समय मेरे रोंगटे खड़े कर दिए। वास्तविक कहानी के सार एवं भाव को अक्षुण्ण रखते हुए और सभी अविश्वासों को त्यागकर, लेखिका अपने कथन में बहुत आत्मविश्वास से आगे बढ़ती हैं और पाठकों में पढ़ने की पकड़ बनाए रखने में सफल रहती हैं।

"हरदौल" बिना संयम रख के पढ़ने पर असहाय कर देती है और एक बार शुरू करने के बाद आप केवल एक चरण को पढ़ना बंद नहीं कर सकते। इसकी लेखन शैली के कारण यह आपको एक जोड़ की तरह बाँधे रखती है और आपको अधिक से अधिक पढ़ने के लिए प्रेरित करती है।

एक और पहलू जो कहानी पढ़ने के बाद बार-बार मेरे हृदय को अनायास छूता जा रहा है, वह यह है कि लाला हरदौल की मृत्यु के सदियों बाद भी, बुंदेलखंड के लोग अभी भी मानते हैं कि वह हर विवाह में प्रस्तुत होते हैं और वर वधू के माता-पिता की सहायता करते हैं। इस बात की कल्पना करना ही अपने आप में एक विचित्र अनुभव है, और अब तो वंदना अवस्थी दुबे का दमदार बयान इस चरित्र को आसानी से मन से वाष्पित नहीं होने देगा।

आराध्य राजकुमार की सदियों पहले मृत्यु हो गई थी, फिर भी वह बुंदेलखंडी लोगों के हृदय में जीवित हैं, जो उन्हें एक देवता के रूप में पूजते हैं। उपन्यास में एक परिष्कृत कहानी, मनोरम भाषा, चतुर निर्देशन और सूक्ष्म प्रक्षेपण का सही संतुलन है, जिसने इस सर्वकालिक कृति के साथ न्याय किया है। मैंने लाला हरदौल की कथा के बारे में सुना था लेकिन पूरी कहानी का जीवित अनुभव इस उपन्यास के माध्यम से किया, जो की एक उदार अनुभव था।

मैं स्वयं भी कविता, पटकथा लेखन, गायन, संगीत, और वॉयस ओवर का थोड़ा बहुत अनुभव एवं उत्साह रखता हूं और मेरा विश्वास है कि इस कहानी को जिस तरह से उपन्यास के रूप में निष्पादित किया गया है, वह एक चित्रमय प्रतिनिधित्व के लायक है। मुझे अच्छा लगेगा यदि किसी दिन मुझे भी इस कहानी के लिए वॉयस ओवर करने का अवसर और प्रसन्नता मिले, ताकि यह अधिक से अधिक श्रोताओं, पाठकों के हृदय में गहराई तक प्रवेश कर सके।

000

अशआर अली
उदयपुर, राजस्थान

पुस्तक समीक्षा

(कविता संग्रह)

सूरजमुखी सा खिलता है जो

समीक्षक : तरसेम गुजराल

लेखक : राकेश प्रेम

प्रकाशक : बिम्ब-प्रतिबिम्ब प्रकाशन, पंजाब

तरसेम गुजराल
444-ए, राजा गार्डन, डाक खाना, बस्ती बावाखेल, जालन्धर 144021, पंजाब
मोबाइल- 9463632855

राकेश प्रेम का काव्य - संग्रह 'सूरजमुखी सा खिलता है जो' हाल-फिलहाल में आया है। इसी वर्ष 'जड़ पकड़ते हुए' कविता- संग्रह के साथ। इससे पता चलता है कि उनकी गठरी काव्य भरपूर है जिसका प्रगटीकरण ठहरा हुआ - सा था। अवसर पाते ही नदिया की अरोक धारा जैसे छलछलाती हुई बहने लगी जोकि मनुष्य के उच्चतर गुणों का बहाव ले कर आती है और कल्पनाशीलता तथा सृजनधर्मिता की काव्य - सृजन की प्रवृत्ति से सुसज्जित है।

राकेश प्रेम काव्यधर्मिता; शब्द- अर्थ और कविता की सकारात्मक भूमिका को ले कर ख़ासे सजग और गंभीर दिखाई देते हैं। कविता उनके लिये जीवन धर्म और जीवन मूल्यों की पर्याय है। वह 'संजीवनी' है जोकि ब्रह्माण्ड में नाद - सी घूमती है और जिसका उद्देश्य शिव - तत्व की तरह मानव कल्याण है। जीवन की 'पाठशाला' में कवि, कविता का अर्थ ढूँढ़ता हुआ 'कविता जीवन है' के पर्याय को पाता है। वह 'कविता की ज़मीन से / अर्थ नया' दे पाने के प्रयास में जुटा है और 'कविता का आँगन' अपनी अ-शेष मेधा से बुहारना चाहता है - "शब्द के बाट से / अर्थ के ठाठ तक/ कवि- कर्म को / सहेजता !"

कविता को ले कर कवि की संजीदगी 'उजली धूप', 'जीवन की भाषा' तथा 'सृजन की ऊष्मा' जैसी कविताओं में भी देखी जा सकती है जैसे 'जीवन की भाषा' कविता में कवि कहता है : यह/ कविता की पगडंडी ही है / होता हुआ जिससे / शब्दों के जंगल से गुज़रता हुआ / जीवन की भाषा / बोल पाता हूँ

उजली धूप, कविता, कविता की प्राणशक्ति से अंतरंग परिचय कराती है और उसमें संचित अनुभव की भागीरथी का स्वागत करती है। 'सृजन की ऊष्मा', में प्रयोग का शीशा ले कर बदले हुए जटिल हालात में शब्दों के अर्थ को महसूस कर पाना दुष्कर व्यापार होता जा रहा है। शब्द लुट रहे हैं, तिजारती माहौल, धन का अतिशय प्रलोभन शब्दों को ध्वनित करता तो है किन्तु उनका अर्थ- संचार मन की गहराई तक उतरता नहीं : तापहीन मन सर्जक का / कल- नाद सृजन का ; / जड़ता के तालों में / रहा सिसक !

माँ- बाप के प्रति श्रद्धाभाव तथा पीढ़ियों का अन्तराल भी कवि की काव्य चिन्तन की भावधारा को सम्पुष्ट करते हैं। 'माँ', 'माँ की स्मृति', 'पिता' तथा 'अन्धेरा' जैसी कविताएँ इसकी साक्षी हैं : माँ मैं विवश हूँ / और क्षमाप्रार्थी भी / कि चाहकर भी / जी नहीं पा रहा हूँ शब्दों को / प्रकृति, संस्कृति, धर्म- दर्शन, सामाजिक विसंगतियाँ / और मानवीय संवेदना भी कवि के काव्य- चिन्तन को गतिशील बनाते हैं और यह भी : ज़िन्दगी एक गाना है / जिसे सबको गुनगुनाना है / ' संवेदना' शब्दातीत है, केवल अनुभव की वस्तु !

सामाजिक विसंगतियों से जुडा़ व्यंग्य- बोध कवि की सर्जनात्मकता को अभिव्यक्ति के कौशल से प्रस्तुत करता है : सबकी पिटारी में कैद हैं / अपने -अपने सुख / दु:ख पसरा है सबके चेहरों पर/ उतरती धूप-सा !

तथा : रोएँदार कीड़े रेंगते हैं / दिमाग़ की गहरी परतों में / जुगाली करते बैल-सा उठता है / तनाव का उफान / यह सुखद है कि राकेश प्रेम की कविताएँ सृजनधर्मी मानसिकता की कविताएँ हैं जोकि काव्य सर्जन के प्रति उनकी संवेदनशील वैचारिकता से जुड़ी हैं। इनका दूसरा पक्ष मानवीय संवेदना से जुड़ा है। इसी सृजनधर्मिता और संवेदनशीलता से शब्दों को सुलझाने की कला आती है जिसे कि राकेश प्रेम की कविताओं में बखूबी देखा जा सकता है। यह आत्मवंचना से बचते हुए आत्मसाक्षात्कार की कविताएँ हैं जिनका स्वागत है।

000

शोध आलेख

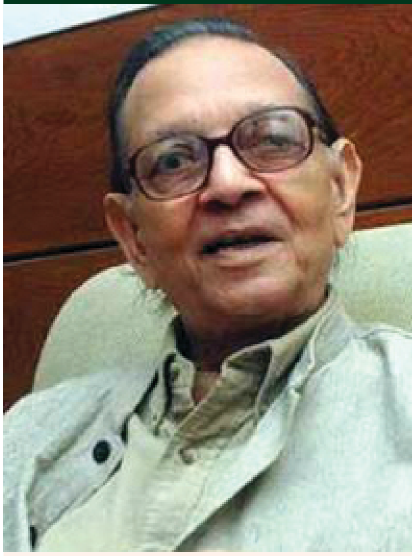

कुंवर नारायण का कथा-संसार

शोध : प्रो. प्रज्ञा

प्रो. प्रज्ञा
किरोड़ीमल कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली -7
मोबाइल- 9811585399

''कुछ आवाज़ें जिनसे बनते हैं
हमारे अंत:करण
इतनी सांकेतिक और आंतरिक होती हैं
कि उनके न रहने पर ही
हम जान पाते हैं कि वे थीं
सूक्ष्म कड़ियों की तरह
आदमी से आदमी को जोड़ती हुई
अदृश्य शृंखलाएँ''

'आवाज़ें' कविता से ली गईं कवि-कथाकार कुंवरनारायण की यह पंक्तियाँ दो महत्त्वपूर्ण पक्षों को उद्घाटित करती हैं। पहला पक्ष है हमारे जटिल यथार्थ के ताने-बाने में अनुपस्थित के सहसा उपस्थित हो जाने का। हमारे आस-पास घिरे ध्वनियों के फैले संसार में कुछ आवाज़ें शोर सरीखी निरर्थक आवाज़ों की तरह उथली नहीं हैं। हृदय के अतल में वे किसी अजस्त्र धार-सी अपने कोमल रूप में बहती चली आती हैं। इतनी गहरी कि उनका अभाव उनके न होने को तुरंत दर्ज कराता है। दूसरा पक्ष यह है कि ये ऐसी आवाज़ें हैं जो अंत:करण को विस्तार भी देती हैं। वे स्थूल ध्वनियाँ मात्र नहीं हैं। उनका रेशे केवल आँखों से देखे नहीं जा सकते, केवल हाथों से छुए नहीं जा सकते वे अनुभूति के हिस्से होते हैं। एक सघन अनुभूति जो अपनी पहचान में सामाजिक होती है एकाकी नहीं। यही सामाजिकता वह आधारभूमि बनती है जहाँ न केवल अनुपस्थित, उपस्थित हो जाता है बल्कि उपस्थित होकर हमारे निज का विस्तार भी करता है। कवि कुंवरनारायण के चर्चित कहानी-संग्रह 'आकारों के आसपास' की कहानियाँ चाहे अपने अकेलेपन से जूझने की हों या समाज के मनुष्यविरोधी चेहरों से जूझने की हों, वे मनुष्यता की माँग रखती हैं और यही वह बिंदु है जहाँ एकाकी अनुभव भी हाथ बढ़ाकर सामाजिकता के विस्तार में घुलना चाहते हैं।

इन कहानियों के पाठक, संग्रह से गुज़रते हुए व्यक्ति के यथार्थ और कहीं-कहीं सामाजिक यथार्थ को पकड़ने की प्रक्रिया से गुज़रते हैं। कुंवरनारायण की रचना-प्रक्रिया की भाँति ये प्रक्रिया भी कोई सरल नहीं है। वे व्यक्ति के प्रामाणिक अनुभूत को अनेक बार कथा में यथार्थ की तरह रचते हैं। यहाँ कथा की समूची संरचना जटिल इसलिए भी लगती है कि कहानी का उद्देश्य कहानी कहना नहीं है बल्कि वह अनेक दफा अनुभव की आँच पर पके सत्य को ही सामने लाने का एक प्रयास है। लेखकीय चिंता यह भी नहीं कि लेखक अपने प्रयास में कितना सफल और कितना असफल है। कहानी इस क्रम में कई बार एक अनुत्तरित अंत भी है। शायद यही कारण है कि संग्रह की कई कहानियों में एक व्यक्ति है जो जीवन की जटिलताओं में जैसा महसूस करता है उन्हें वैसा ही रच देता है। वह न तो पात्र गढ़ने का काम करता है, न घटनाओं की तफसील में जाता है, न कोई ब्यौरे पेश करता है। वहाँ हवा है, आसमान है, पर्दे और कलैंडर हैं जो किसी अनुपस्थित को उपस्थित करने के लिए प्रस्तुत हैं। यहाँ तक कि कई कहानियों में पात्रों के नाम रखने की भी कोई कोशिश कहानीकार ने नहीं की है। उसके लिए पात्र के नाम से अधिक मायने रखता है पात्र के भीतरी यथार्थ का अंकन। वह घटनाविहीन-सी परिस्थितियों में भी उद्वेलित, व्यथित और व्यग्र हो सकता है। कथाकार ने संग्रह की अनेक कहानियों को इसी रूप में रखा है। संग्रह की आरंभिक कहानियों-'आकारों के आस-पास',' संदिग्ध चालें', 'गुड़ियों का खेल' आदि में पाठक कथा के इन बिंदुओं को पकड़ता चलता है।

कवियों की कहानियों में कविताओं की-सी लय मिलना अंचभे की बात नहीं है। कविता जिन सूक्ष्म मनोभावों को बहुत कम शब्दों में अभिव्यक्त करती है कहानी उसे बिल्कुल अलग

ढंग से कहती है। कवि कुंवर नारायण की कहानी 'आकारों के आसपास' एक ऐसी ही कहानी है जिसका प्रत्येक हिस्सा एक स्वतंत्र कविता होने की क्षमता रखता है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे दो शिल्प और दो अभिव्यक्तियाँ एक-दूसरे में इस प्रकार गुंथी हैं कि उन्हें किसी भी तरह से अलग नहीं किया जा सकता हो। ऐसा लगता है कि उन्हें छुआ तो जैसे तिलिस्म टूट जाएगा। लगता है कि समय, भाव, संवेदना, विचार का अद्भुत संतुलन एक-दूसरे पर टिका है किसी को अलगाया तो वह बिखर जाएगा। इस कहानी में पात्र है पहला 'मैं' या वाचक। दूसरी 'हवा' जो वाचक से संवाद करती है। तीसरा वो 'बच्चा' जो खिड़की के रास्ते वाचक के घर में दाखिल होता है और चौथी 'रौशनी'। अपने मन की चारदीवारी में घिरा मैं एक तरफ अपनी सुरक्षा और सुविधा के शाश्वत केंद्र में है जिसे तोड़ने का संघर्ष वह करना चाहता है। यह घेरा उसे मलयज के शब्दों में "आत्मगति और जगत्गति की दोहरी यंत्रण से सुरक्षा देता है"। वह इस स्वयंसिद्ध दुनिया की परिपूर्णता में सुरक्षित रह सकता है। ऐसे में बाहर से आती हवा उसके दरवाजे पर दस्तक देती है। हवा मुक्त है और वाचक अपनी बनाई बेड़ियों और चारदीवारी में बंद। हवा का यों ही बेझिझक अधिकार से भीतर चले आना वाचक को चौंकाता है। हवा ढीठ और निर्लज्ज है। वह खिलखिलाती है। अपनी जगह ख़ुद बना लेती है। वाचक उसके संसर्ग में बदला हुआ अनुभव करता है। हवा, खिड़की खोल उसे भी भीतर बुलाना चाहती है जो न जाने कबसे बाहर खड़ा प्रतीक्षारत है-" अपनी उदासी से कहो थोड़ी और जगह दे तो उसको भी अंदर बुला लूँ।"वाचक उस मुसकुराते चेहरे को (बच्चे को) भीतर बुला तो लेता है पर अपनी खिंची तनावपूर्ण मुद्रा के कारण उसका स्वागत नहीं करता।

" केवल उस खुशी के प्रति जो वह लाया था इस तरह पेश आया मानो उसका कोई महत्त्व नहीं क्योंकि वह रोज़ की चीज़ है। वह रोशनी जो सारे कमरे में मचलने को आतुर थी ज़िद करने लगी। मैंने उठकर खिड़की बंद कर दी और अनुभव किया कि मुझमें ही कुछ अपमानित हुआ। हवा ने शायद बुरा माना क्योंकि वह चुपचाप दरवाजे उढ़काकर बाहर चली गई।"अगले दिन खबर आती है कि पड़ोस में बच्चे की मौत हो गई। वह जानना चाहता है कि जो मरा वह घर आया बच्चा ही तो नहीं था।

कहानी में हवा, वाचक के अमूर्त चित्रों के लिए कहती है कि वे उसे समझ नहीं आते ठीक वैसे ही जैसे वाचक हवा, रौशनी और बच्चे की उन्मुक्त सहजता को नहीं समझता है। इसीलिए वह हवा, रौशनी और बच्चे को घर से बाहर रखता है। वह मुक्ति, सहजता और वास्तविक जीवन को बाहर रखकर कला के अपने प्रतिमान बनाता है। रमेशचंद्र शाह पर लिखे एक लेख में मलयज कहते हैं-" कला ज़िंदगी के अर्थ को प्रमाणित नहीं करती, वह सिर्फ अपने सच को प्रमाणित करती है।" इसका सीधा अर्थ है कि ज़िंदगी का सच ज़िंदगी से ही प्रमाणित हो सकता है। यही कारण है कहानी में सुरक्षित दीवारों का घेरा, इस घेरे के भीतर बनाए हवा, रौशनी के चित्र सभी वास्तविक हवा, रौशनी के आते ही बदले हुए दिखाई देने लगते हैं। वाचक जब यह महसूस करता है कि " एक संघर्ष वह भी है जो अपनी ज़रूरतों से जीतने के लिए किया जाता है...." तब वह पाता है कि कला और सौंदर्य की चारदीवारी में बंद वह नितांत अकेला है। अंततः वह व्यापक जीवन-संघर्ष से जुड़ने का निर्णय लेता है। अपने सुरक्षित घेरे के किवाड़ खोल देता है और बाहर बह रहे आदिम जंगली तूफान को सीने से लगा लेता है। यह आदिम जंगली तूफान दहकता हुआ जंगल है जिसमें कलाकार को जीना है। जिसके बीच जीकर ही उसे अपनी कला के नए मायने भी खोजने होंगे।

संग्रह की कई कहानियाँ इंसान का मानवीय चेहरा तलाशने करने के क्रम में रची गईं हैं। वह मानवीयता जिसे 'संदिग्ध चालें' हर तरह से आदमियत के दरवाजे से बाहर धकेल देना चाहती हैं। जिनके भीतर हिंसक पशु हैं जिनके भयानक दांत और पंजे हैं। वह चालें आमादा हैं लोगों को पिंजड़े में डाल उनकी साँसों पर कब्जा कर उनसे मनमाफिक खिलवाड़ करने को। जैसे एक इंसानविरोधी क्रूर खेल चल रहा है जिसमें धन और शक्ति वहशियाना रूप लेकर तंत्र को निरंतर शक्तिशाली कर रहे हैं। इसीलिए 'आकारों के आसपास' की कहानियों सामाजिकता के पक्ष से जुड़कर उस चेहरे की खोज में संलग्न रहती हैं जिस पर ज़माने की धूल चस्पां हो गई है या जिसे इंसान ने ख़ुद ही खो दिया है। संग्रह की 'अफसर' कहानी अपने समूचे विधान और कथ्य में परसाई की शैली की रचना जान पड़ती है। परसाई की तरह एक तीखा विडम्बना बोध, एक गहरी विसंगति, एक भयानक विद्रूप इसके व्यंग्य के ताप को बढ़ाता है। एक व्यक्ति की विडम्बना को कथाकार पूरे माहौल में रच देता है। यह कुंवर नारायण के कथाकार की विशिष्ट शैली है। जहाँ परेशानहाल आदमी किसी आदमी की आदमीयत के अभाव में परिवेश की हर वस्तु से जुड़ जाता है। कमरे का कलैंडर, हवा, अखबार, पर्दे, घड़ी सब उस व्यक्ति से संवाद करने लगते हैं। बेजान वस्तुओं से संवाद व्यक्ति को निरंतर एकाकी बनाकर अकेले कर दिए जाने की ठोस सूचना सरीखा कहानी में आता है। एक परेशानहाल आदमी लगातार दफ्तरों के चक्कर काटकर जिस अनुत्पादक, संवेदनहीन समाज का हिस्सा बनकर रोज़ मरता है वह इस कहानी में भी शामिल है। यह अकेला कर दिया गया आदमी अपनी समस्या के समाधान में एक लंबी प्रतीक्षा की ओर धकेल दिया जाता है। कमरे में हवा से उड़ रहे कागज़ ही एक निरर्थक समय में एकमात्र उत्पादक कार्यवाही की शक्ल में पेश होते हैं। जहाँ घंटी भी अफसरी गुस्से की शक्ल में नुमाया होती है। ख़ुद को समय के एक बड़े हिस्से के सुपुर्द करके वह मामूली आदमी बेजान वस्तुओं से एक मानवीय संबंध बनाने की मोहलत के बाद अफसर के कमरे में दाखिल होता है। मेज के पार अफसर की शक्ल में उसे एक डरा हुआ आदमी दीखता है जिसने अफसर का कवच पहना है। इससे पहले की समस्या के कारण और समाधान की तह तक पहुँचा जाता अफसर से बड़ी किसी

ताकत का अंदाज़ा उसके फ़ोन पर बात करने के अंदाज़ से हो जाता है। फ़ोन के बाद सिर्फ पाँच मिनट का समय अफसर देता है। और इन्हीं पाँच मिनिट में समस्या के कभी न मिलने वाले समाधान को अफसर अपने वाक्चातुर्य से समय पर छोड़ देता है। यहीं से कहानी नई टोन पकड़ती है। पूरी कहानी में न झुँझलाने वाला आदमी अफसरीयत के थोथे गुमान के बरक्स चट्टान-सा खड़ा हो जाता है। यहीं निराला की वे आँखें याद आती हैं-'देखा मुझे उस दृष्टि से जो मार खा रोई नहीं' और यहीं परसाई की कड़ी का व्यंग्य लक्षित होता है। तमाम निराशाओं में चुकने के बावजूद सामने आता है आम आदमी का आख़िरी उपाय - भाषा। यहीं से कहानी में जारी अफसर-आदमी संवाद जो शतरंज की तरह ख़ास से आम की लड़ाई को सामने लाता है। जहाँ पूरी व्यवस्था अपनी बेईमानी को होशियारी का जामा पहनाकर सुर्खरू बनी रहती है। एक तरफ लाचारी से उपजी छटपटाहट है तो दूसरी तरफ एक निस्पृह बेशर्मी। पर छटपटाहट लोहा लेती है-'' यह किसी इज्जतदार देश की वफादार सरकार है या मक्कार झूठों का गिरोह?''इस पर आदमी को बाहर फिकवाने की धमकी देकर अफसर जंग में जीतने के दंभ से भर उठता है।

यहीं एक नाटकीय झटका रचकर कथाकार इस आम के पक्ष को विराट कर देता है। एक शह फिर मात में तब्दील हो जाती है। आम आदमी जब रूआँसा-सा दफतर से निकलने को होता है तभी अफसर कह उठता है-'' आशा है, आप मेरी बातों को व्यक्तिगत स्तर पर न लेंगे। मैं तो केवल एक सरकारी नौकर हूँ...मेरे हाथ बंधे हैं। मुझे खेद है कि यह निश्चय आपके हित में नहीं,लेकिन देश के हित में है।''यहाँ आम आदमी अपनी तीव्र बुद्धि से सरकारी संस्थानों में चल रहे उस अमानवीय खेल को पाता है जहाँ साधारण लोगों की तकलीफों को जानते-बूझते भी तकलीफ दूर नहीं की जाती। ऐसे में नाउम्मीद आम आदमी जो एक क्षण पहले रूआँसा निकल रहा था अब जीत का अनुभव करता है कि इस अमानवीय तंत्र में और कुछ न सही मानवीय बनने का उपक्रम तो किया ही जा रहा है। हालांकि ये उपक्रम निरा धोखा ही है। जो आमजन की इच्छाओं,उम्मीदों को पूरा न करने में असमर्थ होकर उसके पीछे 'देशहित' जैसे राष्ट्रीय सरोकार को जोड़ देता है। हास्यास्पद यही है कि क्या यह व्यक्ति और इस जैसे अनेक व्यक्तियों से ही मिलकर देश नहीं बनता है? यही वजह है कि कहानी में आम आदमी को लगता है उसके जख्म पर झूठा ही सही एक मानवीय फाया लगाने का उपक्रम करके अफसर ने अपनी अफसरीयत के साथ विश्वासघात किया है। देशहित को अपने सबसे बड़े हथियार के रूप में प्रयोग किया जाना अंततः इस जनतंत्र में जन को हाशिये में धकेलकर तंत्र के फलने-फूलने के रास्ते बनाना है।

ये कहानियाँ व्यक्ति सत्य और सामाजिक सत्य के दो छोर तलाशती आगे बढ़ती हैं। दोनों के बीच की कड़ी खोजते हुए यह अनुपस्थित को उपस्थित कर देती हैं। आगे चलकर यही अनुपस्थित अपनी उपस्थिति रचकर मानवीयता के घेरे का विस्तार करता है। दरअसल यह वही विस्तार है जिसे संग्रह की भूमिका में बार-बार लेखक कहानी के नाम पर यथार्थ के मानसिक स्तर पर जिये जाने का आग्रह अपने पाठकों से करता है। जाहिर है जब आग्रह मानसिक स्तर पर इस यथार्थ को जिये जाने का होगा तो व्यावहारिक स्तर पर इस यथार्थ की परिणति कहानियों में नहीं दिखाई देगी। मसलन संग्रह की कहानियों में आप चाहें 'संदिग्ध चालों' को लें, 'अफसर' को लें, 'आकारों के आसपास' को लें। इन तीनों को ही इस कथन के आलोक में देखिए तो तीनों ही 'मैं' यथार्थ को मानसिक स्तर पर तो जीते हैं पर वह देख, सुन, समझकर क्रियाशील नहीं होते। यहाँ कहा जा सकता है कि मुक्तिबोध का 'ज्ञानात्मक संवेदन' तो उन्हें हो जाता है जिससे वह परिस्थितियों के बीच सत्य से साक्षात्कार करते हैं पर यह 'सकर्मक ज्ञानात्मक संवेदन' में बदलता दिखाई नहीं देता जो इस साक्षात्कार के बाद की अगली कड़ी है। कथाकार ने स्वयं संग्रह की भूमिका में लिखा है-'' यथार्थ के नाम पर कहानी नहीं, कहानी के नाम पर यथार्थ की बात करता हूँ- उस यथार्थ की बात जिसे केवल व्यावहारिक स्तर नहीं, मुख्तया मानसिक स्तर पर जिया जाता है।''इसी भूमिका में एक अन्य जगह लेखक ने अपने इसी आग्रह को दोहराया है-'' कहीं-कहीं पूरी कहानी को बिल्कुल एबस्ट्रैक्शन के स्तर पर रखकर कुछ ठोस निष्कर्षों से नत्थी कर दिया है मानो सारा अनुभव वस्तुओं और घटनाओं के नहीं, एक ख़ास तरह के मानसिक संदर्भ में जिया जा रहा हो...'' यही वजह है कि मानसिक रूप से इन संदर्भों को जानने के बाद अधिकांश कहानियों के पात्र आगे कोई प्रतिक्रिया व्यक्त करते दिखाई नहीं देते। ख़ासतौर से इन तीन कहानियों में।

संग्रह की अधिकांश कहानियाँ पशु बनते जा रहे समाज में मनुष्य को बचाने की जदेजहद से जुड़ी हैं। मनुष्य जिसे व्यक्तिगत से लेकर बड़ी लड़ाइयों का खून मुँह लग गया है। इसका सबसे सटीक उदाहरण बनकर जो कहानी सामने आती है वह 'दो आदमियों की लड़ाई' कहानी है। यहाँ स्वाभाविक रूप से संकेत उन लड़ाईयों की ओर किया गया है जो मनुष्य द्वारा आयोजित-प्रायोजित करके, लड़ाई को पशुओं के बीच रचकर मनुष्य उनमें एक हिंसक आनंद का आस्वाद लेता है। ऐसी लड़ाईयाँ विश्व भर में हिंसक आनंद के लिए रची गईं हैं। पर यहाँ कथाकार ने यह क्रम उलट दिया है। यहाँ लड़ने वाले और आनंद उठाने वाले बदल गए हैं। मनुष्य लड़ रहे हैं और जानवर आनंद उठा रहे हैं। कथाकार ने इसे 'पंचतंत्र और ईसप्स फेबिल्स की तकनीक को उलट देना'कहा है। दिक्कत यह है कि जानवरों के आनंद में भी अनेक प्रकार की बाधाएँ आ रही हैं। पहली बात तो मनुष्य लगातार हमलावर होते हुए एक-दूसरे को अलग-अलग जानवरों के नाम से पुकार रहा है। ये भला आनंद उठाने वाले जानवर दर्शक को कैसे सुहायेगा? 'शुद्ध स्पोर्ट्स' के आनंद में व्यवधान अनेक हैं। इधर दिक्कतें लड़ने वालों के बीच भी कम नहीं। एक आदमी का दूसरे को 'सुअर' कहना उतना बुरा नहीं जितना पलटवार ढंग से उसे 'सूअर का बच्चा 'कहना।

यह जैसे उसकी कमजोरी को गलियाना है। हिंसा में बच्चा सिद्ध होना बेहद अपमानजनक है। इससे पाठक लेखक के बिन कहे समझ जाता है कि यदि 'सूअर का बाप' कहा जाता तो अधिक सम्मानजनक होता। जानवर द्वारा लड़ाई की वजह पूछे जाने पर भी सन्नाटा छा जाता है। जिसका उत्तर आता है-इसके लिए कारण की नहीं ताकत की ज़रूरत होती है। कहानी बेवजह लड़ी जा रही लड़ाईयों के साथ प्रकारांतर से इतिहास में युद्धों की पूरी समझ को भी सामने लाती है। " अगर एक क्षण के लिए भी वे लड़ने का काम स्थगित कर देते तो मनुष्य का इतिहास ही नहीं बन पाता क्योंकि इतिहास लड़ाइयों का हुआ करता है, शांतियों का नहीं।"समाज में शांति की लगातार स्थगित रखी जा रही प्रक्रिया में हर व्यक्ति बड़ा बनने की लड़ाई लड़ रहा है। छोटे-छोटे अहं और शक्ति प्रदर्शन के जुनून ने समाज के स्वास्थ्य को बेतरह बिगाड़ा है। रेलवे क्रासिंग के गेट पर लोगों को रोकने में हड़काते गार्ड और उसके स्वनियुक्त बेटे द्वारा लड़ाई के ये सूत्र पाठक को 'बड़ा आदमी' कहानी में भी दिखाई देते हैं। ड्यूटी पर तैनात सरकारी गार्ड और उसका बेटा हैसियत का परिसर रचते हैं और एक दिन अचानक इस परिसर में सेंध मार जाता है उनसे भी ऊँची हैसियत वाला आदमी। कुंवरनारायण की लगभग हर कहानी में कुछ लोग पर्यवेक्षक की भूमिका में रहते हैं। घटनाएँ उनके सामने घटित होती हैं। वे दोनों पक्षों को देखते हैं और सत्य की मानसिक प्रतीति करके निकल जाते हैं। इसी तरह घटनाओं के विश्लेषण के क्रम में लेखक कई जगह एक निष्कर्षात्मक टिप्पणी करता चलता है। इन टिप्पणियों में उसके अनुभव की भाप महसूस होती है। " वास्तव में बड़ा आदमी वह जिसे कम दिखाई दे, जो अंधेरे और उजाले में फर्क न कर सके।" इसी के साथ 'जनमति' कहानी को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता। 'जनमति' में लोग पर्यवेक्षक की भूमिका से निकल सक्रिय भूमिका में आते हैं। पर यह कहानी जनमति को भी प्रश्नित करती है। साइकिल चोर के संग न्याय और वास्तविक मालिक संग अन्याय की मिसाल है ये कहानी। जनमति एक बेचेहरा जमावड़े की बुद्धि बनकर एक चोर को मालिक मानकर ख़ुद को पंच बनाकर स्वयं न्याय कराने का हक ले बैठती है। एक के बाद एक रोचक कड़ी किस्सागोई सरीखी सामने आती है। पर न्याय के क्षेत्र में भारी भूल और लापरवाही किस तरह चोर के पक्ष में जा बैठती है ये कोई नहीं जानता और जानने की किसी की इच्छा भी नहीं। यहाँ भी प्रकारांतर से छिड़ी सच और झूठ की लड़ाई में सच की हार सामने आती है जिसमें जनमति चतुराई सिद्ध करती मूर्खता के पाले में जाकर गिरती है।

संग्रह की छोटी-छोटी सत्रह कहानियाँ विभिन्न कथात्मक प्रयोगों से जुड़ी हैं। इसीलिए इस विस्तार को संग्रह की कहानियाँ एक अंदाज़ में नहीं रचतीं। उनका तरीका अपने कहन में नया होता है। कहीं किस्सागोई का अंदाज़ है जैसे 'मुगल सल्तनत और भिश्ती' कहानी इतिहास की कथाओं के ताने-बाने में सामने आती है तो कहीं प्रतीकों-रूपकों की योजना। कहीं संवाद है तो कहीं खामोशी। कहीं अमूर्तन के रेखांकन की भी कोशिश है। अपनी प्रयोगशीलता में जहाँ संग्रह की आरंभिक कहानियों में कविता की लय, अमूर्त का रचाव, व्यक्ति सत्य की हिमायत, घटनाविहीनता अधिक मिलती है वहाँ आगे की कहानियाँ नए रूप में सामने आती हैं। कथाकार की कुछ कहानियाँ घटनात्मकता से अपनी शुरूआत करते हुए एक रोमांच भी निर्मित करती हैं और उन्हें पढ़ते हुए पाठक को खासी उत्तेजना भी महसूस होती है। मसलन 'मुआवज़ा' इसी तरह की कहानी है। इस कहानी में पर्याप्त नाटकीयता है। घटनाओं के घर्षण से एक जिज्ञासा निरंतर गतिमान रहती है। कहानी सड़क पर घटी एक दुर्घटना से आरंभ होती है जिसमें एक साइकिल वाला एक मोटर वाले से टकरा जाता है और साइकिल वाले की कमीज फट जाती है। आरंभ में यह कहानी व्यवस्था में वर्गीय विषमता की कहानी प्रतीत होती है पर जल्द ही इसके चुस्त संवाद इसे विषमतामूलक व्यवस्था की कई और कहानियों से अलगा देते हैं। आमतौर पर जहाँ विषमता के स्वर होते हैं वहाँ वर्चस्व की आवाज़ ताकतवर होती है और दूसरी आवाज़ दबी हुई। पर यहाँ दोनों ही आवाज़ें समान हैं और कहीं-कहीं तो दूसरी आवाज़ अधिक ताकतवर होकर अपने नुकसान का हर्जाना माँगती है। गौरतलब यह भी है कि कहानी में साइकिल वाले की कमीज फटती ज़रूर है पर यातायात के नियम मोटर वाले ने भंग नहीं किए होते। दोनों अपनी बात पर अड़े रहते हैं। सड़क पर भीड़ झगड़े की उत्तेजना के रंग में तरबतर दीखती है। " वातावरण में कहीं दंगा हो जाने की-सी उत्तेजना थी। पहले से काफी इंतजाम किया गया होता तो महायुद्ध तक हो सकता था।'लेकिन कहानी का अंत एक झटके में होता है जहाँ मोटर वाला मोटर से निकलकर आता है। साइकिल वाला उसके सामने और भीड़ उन्हें घेरे 'क्या होगा?' का प्रश्न लिए दांतों तले उँगली दबाए खड़ी रहती है अचानक कहानी एक झटका देकर सारी उत्तेजनाओं को व्यर्थ करती है। मोटरवाला मुआवज़े के रूप में साइकिल वाले को अपनी कमीज उतारकर दे देता है। इसी तरह 'आत्महत्या' कहानी भी जीवन और मृत्यु का दार्शनिक विश्लेषण करती हुई आत्मसंवाद की शैली में बढ़ती है। वाचक जीवन की निस्सारता में जहर की शीशी हलक में उँडेल लेता है। पर यहाँ भी पाठक की उत्तेजना और जिज्ञासा नि:सारता में डूबती है और जहर नकली निकलता है। ऐसी ही उत्तेजना 'चेहरा' कहानी को पढ़कर भी होती है जहाँ रेल में बैठे एक व्यक्ति को दूसरा व्यक्ति क्रूर मान बैठता है। मैं, चेहरे की हर हरकत से उसके किसी बच्चे की हत्या करने की नृशंसता का अनुमान लगाता हुआ पुख्ता निष्कर्ष तक पहुँच जाता है। अचानक डिब्बे में बैठा एक बच्चा बेध्यानी में ट्रेन के खुले दरवाजे की ओर लुढ़कने लगता है। इससे पहले की कोई कुछ सोचता नृशंस मान लिया गया आदमी अपनी जान देकर उसे बचाता है। इस तरह ये तीनों ही कहानियाँ घटना के पूर्व प्रसंगों को खारिज करती हुई एक झटका देकर नए अंत की ओर मुड़ चलती हैं और पाठक हतप्रभ रह जाता है। इन कहानियों में निर्मित दृश्य कहानी की

घटनाओं को बहुत प्रभावशाली ढंग से साकार करते हैं। दृश्य की समाप्ति के बाद कथाकार न अपनी ओर से कुछ जोड़ता है न घटाता। तब ये कहानियाँ व्यक्ति के स्थूल की नहीं उसके सूक्ष्म की पहचान का हिस्सा बनती हैं।

कथाकार कुंवर नारायण की कहानियाँ वैयक्तिक और जीवन संघर्षों में घिर गए इंसानों का बयान भी हैं। यह घेराव ही बतौर पाठक हमें अचानक कहानियों से गुज़रते हुए अपने उस पक्ष की ओर ले जाता है जिसे कवि-कथाकार मुक्तिबोध अपनी लंबी कविता 'अंधेरे में' में अनात्म को पहचानने की ओर लक्षित करते हैं। यदि हम अनात्म की पहचान के करीब पहुँचते हैं तो इसका सीधा अभिप्राय यह है कि हम अपने अंत:करण के विस्तार की प्रक्रिया से भी जुड़ते हैं। इसी बात को यदि कहानीकार के शब्दों में कहें तो यह कहानियाँ 'मनुष्य की नियति का मुकदमा' पेश करने लगती हैं और ऐसे में हम अनजाने ही उसकी नियति के न सिर्फ साक्षी बनते हैं बल्कि एक बेचैनी और गहरे अंतर्द्वंद्व से भी धिर जाते हैं। इस दृष्टि से संग्रह की 'कमीज' और ' अचला और अचल' कहानी उल्लेखनीय हैं। दोनों ही कहानियों में समाज के कई अनात्म चेहरों की पहचान होती है। 'कमीज' कहानी के वीरेश्वर बाबू जीवन से संन्यास लेकर अपने जीवन का अर्थ खोजने की साधना में लीन हैं पर नियति उन्हें इस समय में एक हत्या के अपराधी के संशय में घेर लेती है। हत्या का सबूत बनती है उनकी एक पुरानी कमीज जिसे वह आज पहचान भी नहीं पाते। जीवन का अर्थ खोजना तो दूर जीवन ही उनके लिए गुनाह होने लगता है। पुलिस महकमे ़्द्वारा रोज़ की पूछताछ और वीरेश्वर बाबू द्वारा रोज़-रोज़ अपने अपराधी न होने का स्पष्टीकरण उस यातना को सामने लाता है जिसमें मनुष्य बिना कुछ किए कैद है। एक निरपराधी व्यक्ति कैसे निरंतर रिश्तेदारों और समाज की नज़र में दोषी सिद्ध हो जाता है। रोज़ एक मौत मरना उसकी नियति होती चली जाती है। वह रोज़ मृत्यु से अगले स्पष्टीकरण तक की मोहलत माँगता है। एक लाचारी, एक मजबूरी में वीरेश्वर बाबू घिरते चले जाते हैं और पत्नी को छोड़कर पूरा समाज थानों की तरह उन्हें जुर्म साबित होने से पूर्व ही दोषी मान लेता है। यह पीड़ा जीवन से भी बड़ी होती चली जाती है इसीलिए कहानी के अंत में जब थाने से आया पुलिस वाला बताता है कि असली अपराधी मिल गया है तब वीरेश्वर बाबू लगभग विक्षिप्त हो चुके होते हैं। वह कहते हैं-'सबका एक ही जुर्म है-ज़िंदगी।' वीरेश्वर बाबू का यह कथन पाठक को थर्रा देता है।

इसी तरह 'अचला और अचल' कहानी भी सीधे तौर पर पितृसत्ता को प्रश्नित नहीं करती पर इस कहानी में दो प्रेम करने वालों के बीच परिवार की इकाई नैतिकता के तकाजे लेकर कहानी खड़ी हो जाती है। और नैतिकता की बही स्त्री के संदर्भ में ही लिखी-पढ़ी जाती है। 'कमीज' के वीरेश्वर बाबू की तरह इस कहानी की अचला भी मुजरिम ठहरा दी जाती है। दोनों को ही कठघरे में खड़ा कर दिया जाता है। अचला के अचल को संजीदगी से प्रेम किए जाने के बीच उसके चारित्रक पक्ष की छान-बीन होने लगती है। कहानी में अचला तो अचला बनी रहती है पर अचल, अचल नहीं रह पाता। अचल पितृसत्ता के पक्ष से बोलने लगता है। वह नैतिकता का प्रश्न उठाने वालों की ओर से अचला के प्रति सशंकित होता है और पूरी कथा प्रेम को ताक पर रखकर अचला बदचलन है या नहीं ? इस प्रश्न के समाधान की ओर मुड़ जाती। अचला दृढ़ होकर सोचती है-" अचल मुझे एक साधारण पुरूष की तरह बिना अप्रिय तर्क में पड़े, क्यों नहीं अस्वीकार कर देता?" हालांकि कहानी की शुरूआत में ही अचल स्वीकारता है कि वह अचला से चालीस फीसद प्रेम करता है। पर विवाह तभी करना चाहता है जब निर्धन, शिक्षित और सुंदर अचला धवल चरित्र की हो। वह अचला से उसके चरित्र की तहकीकात करके प्रेम और स्त्री के सुचरित्र होने का गणित बिठाना चाहता है। इस तरह यह कहानी अचल के निरर्थक तर्क और अचला की दृढ़ता के बीच संबंधों के गणित को सामने लाती है। प्रेम में सत्य की तलाश की यह कहानी एक पक्ष के चारित्रिक सच को जानने की कवायद में तर्क का प्रश्रय लेकर आगे बढ़ती है। अच्छी बात यह है कि कहानी का अंत कथा वाचक ने खुला रखा है। उसने साफ कहा-" मैं नहीं जानता कि यह कहानी दुखांत हुई या सुखांत। हो सकता है, उन्होंने सिर्फ प्यार किया हो। हो सकता है, उन्होंने सिर्फ विवाह किया हो। या हो सकता है कि उनके बीच सिर्फ बहस चलती रही हो कि वे क्या करें..."

इस तरह से संग्रह की सभी सत्रह कहानियाँ बौद्धिक और प्रखर ताप के साथ अनुभूत सत्य का विश्लेषण करती हैं। कथाकार की शैली है कि इन कहानियों का समाधान वे बाहरी रूप में कम अ◌ांतरिक रूप में अधिक खोजने की कोशिश करता है। ये भी कि अधिकांश कहानियाँ समस्या के समाधान की ओर पाठक को नहीं ले जातीं उनका ध्येय समस्या को सामने लाकर पाठकीय विवेक पर उन्हें छोड़ना है। कहानी एक विचार बनकर लेखक से होती हुई पाठक के दिमाग पर दस्तक देती है। इस तरह यह कहानियाँ एक बार फिर सत्य को मानसिक स्तर पर जिए जाने के लेखकीय आग्रह को दोहराती हैं। कथाकार मनोज पांडेय ने इन कहानियों का वैशिष्ट्य उजागर करते हुए अपने लेख में लिखा है-" इन कहानियों में बेहद सधे हुए नियंत्रित तनाव हैं। ऐसा शायद इसलिए भी हुआ हो कि कुंवर जी इन कहानियों को रचते हुए भी कवि ही रहे हैं।"

इन कहानियों का विश्लेषण इनकी भाषा की चर्चा के बगैर अपूर्ण रहेगा। जिस तरह संग्रह की कहानियाँ अलग-अलग विषयों के साथ वैयक्तिक-सामाजिक ताने-बाने में रची हैं वैसे ही इनमें प्रयुक्त भाषा के भी विविध स्तर हैं। जैसाकि मैंने पहले ही चर्चा की आरंभिक कहानियों में अनुभूतियों की प्रस्तुति की भाषा अमूर्तन के करीब है। वहाँ कविता की लय है। व्यक्ति सत्य तक पहुँचने की भाषा तरल गद्य की भाषा बनकर सामने आती है। अपने आत्म को टटोलने की भाषा अनुपस्थित से संवाद करती है वहीं आगे की कहानियाँ जो सामाजिक यथार्थ की बात करती हैं वहाँ भाषा अमूर्त को मूर्त से रिप्लेस करती है। यह मूर्त

कहानियों के दृश्य विधान से जुड़कर कहानी के पूरे परिदृश्य को बहुत ठोस और जीवंत रूप प्रदान करता है। इन कहानियों की खासियत यह भी है कि बात प्रतीकों, बिंबों या गूढ़ अर्थ में नहीं सहजता से सामने आती है। इन कहानियों में व्यंजनार्थ भी गहरे हैं जो मनुष्य जीवन की विडम्बनाओं को रचते हैं। जहाँ व्यक्ति सत्य को उद्घाटित करती कहानियाँ गहरे आत्ममंथन की दिशा में मुड़ जाती हैं वहाँ सामाजिक सत्य के करीब जाती कहानियाँ संवादों के कौशल में अपनी बात रखती हैं। 'गुड़ियों का खेल' और ' शीर्षक की कहानियों की भाषा को ही लें तो कथाकार की भाषा बहुधा बिंबों में अपनी बात कहती है-

"मैं उन गुड़ियों की सीमा जानती हूँ जिन्हें मैं बनाती हूँ और जिनसे सरकस करवाती हूँ। जब वे हवा में झूलती और उलटती-पलटती हैं तो अक्सर निर्वसन हो जाती हैं, बल्कि उन्हें निर्वसन होना पड़ता है...मैं भी तुम्हारे समाज की ही तरह नग्नता को अश्लील मानती हूँ। इसीलिए इन गुड़ियों के शरीर में स्त्रीत्व के चिह्न बनाती ही नहीं। सरकस के लिए मजबूर ये बेचारी बिना दिमाग अपनी नग्नता के लिए उचित तर्क कहाँ खोज पातीं? 'गुड़ियों का खेल' के साथ कई कहानियों में मूंछ, दांत, नाखून जैसे बिंब हिंसक प्रतीकों में ढलकर भी सामने आए हैं।

इसके अतिरिक्त ' आकारों के आस-पास', 'संदिग्ध चालें', 'आशंका', 'आत्महत्या' जैसी कहानियाँ तरल गद्य में अनुपस्थित से संवाद करती हैं। व्यक्ति सत्य तक पहुँचने वाली कहानियों में कमरे और दरवाजे के अनेक बिंब भी भिन्न संदर्भों में रिपीट होते हैं। अधिकांश कहानियों में कमरा अंतर्मन का प्रतीक बनकर ही सामने आया है जहाँ सत्य को पाने-समझने की छटपटाहट देखी जा सकती है। कई बार आत्मसाक्षात्कार और आत्ममूल्यांकन के लिए भी कमरे का बिंब प्रयोग किया गया है-" असली नायक प्रेम की उपेक्षा करने का साहस कभी नहीं कर सकता इसलिए एक नायक के लिए सबसे कठिन परीक्षा का समय पह नहीं जब पुराने जमानें में उसे किसी प्रसिद्ध पौराणिक दैत्य से बीहड़ वन में युद्ध करना करना पड़ता था, बल्कि वह जब आज के ज़माने उसे अपने कमरे में अकेले बंद होकर अपना सामना करना पड़ता है।"

दूसरी ओर सामाजिक सत्य खोज रही कहानियों की भाषा जब अमूर्तन से निकलती है तो उन कहानियों में बाह्य जीवन और घटनाएँ भी सामने आती हैं और कई बार चरित्र भी 'मैं' शैली से निकलकर ठोस नामों में ढलते हैं। 'कमीज','चाकू की धार','जनमति','बड़ा आदमी' जैसी कुछ और कहानियों में इसे देखा जा सकता है। इसी तरह 'मुआवज़ा' और 'मुगल सल्तनत और भिश्ती' कहानी में किस्सागोई का अंदाज़ मिलता है। इन कहानियों की ख़ास बात यह भी है कि इनमें से अधिकांश में व्यंग्य अंडर करेंट की तरह बहता है।

कथाकार कुंवर नारायण की भाषा अनुभव और विचार में ढलकर आती है तो उनकी भाषा निष्कर्ष की ज़मीन पर पहुँचती है। उनकी अनेक कहानियाँ में पाठक इन निष्कर्षों से जीवन के सत्य से पैदा हुए कला के मानदंडों पर पहुँचता है। मसलन, 'अचला और अचल' कहानी का यह कथन इस बात की तसदीक करता है- "प्रेम का जिस अलौकिक स्तर पर आदान-प्रदान होता है उसकी भाषा अलग है। वास्तविकता के आग्रह में पड़कर यह समय यह समझने-समझाने का समय नही था कि ग़लत भाषा में जीना ग़लत मूल्यों में जीना है।" इसी तरह ' दो आदमियों की लड़ाई' कहानी को भी देखें-" इस गधे को इतनी भी समझ नहीं कि लड़ाई के लिए 'कारण' नहीं, सिर्फ 'ताकत' चाहिए! जहाँ ताकत है वहाँ लड़ाई है, जहाँ कारण हैं वहाँ शांति है।"

इस तरह कुंवर नारायण की कहानियाँ हमारे तेज़-रफ्तार जीवन में छूट रहे दृश्यों और बिम्बों को सामने लेकर आती हैं। ये कहानियाँ अक्सर घटनाओं में चल रहे मानवीय क्रियाकलापों के मनोविज्ञान से पाठकों को परिचित कराती हैं। इनकी विशिष्टता इनकी सामान्य सहज वास्तविकता है। ऐसी विशिष्टता कि जिसमें मानवीय समाज के अनेक पहलू छिपे हुए हैं। कुंवर नारायण कभी भी किसी अधीर अभिव्यक्ति को अपनी रचनाओं में नहीं आने देते। आकारों के आस-पास संग्रह की सभी कहानियाँ इस बात की प्रमाण हैं।

000

संदर्भ

आकारों के आस पास-कुंवरनारायण पृष्ठ-१४

आकारों के आस पास-कुंवरनारायण पृष्ठ-१४

संवाद और एकालाप -मलयज पृष्ठ-२३

आकारों के आस पास-कुंवरनारायण पृष्ठ-१५

आकारों के आस पास-कुंवरनारायण पृष्ठ-५४

आकारों के आस पास-कुंवरनारायण पृष्ठ-५४

आकारों के आस पास-कुंवरनारायण पृष्ठ-८

आकारों के आस पास-कुंवरनारायण पृष्ठ-८

आकारों के आस पास-कुंवरनारायण पृष्ठ-६६

आकारों के आस पास-कुंवरनारायण पृष्ठ-६१

आकारों के आस पास-कुंवरनारायण पृष्ठ-८०

आकारों के आस पास-कुंवरनारायण पृष्ठ-११३

आकारों के आस पास-कुंवरनारायण पृष्ठ-१२०

आकारों के आस पास-कुंवरनारायण पृष्ठ-१२१

आकारों के आस पास-कुंवरनारायण पृष्ठ- ३०-३१

आकारों के आस पास-कुंवरनारायण पृष्ठ-११९

आकारों के आस पास-कुंवरनारायण पृष्ठ-११६

आकारों के आस पास-कुंवरनारायण पृष्ठ-६६

हिन्दी साहित्य, स्त्री और आत्मकथा

शोध : डॉ. सुनीता कुमारी

हिन्दी साहित्य में अनेक विधाएँ प्रचलित हैं - कहानी, उपन्यास, नाटक, ललित निबंध, आलोचना, कविता, गीत इत्यादि। इतने सारे विधाओं के बीच आत्मकथा का अस्तित्व सबसे नूतन विधा के रूप में दृष्टिगत होता है। हिन्दी में लेखिकाओं के द्वारा आत्मकथा लिखने की परम्परा बहुत पुरानी नहीं है, इसके पीछे जो कारण है वह है सामाजिक दबाव, किसी भी स्त्री के लिये अपने जीवन का सच लिखना इतना आसान नहीं क्योंकि स्त्री लेखिका के लिए अपने जीवन का सच उजागार करना इतना आसान नहीं होता। आत्मकथा नामक साहित्यिक विधा का आगमन पश्चिम से हुआ, वहीं से विस्तारित होकर हिन्दी साहित्य में प्रमुख विधा बन गई। नामवर सिंह ने एकबार एक व्याख्यान में कहा था कि अपना लेने पर कोई चीज़ पराई नहीं रह जाती है बल्कि अपनी हो जाती है। हिन्दी आत्मकथाकारों ने यही किया। हिन्दी साहित्य में बनारसीदास जैन कृत 'अर्द्धकथानक' को हिन्दी की पहला आत्मकथा माना जाता है। इसकी रचना सन् १६४१ ई० में हुई थी। इसके अतिरिक्त दयानन्द सरस्वती कृत 'जीवन चरित्र' (१८६०) भारतेन्दु हरिश्चंद्र कृत 'कुछ आपबीती, कुछ जग बीती' हिन्दी की प्रारंभिक आत्मकथाएँ है।

उपर्युक्त सभी आत्मकथाएँ पुरुषों द्वारा लिखी गई है। हिन्दी में १७वीं शताब्दी से आरम्भ हुई इस विधा में सबसे पहले लिखी गई महिला आत्मकथा का साक्ष्य २०वीं सदी में मिलता है।

हिन्दी की पहली आत्मकथा लेखिका जानकी देवी बजाज है जिनकी आत्मकथा का नाम मेरी जीवन यात्रा है जो १९५६ में प्रकाशित हुई। इसके बाद कई महत्त्वपूर्ण आत्मकथाएँ आई इनमें अमृता प्रीतम, प्रतिभा अग्रवाल, कुसुम अंसल, कृष्णा अग्निहोत्री आदि के नाम स्त्री आत्मकथा लेखन में व्यापक रूप से सामने आया।

मैं कुछ लेखिकाओं की लिखी हुई आत्मकथा पर ही चर्चा करूँगी पर महत्त्वपूर्ण आत्मकथाओं का विवरण भी कालक्रमानुसार यहाँ में उल्लिखित करना चाहती हूँ- जानकी देवी बजाज की - मेरी जीवन यात्रा (१९५६), अमृता प्रीतम की रसीदी टिकट, (१९७६), अक्षरों के साये (१९७७), प्रतिभा अग्रवाल की दस्तक ज़िंदगी की (१९९०), मोड़ ज़िंदगी का (१९९६), कुसुम अंसल की जो कहा नहीं गया (१९९६), कृष्ण अग्निहोत्री की लगता नहीं दिल मेरा (१९९७), पदमा सचदेवा की बूँद वावरी (१९९९), शिवानी की सुनहु तात यह अमर कहानी (१९९९), शीला झुनझुनवाला की। कुछ कहीं कुछ अनकही (२०००), मैत्रेयी पुष्पा की - कस्तूरी कुंडल वसै' २००२, गुड़िया भीतर गुड़िया (२००८), रमणिका गुप्ता की हादसे २००५, सुनीता जैन की शब्द काया २००५, मन्नू भंडारी की एक कहानी यह भी २००७, प्रभा खेतान की अन्या से अनन्या (२००७), मृदुला गर्ग की राजपथ से लोकपथ पर (२००८), अनीता राकेश की संतरे और संतरे-, ममता कालिया की कितने शहरों में कितनी बार (२०११), चन्द्रकान्ता की हाशिए की इबारतें (२०१२), निर्मला जैन की ज़माने में हम (२०१५), इस्मत चुगताई की कागजी पैरहन, दिलीप कौर टिवाणा की नंगे पैरों का सफर और अजीत कौर की खानादोश महत्त्वपूर्ण आत्मकथाएँ हैं।

प्राय: हर मनुष्य के जीवन में कुछ ऐसी घटनाएँ घटित होती है, कुछ ऐसे प्रसंग होते हैं जिसे वह अकेले ही जीता है और अकेले ही उसका दंड भोगकर इस दुनिया को अलविदा कहना चाहता है। आत्मकथा लिखने वाली स्त्री लेखिकाओं की लम्बी फेरिहस्त में आज मैं कुछ प्रमुख आत्मकथाओं का ही ज़िक्र करना चाहती हूँ। सर्वप्रथम प्रभा जी की लिखी हुई 'आत्मकथा' अन्या से अनन्या पर अपने विचार स्पष्ट करते हुए यह कहना चाहती हूँ कि स्त्री के समक्ष आज जो चुनौतियाँ है उसका वर्णन कर समाज के सामने कठोर सत्य को रखने का जो प्रयास किया वह सच में बोल्ड एवं निर्भीक आत्म स्वीकृति की एक गाथा है। इस किताब में उन्होंने जिस बेबाकी से ज़िंदगी के सफ़रनामे को बयाँ किया है, वह काबिले तारीफ है साथ ही उनके साहस

डॉ. सुनीता कुमारी
सहायक प्राध्यापिका
हिन्दी विभाग
राँची वीमेन्स कॉलेज, राँची
मोबाइल- 9470368260

को भी दर्शाता है। प्रभा खेतान ख़ुद स्वीकारती हैं कि - ''बाद के दिनों में मैंने समझा कि हमारी औरतें चाहे बाल कहीं हो या गाँव देहात से आई हो कोई भी सुरक्षित नहीं, सुरक्षा का आश्वासन पितृसत्तात्मक मिथक है स्त्री कभी सुरक्षित थी ही नहीं पुरुष भी इस बात को जानता है इसलिए सतीत्व का मिथक संवर्धित करता रहता है, सती-सावित्री रहने का निर्देश स्त्री को दिया जाता है, पर कोई भी सती नहीं रह पाती है हाँ सतीत्व का आवरण ज़रूर ओढ़ लेती है।'' इस आत्मकथा में स्त्री के कई रूप सामने आए हैं - ''कोई जन्म से स्त्री नहीं होती, समाज उसे स्त्री बनाता है।''

स्त्री की अनेक किस्म की चालाकियों अथवा रणनीतियाँ न सिर्फ इस पुस्तक में रेखांकित की गई है बल्कि जिस परिवार नामक संस्था को हम महान् मानते हैं, वह संबंध किस तरह खोखला हो चुका है और अंदर से सड़ रहा है यह भी दिखाया गया है। प्रभा खेतान का मन्तव्य स्पष्ट है कि स्त्री से सब लोग पाना चाहते हैं उसे देना कोई नहीं चाहता।

इस किताब का लक्ष्य यह भी है कि - अव्यक्त को व्यक्त किया जाय, निजी को सार्वजनिक किया जाय, तभी तो प्रभा जी व्यक्तिगत को सामाजिक बनाती हैं जीवन के अनेक उलझी परतों को खोलती हैं। अन्या से अनन्या में प्रभा खेतान ने अपनी अस्मिता की रक्षा और स्व की पहचान के लिए जहाँ बिगुल बजाया है, वहीं पितृसत्तात्मक समाज से मुक्ति पाने के लिए पारिवारिक साँचे की जड़ों को झिंझोड़ने का भी प्रयास किया है। अस्तित्व की खोज करती एक स्त्री के निरंतर संघर्ष करने, आत्मनिर्भर बनने स्वावलम्बी बनने से लेकर व्यापार की दुनिया में अपनी स्वतंत्र पहचान होने के साथ-सासथ समाज के सामने एक मिसाल कायम की है। प्रभा खेतान ने अपने बाल्यकाल से लेकर व्यापार जगत् में अपनी स्वतंत्र पहचान बनाने के मार्ग में आने वाली बाधाओं का उल्लेख किया है। बचपन में उन्हें कभी अपनी माँ से प्रेम नहीं मिला, वह अपनी माँ की अपेक्षा दाई माँ के अधिक करीब रही। बचपन में प्रेम का अभाव ही था। युवावस्था में डॉ. शर्राफ के करीब लाता है। जीवन के जद्दोजहद से लड़ती प्रभा डॉ. साहब को भी संदेश देना चाहती है कि डॉ. साहब आपसे हटकर भी मेरा अपना वजूद है। अपनी स्वच्छन्द पहचान है, अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। इस संसार को बदलने, सृष्टि का सृजन करने एवं विघटन करने में स्त्री भी सक्षम है। वे स्वतंत्र पहचान बनाने की ओर अग्रसर होती है, अमेरिका, न्यूयार्क जैसे देशों में भ्रमण करती है। भाषा की समस्या, रहने की समस्या वेशभूषा की समस्या व्यापारिक चुनौतियों का सामना वो अकेले ही करती है तथा महिला उद्योगपति के रूप में अपनी पहचान बनाती है। कहा जा सकता है कि प्रभा खेतान की यह आत्मकथा स्त्री मुक्ति की दिशा में एक अनूठा प्रयास है। और इसी क्रम में मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा 'गुड़िया भीतर गुड़िया (२००८) की भी थोड़ी चर्चा करना चाहूँगी- इक्कीसवीं सदी की स्त्री हिन्दी आत्मकथा लेखिकाओं में मैत्रेयी पुष्पा का नाम अग्रणी है। स्त्री-आत्मकथा साहित्य की यह एक अविस्मरणीय रचना है। अपनी इस आत्मकथा में लेखिका ने अपने बाल्यावस्था से लेकर लेखिका बनने के मार्ग में आने वाले संघर्षों का उल्लेख किया है। मैत्रेयी पुष्पा स्वतंत्र बेबाक अपनी अस्मिता के प्रति जागरूक वह क्रांतिकारी नारी हैं जो समाज की परवाह किए बिना अपने लिए विवाह का मार्ग-खोजती है। वैवाहिक जीवन जीते हुए पारिवारिक वंधनों में बंधती है, किन्तु समय के साथ-साथ यह बंधन उन्हें कमज़ोर करता जाता है। इस बंधन से मुक्ति पाने के लिए वह छटपटाती है। अपनी इस असहजता को बयाँ करती हुई लिखती है कि शादी के बाद मुझे मेरे हिसाब से कारावास मिला है, जिसके लौह-कपाट में तभी से तोड़ने में लगी हूँ और देखना चाहती हूँ कि इस दुनिया के अलावा भी कोई दुनिया है ? पति के अलावा कितने लोग है बाहर है ? वैसे पति से बैर भाव नहीं पाला, मगर उनके किसी खूँटे से बँधना ? मैं भी अपने अन्दर गहरी भावनाएँ रखती हूँ जैसे गुप्त प्यार को बचा ले। नाचने की स्मृति मेरे साथ रहेगी।''

मैत्रेयी-पुष्पा ने इस आत्मकथा में अपनी बेबाक लेखनी के द्वारा स्त्री-मुक्ति का एक नया द्वार खोलने का स्तुत्भ प्रयास किया जाता है। उच्च शिक्षित बुद्धिजीवी वर्गों के बीच अलीगढ़ गाँव की गँवारू-सी दिखने वाली मैत्रेयी के लिए उस शिक्षित वर्ग के मध्य अपनी पहचान बनाने, पति के औहदे को समाज में बढ़ाने के लिए सजी-धजी गुड़िया बनकर रहना कठिन था, उनके इस आत्मकथा में उठाया गया स्त्री-मुक्ति का प्रश्न किसी जाति, धम वर्ग का न होकर सार्वकालिक, सार्वभौतिक तथा सार्वदेशिक है।

आत्मकथाओं की अगली श्रेणी में मन्नू भंडारी जी की ''एक कहानी यह भी' - इस आत्मकथा के मूल में सीधी-सरल मन्नू एवं उनके पति राजेद्र यादव हैं। मन्नू भंडारी सामाजिक व्यवस्था के विरूद्ध जाकर राजेन्द्र यादव से विवाह करती हैं। विवाह के बाद राजेन्द्र यादव की बेरुखी एवं समानान्तर जीवन का फार्मूला मन्नू भंडारी के वैवाहिक जीवन के सभी रंग एवं खुशियों की छीन लेता है। मन्नू भंडारी ख़ुद को राजेन्द्र यादव से अलग करने का एक साहसिक फैसला करते हुए कहती है - ''राजेन्द्र जी आप अपने लिए किसी मकान की व्यवस्था कर लीजिए क्योंकि अब मेरे लिए आपके साथ रहना सम्भव नहीं है। अच्छा है अलग रहेंगे तो आप भी ज़्यादा स्वतंत्र रहेंगे और मैं भी ज़्यादा तनाव मुक्त।'' उनके इस लेखन में समाज की विकृति, व्यक्तिगत चुनाव, निर्णय की स्वतंत्रता एवं रूढ़िगत परम्पराओं का खण्डन करने जैसी कई अनछुए पहलुओं को छूने का प्रयास किया गया है।

000

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1 अन्या से अनन्या - डॉ. प्रभा खेतान
2 गुड़िया भीतर गुड़िया - मैत्रेयी पुष्पा
3 कस्तूरी कुण्डल वसै - मैत्रेयी पुष्पा
4 एक कहानी यह भी - मन्नू भंडारी
5 स्त्री उपेक्षि (अनुवादक) प्रभा खेतान
6 शृंखला की कड़ियाँ महादेवी वर्मा
7 हिन्दी कहानी और स्त्री विमर्श-उषा झा
8 हादसे - रमणिका गुप्ता।

शोध आलेख

सुधा ओम ढींगरा की कहानियों में असामान्य मनोविज्ञान का चित्रण

शोध : रेनू यादव

हिन्दी कहानियों में प्रेमचंद की कुछेक मनोवैज्ञानिक कहानियों के बाद विशेष रूप से जैनेन्द्र, सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय, इलाचंद्र जोशी, श्री भगवती प्रसाद वाजपेयी, कमला दत्त, सुनीता जैन आदि का नाम लिया जाता है। कुछ अलग हटकर सुधा ओम ढींगरा ने मनोवैज्ञानिक कहानियों का विस्तृत फलक तैयार कर दिया है। इनकी कहानियों में 'आग में गर्मी कम क्यों है' में समलैंगिकों का मनोविज्ञान तथा स्त्री- मनोविज्ञान, 'टॉरनेडो' में बाल मनोविज्ञान, 'खिड़कियों से झाँकती आँखें' में वृद्ध मनोविज्ञान, 'अनुगूँज' में एक डरी सहमी लड़की का मनोविज्ञान आदि सहित 'कौन सी ज़मीन अपनी', 'कमरा नं. १०३', 'सच कुछ और था', 'खिड़कियों से झाँकती आँखें' कहानी-संग्रहों की कहानियों में अलग अलग रूपों में भी अंतर्द्वन्द्व, चिंता, घृणा एवं भय आदि दृष्टिगत होता है। इन सबमें 'कमरा नं. १०३', 'उसकी खुशबू', 'सच कुछ और था', 'विष-बीज', 'दृश्य-भ्रम' कहानियों में सुधा जी ने असामान्य मनोविज्ञान का सहजता से चित्रण कर मनोवैज्ञानिक कहानियों का दायरा बढ़ा दिया है। असामान्य मनोविज्ञान के अंतर्गत व्यक्ति के असामान्य एवं विचित्र व्यवहारों और अनुभूतियों का अध्ययन होता है।

प्राय: साहित्य का मनोवैज्ञानिक आलोचना करते समय फ्रॉयड के कुछ सिद्धांतों मन की अवस्थाएँ, व्यक्तित्व की गत्यात्मक पक्ष की अवस्थाएँ, तथा मूल प्रवृत्तियों पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है किंतु एडलर, युंग तथा अन्य मनोवैज्ञानिकों के सिद्धांतों पर ध्यान नहीं दिया जाता। किंतु अब साहित्य की बढ़ते दायरे (विषय-वस्तु) के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक आलोचना के दायरे को भी विस्तार देने की आवश्यकता प्रतीत हो रही है।

सुधा ओम ढींगरा की कहानी 'दृश्य भ्रम' में स्कित्सोफ़ीनिया के कुछ लक्षणों से पीड़ित डॉ. जशन की कहानी है। स्वयं डॉक्टर होते हुए भी वे अपने भय पर विजय नहीं पा सकतें, उन्हें हर जगह इरा कोडा दिखाई है। उनका तर्क स्कित्सोफ़ीनिया की मनोवृत्ति के विपरीत उन्हें आगाह करता है कि वे इरा कोडा के बलात्कारी नहीं हैं, जो कुछ भी हुआ वह सहज प्रेमाभिव्यक्ति थी किंतु दादी द्वारा बताया गया वाक्य कि उसने इरा को घर बुलाकर उसका बलात्कार किया, वह बिरादरी वालों को बता देगी, उसे जेल भिजवा देगी से उनके अंदर भय बैठ गया। भय एवं भ्रम से भरे हुए डॉ. जशन में अपराधबोध की भावना तीव्र अवस्था में होती है, वे ख़ुद से ही बुदबुदाकर बतियाते हुए पाये जाते हैं और अतीत में घटे घटना में जीने लगते है। सत्य और भ्रम के बीच झूलते डॉ. जशन रोष, आक्रोष एवं भय के कारण उत्पन्न असामान्य व्यवहार उन्हें ख़ुद से ही दूर कर देता है, जो कि व्यामोह की स्थिति है।

यह एक प्रकार का "पागलपन है, भव्यता, उत्पीड़न, व्यवस्थित भ्रम, अपने स्वयं के निर्णयों का पुनर्मूल्यांकन, सट्टा प्रणाली का निर्माण, साथ ही साथ व्याख्यात्मक गतिविधि, संघर्ष और संघर्ष की विशेषता है"।

व्यामोह वैसे तो नकारात्मक माना जाता है लेकिन १९११ ई। में युजेन ब्लेयुलर ने व्यामोह और सिज़ोफ्रेनिया में एकता का सुझाव दिया। जिसमें आत्मकेन्द्रित, मतिभ्रम और व्यक्तित्व टूटन के लक्षण पाये जाते हैं। वैसे इस बीमारी का कारण अपमान बताया जाता है। इसके निर्माण में वास्तविक तथ्यों की ग़लत व्याख्या की भूमिका होती है। ऐसे मरीज़ लम्बे समय तक गैर-मौजूद आवाज़ को सुनते हैं, वह अकेले में बुदबुदाते और मुस्कराते हैं। जिससे उनके हावभाव और व्यवहार में अंतर आता है। वे प्राय: स्पर्श, दृश्य और मतिभ्रम से ग्रस्त होते हैं।

'विष-बीज' कहानी पहली नज़र में पढ़ने पर स्कित्सोफ़ीनिया पर आधारित कहानी प्रतीत होती है किंतु कहानी के मध्य में जाकर स्पष्ट हो जाता है कि इस कहानी का पात्र अपनी सौतेली माँ के अत्याचार तथा पोषक गृह में लड़कों के यौन कुकृत्यों से उत्पीड़न का बदला अन्य स्त्रियों पर अत्याचार करके लेता है। ऐसी मनोरचना को विस्थापन कहा जाता है। "जब किसी आविर्भूत संवेग का प्रत्यक्ष प्रकाशन अवरूद्ध हो जाता है तब उस संवेग का प्रकाशन अप्रत्यक्षतया किसी ऐसे पदार्थ या व्यक्ति के प्रति होता है जो वस्तुत: निर्दोष या तटस्थ रहता है। इस प्रकार इस

रेनू यादव
फेकल्टी असोसिएटभारतीय भाषा एवं साहित्य विभाग
गौतम बुद्ध विश्वविद्यालय
यमुना एक्सप्रेस-वे, गौतम बुद्ध नगर, ग्रेटर नोएडा – 201 312 (उप्र)
ईमेल- renuyadav0584@gmail.com

मनोरचना के द्वारा संवेग अपने वास्तविक विषय से हटकर किसी दूसरे अनावश्यक एवं निर्दोष विषय पर चला जाता है। इसके द्वारा दबी एवं कुण्ठित इच्छाओं एवं दमन में समझौता होता है क्योंकि इससे बोधात्मा की मर्यादा की भी रक्षा होती है और अबोधात्मा की संतुष्टि भी इसी के द्वारा भी हो जाती है"। असामान्य मनोविज्ञान, जगदानंद पाण्डेय

ऐसी मनोरचना स्वप्नों एवं मनोविकृत्तियों में भी पायी जाती है। यह समाज के अनुकूल भी हो सकती है और प्रतिकूल भी। ऐसी मनोविकृत्ति की अवस्था में व्यक्ति दूसरों को पीड़ा पहुँचाने में संतुष्ट होता है। विष-बीज का मुख्य पात्र की मनोरचना भी अपने साथ हुए अत्याचार के फलस्वरूप डीमन (शैतान) बन जाता है, जो अफ़गानिस्तान की एक खोह में छिपी तीन बेटियों के साथ एक माँ को सैनिकों के साथ मिलकर भोगता है और अंत में उन डरी, सहमी, भूखी-प्यासी औरतों को गोलियों से भून देता है। उनकी चीख-चिल्लाहट, तड़प में सौतेली माँ महसूस होती है और सौतेली माँ की चीख-चिल्लाहट, तड़प महसूस कर वह डीमन-सी खुशी हासिल करता है।

इसी प्रकार 'उसकी ख़ुशबू' कहानी में जूली अपने प्रेमी मनोज की तरह दिखने वाले भारतीय लम्बे, साँवले, हृष्ट-पुष्ट निर्दोष पुरुष की हत्या करके अपने प्रेमी से प्राप्त अपमानबोध का विस्थापन करती है। एक तरफ उन पुरुषों के साथ वह प्रेम का ढोंग रचकर प्रेम का भी विस्थापन करती है तो दूसरी तरफ वह उनकी हत्या कर अपने प्रेमी मनोज द्वारा ठुकराए जाने के अपमान का बदला लेकर अपनी इगो को तुष्ट करती है, इस कार्य में उसके इत्र की खुशबू उन प्रेमियों को फांसने का एकमात्र साधन बनता है।

लेकिन 'सच कुछ और था' कहानी में लिंडा का अपने पति महेन्द्र की हत्या 'उसकी ख़ुशबू' की नायिका और 'विष-बीज' के नायक, जिन्हें खलनायिका और खलनायक भी कह सकते हैं... से अलग है। लिंडा लगातार मानसिक प्रताड़ना से गुज़र रही होती है तथा महेन्द्र के भय से अपनी भावनाओं का लगातार दमन करती आ रही होती है। महेन्द्र के दोहरे पर्सनालिटी डिसऑर्डर की शिकार लिंडा शुरुआत में सच्चाई से दूर अपने आपको महेन्द्र की अपेक्षानुसार ख़ुद को ढालने की कोशिश करती है, वह बदलाव भी उसकी खुशियों के दमन का कारक बनता है तथा उसके अस्तित्व का खतरे में होना उसकी मनोरचना को बदल देता है। "अपने दुखद या अनैतिक स्वरूप के कारण जो इच्छाएँ या विचार व्यक्ति के लिए कष्टकर या उसके आदर्शों के प्रतिकूल होते हैं उनको स्वाभाविक रूप से चेतना से तिरस्कृत करने वाली मानसिक क्रिया को ही दमन कहते हैं"। - असामान्य मनोविज्ञान, जगदानंद पाण्डेय

लिंडा द्वारा किए जा रहे वर्षों से भावनाओं के दमन की प्रवृत्ति मात्र डिप्रेशन में नहीं बदलती बल्कि उसकी मानसिकता को आक्रामक बना देता है, जिसकी तुष्टि महेन्द्र को गोली मारकर ही हो सकती है।

ऐसा ही दमन 'कमरा नं. १०३' की मिसेज़ वर्मा के साथ हो रहा होता है। किंतु मिसेज़ वर्मा की मनोरचना लिंडा की तरह आक्रामकता में परिवर्तित नहीं होती बल्कि प्रतिक्रिया स्वरूप उनके शरीर के अंग काम करना बंद कर देते हैं। जिसे रूपांतर कहा जा सकता है। श्री जगदानंद पाण्डेय के अनुसार, "वह मनोरचना जिसके द्वारा कुण्ठित एवं दमित मूल-प्रवृत्तियों की शक्तियाँ शारीरिक व्याधियों के क्रियात्मक लक्षणों में परिवर्तित होती है, उसे रूपान्तर कहते हैं। जब किसी मूल इच्छा का दमन होता है और जब उस दमन में अपूर्णता रह जाती है तब उस मूल इच्छा का प्रकाशन किसी विकृत निर्गमन-द्वार के जरिये होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जब हमारे अचेतन-मन में किसी संवेगात्मक संघर्ष का दमन पूर्णरूपेण नहीं होता तब रूपांतर के द्वारा उसका प्रकाशन छद्मवेश में होता है। -असामान्य मनोविज्ञान – श्री जगदानंद पाण्डेय पृ ५७

मिसेज़ वर्मा का हृदय, लीवर, किडनी और निकास मार्ग काम कर रहा है, वे आवाज़ें सुन व समझ सकती हैं किंतु उनके हाथ-पाँव सब निष्क्रिय हो चुके हैं, वे आँखें नहीं खोल पातीं, वे अस्पताल में अर्धकोमा की स्थिति में बेड पर लेटी हैं। उन्हें नर्स टैरी और ऐमी की बातें सुनाई देती हैं और अवचेतन में दबा दर्द चेतन में आँसू बनकर बहने लगता है कि किस तरह उनके बेटे ने बहू की प्रेग्नेंसी की अवस्था में उन्हें अपने बच्चे की देखभाल के लिए विदेश ले आया था किंतु बच्चा पैदा न होने पर बहू ने उन्हें घर की कामवाली बनाकर रख दिया और अंत में बेटे ने स्वार्थी होकर इनका सारा पैसा अपने नाम करवाकर बीमारी की अवस्था में अस्पताल में अकेला छोड़कर चला गया।

इन सभी कहानियों में सुधा जी ने भारतीय उदात्त चरित्रों की परिभाषा बदल दी हैं। यह बदलाव अन्य प्रवासी साहित्यकारों की कहानियों में अलग-अलग रूप में दिखाई देता है। यह पाश्चात्य का प्रभाव भी हो सकता है किंतु यह बदलाव साहित्य में चरित्र निर्माण के विकास का विस्तार है। 'उसकी ख़ुशबू', 'सच कुछ और था', 'विष-बीज', 'दृश्य-भ्रम' जैसी कहानों के पात्र खलनायकों में गिने जाते हैं, लेकिन यह नहीं भूलना चाहिए ये पात्र इसी दुनियाँ के सत्य हैं और इन्हीं सत्य से सुधा जी पाठकों को परिचित करवाती हैं।

इन कहानियों में वे उपचार की ओर भी इंगित करती हैं जैसे कि 'विष-बीज' के डीमन पात्र में एक संवेदनशील व्यक्ति भी है जो अपनी माँ के चेहरे वाली औरत, जो उसकी माँ ही होती है, के साथ बलात्कार नहीं कर पाता, 'दृश्य-भ्रम' में डॉ. जशन को जैसे ही इरा कोडा की सच्चाई का पता चलता है वे भ्रम से निकल कर सत्य की ओर लौट आते हैं, 'कमरा नं. १०३' में नर्स टैरी और ऐमी की बातें सुनकर मिसेज़ वर्मा को अपने साथ घटी घटनाओं का स्मरण हो आता है और आँखों से आँसू बहने लगते हैं जो कि एक अच्छा संकेत है। उपचार सत्य की ओर एक कदम की ओर बढ़ने जैसा होता है तथा सत्य का ज्ञान होने के पश्चात् पाठक के हृदय में इन पात्रों के प्रति संवेदना भी जाग जाती है। यदि संवेदना न जगे तो भी किसी भी ऐसी मनोरचना के पीछे मनोवैज्ञानिक कारकों को जानने का सुगम उपाय ये कहानियाँ हैं।

000

स्ट्राबेरी एंटरटेनमेंट क्रिएशंस, शिवना क्रिएशंस तथा ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन प्रस्तुत करते हैं

कौन सी ज़मीन अपनी

तुम लोग

Shivna Sahityiki ● Quarterly ● January-March 2022 ● RNI : MPHIN/2016/67929 ● ISSN : 2455-9717

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका द्वारा मध्यप्रदेश के सीहोर ज़िले में चलाए जा रहे आर्थिक रूप से कमज़ोर परिवार की बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण योजना के तहत स्थापित प्रशिक्षण केन्द्र पर आयोजित डिप्लोमा वितरण कार्यक्रम

बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र सीहोर पर सत्र 2019-20 का डिप्लोमा वितरण आइसैक्ट के कुलाधिपति श्री संतोष चौबे, पुलिस अधीक्षक श्री मयंक अवस्थी, समाजसेवी श्री अखिलेश राय, अति. पुलिस अधीक्षक श्री समीर यादव तथा श्रीमती नमिता राय के हाथों।

बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र सीहोर पर सत्र 2019-20 का डिप्लोमा वितरण आइसैक्ट के कुलाधिपति श्री संतोष चौबे, पुलिस अधीक्षक श्री मयंक अवस्थी, समाजसेवी श्री अखिलेश राय, अति. पुलिस अधीक्षक श्री समीर यादव तथा श्रीमती नमिता राय के हाथों।

बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र सीहोर पर सत्र 2019-20 का डिप्लोमा वितरण आइसैक्ट के कुलाधिपति श्री संतोष चौबे, पुलिस अधीक्षक श्री मयंक अवस्थी, समाजसेवी श्री अखिलेश राय, अति. पुलिस अधीक्षक श्री समीर यादव तथा श्रीमती नमिता राय के हाथों।

बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र सीहोर पर सत्र 2019-20 का डिप्लोमा वितरण आइसैक्ट के कुलाधिपति श्री संतोष चौबे, पुलिस अधीक्षक श्री मयंक अवस्थी, समाजसेवी श्री अखिलेश राय, अति. पुलिस अधीक्षक श्री समीर यादव तथा श्रीमती नमिता राय के हाथों।

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।